Sardar Bhagat Singh

(2)

सरदार भगतसिंह

(370)

(श्रीकृष्ण 'सरल')

राष्ट्रीय चेतना का
प्रगतिशील महाकाव्य

सरदार भगत सिंह

श्रीकृष्ण 'सरल'
Sri Krishan Saral

प्रकाशक
जन-कल्याण प्रकाशन
गोपाल-भवन, माधवनगर
उज्जैन, मध्यप्रदेश

प्रमुख वितरक
विश्व भारतीय प्रकाशन
धनवटे चैम्बर्स, सीतावल्दी
नागपुर, महाराष्ट्र

●

द्वितीय संस्करण
१९६५ ई० 1965

●

●

मुद्रक
प्रियम्वदा प्रेस
उत्तर प्रदेश आगरा,

मूल्य
लोकप्रिय संस्करण : ६·००
ग्रंथालय संस्करण : १५·००

सरदार भगतसिंह

लोकप्रिय संस्करण

मूल्य : छः रुपए मात्र

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना की मुद्रा

जिन लोगों की लाशों पर चलकर आजादी आई,
उनकी याद बहुत ही गहरी लोगों ने दफ़नाई ।

उस माँ को
जिसकी कोख से
भगतसिंह जैसे सिंह-सपूत ने
जन्म लिया

कवि
उन सब के प्रति
कृतज्ञ और श्रद्धावनत है
जिनके साहित्य से
उसने दिशा-दान लिया है
या जिनने
व्यक्तिगत सहयोग देकर
काव्य-लेखन को सुलभ बनाया है ।

कवि
श्रीकृष्ण 'सरल'

जन्म संवत्
१९७८ विक्रमी

जन्म-स्थान
अशोक नगर
गुना जिला, मध्यप्रदेश

प्रस्तुत काव्य श्री श्रीकृष्ण 'सरल' की उत्कट राष्ट्रीय विचारधारा तथा सशक्त अभिव्यक्ति का ज्वलंत प्रमाण है। अपने छात्र-जीवन से ही देश-भक्ति की तड़प लिए क्रान्ति के साधक इस कवि ने दमन-चक्र की चुनौतियों को स्वीकारते हुए अन्यायों के विरुद्ध अपने उन्मुक्त स्वरों को मुखरित किया है। उसी भाव-धारा का चरम विकास है प्रस्तुत महाकाव्य—'सरदार भगतसिंह'।

सशस्त्र क्रान्ति के संपूर्ण इतिहास की प्रमुख झाँकियों से सँजोकर कवि ने शहीद-सम्राट सरदार भगतसिंह और उनके साथियों के मुक्ति-प्रयत्नों की कहानी 'आँखों देखे' हाल के रूप में प्रस्तुत की है। इस कहानी के शब्द-शब्द में शहीदों के बलिदान, राष्ट्र के उत्थान, पौरुष के सम्मान तथा यौवन के तूफान की उग्र एवं निर्भीक अभिव्यक्ति मिलेगी। क्रान्तिकारियों के विषय में प्रचलित घटनाओं का शोध करके कवि ने अपने काव्य को इतिहास की अछूती घटनाओं तथा अलभ्य चित्रों से अलंकृत किया है।

अत्यंत हर्ष के साथ हम यह घोषित कर रहे हैं कि प्रस्तुत महाकाव्य का प्रथम संस्करण एक मास के अन्दर ही हाथों-हाथ बिक गया। क्यों न इसे हम विषय की नवीनता तथा कवि की शैली की सफलता मानें? प्रस्तुत संस्करण उसी काव्य-ग्रंथ का द्वितीय संस्करण है। राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत यह कलाकृति जन-जन के हाथों में पहुँच सके, इसके लिए हमने 'लोकप्रिय संस्करण' का मूल्य छः रुपए मात्र रखा है। अधिक सज्जा-युक्त 'ग्रंथालय संस्करण' का मूल्य पन्द्रह रुपए है। लेखक तथा प्रकाशक का दृष्टिकोण आर्थिक उपलब्धि के स्थान पर देशभक्ति की भावनाओं का प्रसारण ही है।

हम अपने प्रकाशन का प्रथम पुष्प पाठकों को भेंट कर रहे हैं।

—प्रकाशक

विस्फोट

गोली मार दूँगा !

पाठक डरें नहीं । यह बात मैं उन्हें धमकाने के लिए नहीं कह रहा हूँ । ये शब्द हैं जो मेरे कानों में अभी तक गूँज रहे हैं । घटना उस समय की है जब मैं सरदार भगतसिंह की समाधि के दर्शन करने के लिए फीरोजपुर गया हुआ था । जाने के पूर्व मेरे एक दो पंजाबी मित्रों ने समझाया था—"सम्हल कर रहना, वहाँ के लोग स्वभाव के बहुत तेज होते हैं । बात की बात में दंगे-फसाद और मार-पीट की घटनाएँ तो वहाँ मामूली बातें समझी जाती हैं । पाकिस्तान की सरहद पर बसते हैं, यदि ऐसा हौसला न रखें तो कैसे काम चले ।"

मैंने निर्देश का पालन किया । बहुत सम्हल कर रहा । किसी के व्यवहार में मुझे कोई उद्दण्डता दिखाई नहीं दी । मैंने मन में सोचा, व्यर्थ ही बढ़ा-चढ़ा कर बातें कही गई थीं । यहाँ तो सब बनिया किस्म के लोग दिखाई देते हैं । पर मेरी यह धारणा शीघ्र ही निर्मूल सिद्ध हो गई ।

२३ मार्च को भगतसिंह की समाधि पर शहीदी मेला लगने वाला था । उस दिन सुबह ही मैं अपने ठहरने के स्थान—देव समाज महिला महाविद्यालय से चलकर सड़कों पर इस इरादे से घूम रहा था कि भीड़ इकट्ठी होने के पूर्व समाधि पर पहुँच कर कुछ एकान्त साधन करूँ । मैं शहर में दो-तीन दिन से घूम रहा था । शहर में चर्चाएँ थीं—"उज्जैन से एक शायर आया है, वह भगतसिंह पर कुछ लिखना चाहता है ।" मैं घूम ही रहा था कि एक दुबले-पतले अधेड़ से सज्जन मेरे सामने आए, 'भ्राजी !' से सम्बोधन करके नमस्ते किया और बोले—

"सुना है आप उज्जैन से तशरीफ लाए हैं ?"

"जी हाँ !" मैंने उत्तर दिया ।

"सुना है आप शहीदे आज़म भगतसिंह पर कुछ लिखना चाहते हैं !"

"विचार तो है ।" मैंने कहा ।

"अच्छा हो यदि आप यह विचार छोड़ दें।" उन्होंने लट्ठ-सा मार दिया। मैं भौंचक्का रह गया कि यह भला आदमी क्या कह रहा है। मैंने जिज्ञासा की दृष्टि से उन्हें देखा और कहा—"मुझे आपका मन्तव्य समझ में नहीं आया। बड़े खेद की बात है कि आप भगतसिंह पर लिखने के लिए मुझे रोक रहे हैं जब कि आपको प्रोत्साहित करना चाहिए।"

अभी तक मैं उनके विषय में बिलकुल अनभिज्ञ था, अतः पूछ बैठा—

"क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ?"

उत्तर मिला—

"मैं आपके सामने खड़ा हूँ, बात-चीत कर रहा हूँ। यही मेरा परिचय है। नाम-धाम जानकर क्या करेंगे। यदि गलत भी बता दूँ तो आप कैसे जान पाएँगे?"

मैंने कहा—"आप मुझे भगतसिंह पर लिखने से क्यों रोकना चाहते हैं?"

उन्होंने कहा—

"बात यह है कि भगतसिंह या दूसरे क्रान्तिकारियों पर अभी तक बहुतों ने लिखा है। कई लोगों ने तो कूड़ा-कचरा लिख कर रख दिया है। आप भी उस कचरे में एक मुट्ठी और डाल देंगे, इससे ज्यादा की आप से और क्या आशा की जा सकती है।"

यह बे-लोच बात सुनकर मुझे बड़ा विचित्र-सा लगा। बात चालू रखने के विचार से मैंने पूछा—

"आपने यह कैसे जान लिया कि मैं जो लिखूँगा वह भी कूड़ा-कचरा ही होगा, जब कि आप मेरे विषय में कुछ भी नहीं जानते।"

उनका उत्तर था—

आप जैसे बहुत से लोगों के विषय में मैं बहुत कुछ जानता हूँ। यहाँ कई आते हैं और चले जाते हैं। अपना बड़ा प्रचार करते हैं, बड़ा प्रदर्शन करते हैं, बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञाएँ करते हैं, खूब वाह-वाही प्राप्त करते हैं और जब उनका लिखा हुआ सामने आता है तो राजनैतिक गोलमाल से अधिक कुछ नहीं निकलता।"

मैंने कहा—

"ठीक है, पर मैं बाध्य तो नहीं हूँ कि आपकी बात मान कर लिखने का विचार छोड़ दूँ। जब मैंने ठान लिया है तो अवश्य लिखूँगा।"

उत्तेजित होकर उन्होंने उत्तर दिया—

"यदि आपका लिखा हुआ ठीक नहीं निकला तो गोली मार दूँगा।"

मैं सकते में आ गया इस उत्तर को सुन कर। देखता रह गया उस व्यक्ति की ओर जो मुझे गोली से मार देने की धमकी दे रहा था। मैंने सोचा, यह गोली मारने की बात तब के लिए कह रहा है जब मेरा लिखा हुआ पढ़ लेगा, पर अभी इसे छेड़ने में क्या खतरा है। अतः मर्म जानने के लिए मैंने तनिक छेड़ा—

"मैं जानना चाहता हूँ कि आप अभी तक कितनों को गोली से मार चुके? क्या आपने किसी भ्रष्टाचारी के गोली मारी है? क्या आपने किसी गद्दार के गोली मारी है? क्या आपने किसी फिल्म-प्रोड्यूसर के गोली मारी है जो क्रान्तिकारियों पर ऊल-जलूल फिल्में बना देते हैं? फिर आप एक कवि को ही क्यों अपनी गोली का निशाना बनाना चाहते हैं जो नेक इरादे से शहीद पर कुछ लिखना चाहता है?"

इस बार उनका उत्तर था—

"भई! बुरा न मानना। जो लोग पतित हैं वे तो पहले से ही मरे हुए के समान हैं। आप शायर हैं। आपके लिखने और बोलने का लोगों पर असर पड़ता है। यदि आप लोग ही क्रान्तिकारियों के विषय में गलत बातें लिखने लगेंगे तो उनके प्रति लोगों में श्रद्धा कम होती जायगी। मैं फिर भी कहता हूँ कि क्रान्तिकारियों के ऊपर लिखना साँपों से खेलने के बराबर है। क्रान्तिकारी सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है पर वह यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई व्यक्ति उसके सिद्धान्त की हत्या करे। इसीलिए मैंने आप से निवेदन किया कि आप लिखने का विचार छोड़ दें। पर जब आप लिखना ही चाहते हैं तो लिखें और शौक से लिखें पर एक बात याद रहे कि क्रान्तिकारियों के प्रति ऊल-जलूल लिखने का पुरस्कार गोली भी हो सकती है और उनके प्रति वफादारी निभाने का नतीजा 'शाही मेहमानदारी' भी हो सकती है।"

बात बहुत खरी कह दी गई थी। मेरे लिए चुनौती भी थी। मैंने इस प्रसंग का उल्लेख वहाँ किसी से नहीं किया। ऐसा करके मैं चर्चाओं का विषय और पूछताछ का दफ्तर नहीं बनना चाहता था। मन में सोचा, यदि किसी कारणवश न लिख सका तो लोग कहेंगे—डर गया। चुनौती गाठ में बाँधे रहा और लिखता गया। क्रान्तिकारियों के सिद्धान्त की बात सामने रही और जो बना लिख डाला। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब मैंने ग्रन्थ-लेखन के विषय

में निर्देश प्राप्त करने के लिए अमर शहीद सरदार भगतसिंह के अनन्य मित्र श्री बटुकेश्वरदत्त को पत्र लिखा। उन्होंने भी क्रान्तिकारियों के सिद्धान्तों का निर्वाह करने का परामर्श दिया। इसी प्रकार की बात शहीद के अनुज सरदार कुलवीरसिंह ने भी लिखी। इनके पत्रों को आप पत्र-परिशिष्ट में पढ़ सकेंगे।

मैंने जो कुछ लिखा है वह सामने है—और सामने है मेरा खुला हुआ वक्ष—चुनौती देने वाले सज्जन की गोली खाने के लिए या उनके हृदय से लगने के लिए। वे इसे पढ़ें और निर्णय करें।

प्रस्तुत काव्य-लेखन की मानसिक तैयारी तो कुछ समय से चल ही रही थी पर जब लिखने बैठा तो ७ महीने और २३ दिन में इसे लिख कर पूर्ण कर डाला। २३ मार्च, सन् १९६३ ई० को भगतसिंह की समाधि पर बैठ कर लिखना प्रारम्भ किया था और १४ नवम्बर १९६३ को उज्जैन में ग्रन्थ-लेखन का कार्य पूर्ण हो गया। गौरव-गर्वित सतलज के किनारे प्रारम्भ किया गया अनुष्ठान क्षिप्रा के पावन तट पर पूरा हुआ। इतने शीघ्र लिखा लेने का श्रेय शहीद की श्रद्धेय माँ को है जिसकी प्रेरणा और आशीर्वाद ने थकान और निराशा का अनुभव नहीं होने दिया। विदाई के समय के उसके ये शब्द मुझे आज भी याद हैं :—

"बेटे ! आशीर्वाद बोल कर क्या दूँ। मेरा रोम-रोम तुझे आशीर्वाद दे रहा है। मेरी तो तमन्ना है कि जब लिखना प्रारम्भ करे तो काम पूरा करके ही दम ले। ऐसा न हो कि मैं ग्रन्थ को बिना देखे ही चली जाऊँ।"

उस माँ की इच्छा पूरी करने के लिए मैंने लिख कर ही दम लेने की बात सोची। इस बीच कुछ विचित्र अनुभव भी हुए। उन दिनों चार घण्टे से अधिक नहीं सो पाता था और कई रातें तो पलक लगे बिना ही निकल जाती थीं पर कभी सर-दर्द का भी अनुभव नहीं हुआ। विचित्र सपने आते रहते थे। जिन शहीदों के कभी जीवन में दर्शन नहीं किये उनसे घण्टों बातें होती थीं। कभी-कभी शहीद की माँ भी आ जाती थी और मेरे गले में हाथ डाल कर, लिखा हुआ मुझसे सुनती थी। मुझे लगता कि उसके आँसू कागज पर टप-टप गिर रहे हैं। मैं भी अपने आपको संयत न रख पाता। नींद खुलती तो थकान के स्थान पर ताजगी का ही अनुभव करता और लिखने बैठ जाता। मुझे याद आ जाता कि ऐसा ही स्नेहिल व्यवहार माँ ने मेरे साथ तब किया था जब मैं उसके घर गया था।

किसी अज्ञात क्रान्तिकारी की गोली की चुनौती और शहीद की माँ के आँसुओं की प्रेरणा से लिखा गया यह महाकाव्य देश-वासियों के हाथों में दे रहा हूँ—माँ भारती के चरणों पर डाल रहा हूँ। क्रान्तिकारियों के सिद्धान्तों का प्रतिपादन और देश पर मर-मिटने की भावना का प्रसारण ही लेखन का प्रमुख उद्देश्य रहा है। काव्य के भाव पक्ष और कला पक्ष के प्रति मैं प्रयत्न-पूर्वक सजग नहीं रह सका। प्रस्तुत काव्य-लेखन में मेरा अपना कुछ अलग दृष्टिकोण रहा है जिसका स्पष्टीकरण नीचे दे रहा हूँ।

(१) इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि कहीं काव्य-लेखन की झोंक में ऐतिहासिकता का गला न घुट जाय। केवल सत्य घटनाओं को ही काव्य-प्रसंगों का आधार बनाया गया है। कवि-कल्पना की स्वच्छन्दता का उपयोग घटनाओं की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से ही करने के लिए किया गया है।

(२) शहीद के बचपन की सभी घटनाएँ उसके परिवार के सदस्यों, सह-पाठियों तथा सम्बन्धियों द्वारा प्राप्त की गई हैं। क्रान्तिकारी जीवन की घटनाएँ अवशिष्ट क्रान्तिकारियों तथा अन्य अधिकृत व्यक्तियों से व्यक्तिगत रूप से हथियाई गई हैं। 'हथियाई गई' शब्द का प्रयोग मैंने साभिप्राय किया है क्योंकि जिन क्रान्तिकारियों के संपर्क में मैं आया उनमें आत्म-प्रकाशन की अनिच्छा ही देखी और विश्वास-भाजन बन कर ही उनसे कुछ तथ्य प्राप्त कर सका। कइयों ने तो अपने नाम का उल्लेख करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है और प्रतिबन्ध तोड़ने पर 'अच्छा न होगा' का सुपरिणाम भी बता दिया है।

यथासम्भव, ग्रन्थ में उल्लिखित प्रत्येक घटना की सत्यता का प्रमाण भी कवि के पास सुरक्षित है।

(३) कवि का उद्देश्य घटनाओं का अंबार लगाना नहीं, प्रत्युत घटनाओं के आधार पर व्यक्तित्व-दर्शन ही रहा है। आकार-भय के कारण कई घटनाओं को छोड़ना भी पड़ा है और केवल उन्हीं घटनाओं को ग्रहण किया गया है जो क्रान्तिकारियों के उद्देश्य और सिद्धान्तों की स्थापना में सहायक सिद्ध हुईं।

(४) प्रबन्धकार ने चरितनायक के विचारों से तादात्म्य स्थापित करने के विचार से उस सभी साहित्य को पढ़ने का प्रयत्न किया है जो शहीद ने स्वयं पढ़ा था। इसके अतिरिक्त संसार में जहाँ-जहाँ क्रान्तियाँ हुईं

हैं, उन सब का अध्ययन भी लेखन की पृष्ठ-भूमि के लिए आवश्यक समझा गया है। लेखक ने यथासंभव उन सभी स्थलों का निरीक्षण किया है जो शहीद के कार्य क्षेत्र रहे थे।

(५) प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य की कथावस्तु को तेवीस सर्गों में विभाजित करने का रहस्य यह है कि सरदार भगतसिंह को केवल २३ वर्ष की अवस्था में ही फाँसी लगी थी। फाँसी भी सन् १६३१ की २३ मार्च सायंकाल ७-२३ पर लगी थी। शहीद के जीवन के प्रत्येक वर्ष के लिए एक सर्ग की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक सर्ग में शहीद के जीवन की प्रमुख घटनाएँ तथा देश की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ मिलेंगीं। विशेष कारणवश ही इस क्रम में परिवर्तन कहीं-कहीं किया गया है।

प्रथम सर्ग में सितम्बर, सन् १६०७ ई० से अगस्त, सन् १६०८ ई० तक की घटनाओं का वर्णन है। यह क्रम इसी प्रकार आगे चलता गया है। अन्तिम सर्ग में अगस्त, सन् १६३० से २३ मार्च १६३१ तक की घटनाओं का वर्णन है।

अब मैं संक्षेप में शहीद के वंशानुक्रम और वातावरण सम्बन्धी कुछ तत्वों पर प्रकाश डालना उचित समझूँगा जिनका प्रभाव उसके जीवन-निर्माण की दिशा में रहा है।

पूर्वजों से प्राप्त की गई क्रान्ति की धरोहर

सरदार भगतसिंह जिस वंश में उत्पन्न हुआ उसे क्रान्तिकारियों का वंश कहा जा सकता है। इस वंश के लोगों ने रूढ़ियों और अन्यायों के विरुद्ध सदैव ही संघर्ष किया है। भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह जी यज्ञ-हवन करने वाले कट्टर आर्य समाजी थे और अपने सिद्धान्त के पालन के लिए वे सब कुछ अर्पण करने तैयार रहते थे। उनके विषय में यशपाल जी तथा अन्य लेखकों ने जो कुछ लिखा है उसके आधार पर दो संस्मरण दे रहा हूँ।

सरदार अर्जुनसिंह अपने किसी सम्बन्धी की शादी में सम्मिलित होने के लिए पैदल चल कर किसी गाँव में गये। वहाँ पहुँचने पर देखा कि शादी संपन्न कराने वाले ग्रंथी साहब सत्यार्थ प्रकाश के विषय में कुछ कल्पित बातों का उल्लेख करके उसका मजाक बना रहे हैं। सरदार साहब ने विरोध करते हुए

कहा कि सत्यार्थ प्रकाश में ऐसा तो कहीं नहीं लिखा। ग्रंथी साहब ने कहा, यदि सत्यार्थ प्रकाश सामने ला दो तो बता दूँगा कि जो मैं कह रहा हूँ वह कहाँ लिखा है। उन्हें पूरा विश्वास था कि उस गाँव में तो क्या आस-पास के किसी गाँव में भी सत्यार्थ प्रकाश की प्रति मिलना दुर्लभ है। बात समाप्त हो गई। लोगों ने अनुभव किया कि अर्जुनसिंह जी कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। समझ लिया गया कि अपनी हार से मुंह छिपा कर कहीं पड़े होंगे। रात गई, प्रात हुआ। लोगों ने देखा कि सरदार अर्जुनसिंह जी अपनी बगल में कुछ दबाए चले आ रहे हैं। रात ही रात में अपने गाँव जाकर वे सत्यार्थ प्रकाश की प्रति उठा लाए थे। एक ही रात में ६० मील का पैदल सफर कर लेना हौसले की बात थी जब कि इसके पूर्व भी वे पैदल चल कर ही आए थे। ग्रंथी साहब अपने वादे की रक्षा न कर सके जब कि सरदार साहब ने इतना कष्ट उठा कर अपने सिद्धान्त और सम्मान की रक्षा कर ली।

दूसरा संस्मरण बताता है कि सिख होते हुए भी सरदार अर्जुनसिंह जी ने एक बार तम्बाकू की खेती कर डाली और काफी लाभ कमा लिया। बिरादरी द्वारा उन्हें निष्कासित कर दिया गया। सरदार जी ने प्रायश्चित किया और दंड देकर फिर बिरादरी में सम्मिलित कर लिए गये। अपने मित्रों को उन्होंने समझाया :—**जहाँ तर्क नहीं चलता, वहाँ उदाहरण काम देता है। मेरी बिरादरी के सामने यह उदाहरण तो है कि तम्बाकू जैसे निषिद्ध पदार्थ को छू लेने वाला व्यक्ति भी गुरुओं की आज्ञा द्वारा फिर पवित्र हो सकता है।"**

भगतसिंह ऐसे दादा का पोता था। यह स्पष्ट है कि उसको साहस, शौर्य, रूढ़िवाद के प्रति विरोध, तर्क और विद्रोह की भावना पूर्वजों के रक्त से धरोहर के रूप में मिली थी।

शहीद के पिता

भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह जी भी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रहे हैं। उनका एक पैर घर में और एक जेल में रहा करता था। भगतसिंह को अपने पिता के क्रान्ति सम्बन्धी हथकण्डों पर विश्वास था और स्वयं बन्दी हो जाने पर जेल से जो पत्र-व्यवहार गुप्त रूप से अपने भाइयों से होता था उन में इसी बात का संकेत होता था कि वे क्रान्ति की शिक्षा-दीक्षा अपने पिता के निर्देशन में प्राप्त करें।

शहीद के चाचा

भगतसिंह के चाचा सरदार अजीतसिंह तो इतिहास प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रहे हैं। उनके नाम से अँग्रेजी हुकूमत थर्राती थी। लाला लाजपतराय के साथ ही सरदार अजीतसिंह को भारत से निष्कासित कर रंगून की माँडले जेल में रखा गया था। सरदार जी ने अपना शेष जीवन एक बागी की तरह विदेशों में व्यतीत किया और अँग्रेजी साम्राज्य की हथकड़ियाँ उनके पीछे-पीछे मुँह लटकाये घूमती रहीं। जीवन के अन्तिम दिनों में सरदार अजीतसिंह लौट कर भारत आ गये। देश की आजादी का यह दीवाना देश की आजादी-प्राप्ति के दिन, १५ अगस्त १९४७ ई० को आजादी का संकल्प पूरा करके इस लोक से उठ गया।

सरदार भगतसिंह के दूसरे चाचा सरदार स्वर्णसिंह भी अँग्रेजी साम्राज्य के कट्टर शत्रु रहे। जीवन भर वे इस साम्राज्य को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करते रहे। कभी विद्रोही साहित्य प्रकाशित करते और कभी सशस्त्र-आक्रमण की योजना बनाते थे। सरदार स्वर्णसिंह का तो स्वर्गवास भी जेल में हुआ था।

अपने चाचाओं की भाँति भला भगतसिंह क्यों न वंश की मर्यादा का पालन करता ? क्रान्ति की धरोहर उसे अपने पूर्वजों के रक्त से प्राप्त हुई और इस आग को उसने वातावरण की वायु से भड़काया। उसके छोटे भाइयों ने भी उसके निर्देशों के अनुरूप इस पथ को ग्रहण किया।

सरदार कुलवीरसिंह

सरदार कुलवीरसिंह का जन्म सन् १९१५ ई० को नवाँकोट (लाहौर) में हुआ।

मई १९३५ में भारत के अँग्रेजी शासक जॉर्ज पंचम की सिलवर जुबली के उत्सव में बिजली बन्द कर के रंग में भंग डालने के अपराध में आपको गिरफ्तार किया गया पर उचित साक्ष्य न मिलने के कारण छोड़ देना पड़ा। १९३८ ई० में आप पंजाब किसान सभा के अध्यक्ष चुने गए। कानफ्रेंस की अध्यक्षता करते हुए आपत्तिजनक भाषण देने के कारण आपको १½ साल की कैद का दण्ड मिला।

१९३९ ई० में दूसरे महायुद्ध के छिड़ जाने पर भारतीय सुरक्षा कानून के अन्तर्गत आपको फिर कैद कर लिया गया। जेलों में सुधार के लिए आपने ६५ दिन का अनशन किया।

जेल-जीवन के क्रम में सरदार कुलबीरसिंह मुलतान, मिन्टगुमरी, रावलपिंडी, शाही किला लाहौर, सेन्ट्रल जेल लाहौर, गुजरात स्पेशल जेल में रहे। आप देवली केम्प-जेल में श्री जयप्रकाशनरायण और अजय घोष के साथ भी रह चुके हैं। इस समय आप पंजाब विधान सभा के सदस्य हैं।

सरदार कुलतारसिंह

सरदार कुलतारसिंह का जन्म सन् १६१८ ई० में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के पावन पर्व के दिन नवाँकोट (लाहौर) में हुआ। अपने पूर्वजों की परम्परा का निर्वाह करते हुए आपने ब्रिटिश साम्राज्य पर कई घातक प्रहार किये और उनका फल भी वीरतापूर्वक चखा। देश-सेवा के पुरस्कार स्वरूप आपने निरन्तर सात वर्ष की जेल काटी। आप भी श्री जयप्रकाशनारायण के जेल के साथी रह चुके हैं। मिण्टगुमरी जेल में आपने ६५ दिन तक अनशन करके अपने भाइयों के पथ का अनुसरण किया। आजकल आप सहारनपुर में रहकर स्वतन्त्र रूप से समाज-सेवा के कार्यों में रत हैं।

सरदार रणवीरसिंह

श्री रणवीरसिंह का जन्म ६ अगस्त, सन् १६२५ ई० को हुआ। बड़े होने पर आपने भी अपने बड़े भाइयों के चरण-चिन्हों पर चलना आरम्भ कर दिया। १६४२ के आन्दोलन में आपने सक्रिय रूप से भाग लिया और काँग्रेस के लाहौर आफिस से गिरफ्तार कर लिए गए। जेल से छूटने के पश्चात् आपने पंजाब के प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री रामानन्द मिश्रा के साथ मिल कर अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध तोड़-फोड़ के कार्यक्रमों का संचालन करना प्रारम्भ कर दिया। आपने 'कौमी खिदमतगार' नाम की पार्टी का संगठन किया और देश-सेवा के व्रत में लगे रहे। आजकल आपका किसी पार्टी से सम्बन्ध नहीं है और नैनीताल जिले के बाजपुर स्थान में रह कर कृषि-कार्य कर रहे हैं।

सरदार राजेन्द्रसिंह

सरदार राजेन्द्रसिंह का जन्म सन् १६२६ ई० को लायलपुर जिले के बंगा नामक स्थान में हुआ। श्री राजेन्द्रसिंह ने अपनी शक्ति का परीक्षण देश के संगठन में किया। १६४७ ई० में आपने यूथ मिलीशिया (Youth Militia) नाम की संस्था का संगठन करके युवकों को शक्ति और सदाचार की प्रेरणा देना प्रारम्भ कर दिया। इसी यूथ मिलीशिया के सदस्यों के साथ आप लाहौर

में रह कर साम्प्रदायिकता से उत्पन्न अशान्ति के दमन में लगे रहे। फलस्वरूप पाकिस्तान सरकार ने आपको जेल में बन्द कर दिया। काँग्रेसी प्रभाव के कारण श्री लियाकतअली खाँ ने आपको पुलिस की देखरेख में फीरोजपुर पहुँचा कर मुक्त कर दिया।

आजकल आप भी नैनीताल जिले के बाजपुर नामक स्थान में 'जनता कृषि फार्म' का संचालन कर रहे हैं।

यह है सरदार भगतसिंह के परिवार की क्रान्ति-साधना। इस समय उनकी तीन छोट बहिनें भी जन-कल्याण में रत हैं।

बीबी अमरकौर ने सरदार भगतसिंह के जेल-जीवन में बहुत सहयोग दिया था। जेल में उनसे मिल कर क्रान्तिकारी गतिविधियों से उन्हें परिचित कराती रहती थीं और गुप्त रूप से उनके पत्र ले जाकर क्रान्तिकारियों को देती थीं। देश की सक्रिय राजनीति में भी आपने भाग लिया है।

सरदार भगतसिंह की दो अन्य बहनें हैं—बीबी सुमित्रा तथा बीबी शकुन्तला।

सरदार भगतसिंह पर वातावरण का प्रभाव

क्रान्तिकारी परिवार में उत्पन्न होने के साथ ही साथ भगतसिंह को बचपन से ही अपने घर में और आसपास क्रान्तिकारी वातावरण मिल रहा था। उसके पिता सरदार किशनसिंह जी तथा दोनों चाचा सरदार अजीतसिंह जी तथा सरदार स्वर्णसिंह जी का जेलों में आवागमन बना ही रहता था। घर पर गुप्त सभाएँ भी होती रहती थीं। देश भर के बड़े-बड़े नेता सरदार किशनसिंह जी के घर आते-जाते रहते थे। महाराष्ट्र केसरी स्व० श्री बालगंगाधर तिलक ने तो बालक भगतसिंह को गोद में खिला कर उसके विषय में बहुत अच्छी भविष्यवाणी भी की थी। उठते-बैठते घर की स्त्रियों में भी जेल-जीवन और देश की आजादी के विषय में चर्चाएँ हुआ करती थीं। भगतसिंह भी विद्रोह के इस वातावरण में साँस लेकर अपनी बाल-योजनाओं पर क्रान्ति का रंग चढ़ा रहा था। यही कारण है कि ग्रन्थ के प्रारम्भिक बारह सर्गों में भगतसिंह के विकास को बाल-मनोविज्ञान की कसौटी पर कस कर दिखाया गया है। 'पूत के लक्षण पालने में' के अनुसार शैशव से ही उसके व्यवहार से यह प्रकट होने

लगा था कि यह बालक न केवल अपने वंश की परम्परा का ही पालन करेगा वरन् दो कदम आगे जायगा।

भगतसिंह

एक विलक्षण व्यक्तित्व

सरदार भगतसिंह का व्यक्तित्व वास्तव में विलक्षण ही कहा जाएगा। प्रगतिशील परिवार में पालन होने के कारण उसकी प्रतिभा में चार चाँद लग गये थे। डी० ए० वी० स्कूल की शिक्षा का उस पर बहुत प्रभाव था। नेशनल कॉलेज में उसके संस्कार और भी दृढ़ हो गए थे। सिख होने पर भी छात्र-जीवन में उसने केश नहीं रखे थे। केश तो उसने तब रखे जब वह अकाली आन्दोलन में कूद पड़ा। केन्द्रीय क्रान्तिकारी समिति के निर्णय के अनुसार फिर उसने अपने केश कटवा दिए थे। रूखा-सूखा भोजन और मोटी खद्दर का परिधान उसकी अपनी रुचियाँ थीं। जैसी परिस्थिति हो, उसके अनुसार सट जाने की उसमें विलक्षण शक्ति थी। उसकी हस्ती फाकेमस्ती में भी निखर उठती थी।

भगतसिंह प्रतिभा का धनी था। छात्र-जीवन में वह मेधावी था। उर्दू और पंजाबी तो उसकी मातृ-भाषाएँ थीं ही, उसने संस्कृत का भी अच्छा अध्ययन किया था। हिन्दी का भी वह बहुत अच्छा लेखक था। श्री यशपाल ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की निबन्ध प्रतियोगिता में उसके द्वारा प्रथम पुरस्कार का अधिकारी होने की बात का उल्लेख 'सिंहावलोकन' में किया है। अँग्रेजी भाषा पर भी उसका बहुत अच्छा अधिकार था। अदालत में दिया गया अँग्रेजी का बयान उसी ने तैयार किया था जिसकी प्रशंसा बड़े-बड़े कानूनी व्यक्तियों ने की थी। अपनी भाषण-कला के प्रभाव से वह सभा-जीत कहलाता था। वह उच्च कोटि का तार्किक भी था।

भगतसिंह के क्रान्तिकारी साथियों ने बताया कि उसमें अकूत शारीरिक बल था। वह बड़े-बड़े पहलवानों को अपने दोनों हाथों में ऊपर उठाकर हवा में झुला कर दूर फेंक देता था। एक संस्मरण है—जेल में एक महीने के अनशन के पश्चात् भगतसिंह को बलात्पान कराने की योजना बनाई गई। आठ आदमियों ने उसके हाथ पकड़े। जेल के हत्यारे अपराधी—एक लम्बे-तगड़े पठान को उसके पैर पकड़ने का काम दिया गया। ज्योंही पठान पैर पकड़ने बढ़ा, भगतसिंह ने उसके सीने में वह कसकर लात मारी कि पठान का

सर पिछली दीवाल से टकरा कर फट गया और उसे तत्काल अस्पताल पहुँचाया गया। भगतसिंह के बल का दूसरा संस्मरण मुझे प्रोफेसर लघाटे ने बताया कि किस तरह भगतसिंह के एक ही चांटे में एक अँग्रेज पुलिस अफसर लोटन कबूतर बन कर नाली में जा गिरा। स्वभाव से भगतसिंह बहुत ही उद्दण्ड (साथियों ने चर्चा के बीच उसके लिए 'रूश' शब्द का प्रयोग किया था) था पर अपने साथियों और बड़ों के प्रति उसमें असीम स्नेह और विनम्र भाव था। बच्चों का चाचा बनने में उसे देर नहीं लगती थी।

शारीरिक बल के साथ ही भगतसिंह बुद्धि-बल का भी धनी था। परिस्थिति को भाँप लेने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। इसीलिए तो वह अपने दल का मस्तिष्क कहा जाता था। कठिन परिस्थिति में भी उचित निर्णय पर पहुँच जाना उसकी अपनी विशेषता थी।

विनोद-प्रियता भगतसिंह से सुशोभित होती थी। दूसरे को बुद्धू बनाना उसके बाँए हाथ का खेल था। दूसरों के मनोरंजन के लिए स्वयं बुद्धू बन जाने में भी उसे कोई आपत्ति नही होती थी। जेल-जीवन में भी वह हँसी-मजाक और चुटकुलों द्वारा साथियों से कहकहे लगवाया करता था। एक समय भगतसिंह अदालत में भी जोर से हँस पड़ा तो सरकारी वकील ने आपत्ति की—

"न्यायमूर्ति महोदय ! अभियुक्त अदालत में हँस कर अदालत का अपमान कर रहा है। उसे इसका दण्ड मिलना चाहिए।"

भगतसिंह ने और जोर से हँस कर कहा—

"मैं तो हँसने और हँसाने के लिए ही पैदा हुआ हूँ। बाहर भी हँसता था, जेल में भी हँसता हूँ, अदालत में भी हँस रहा हूँ और जब मैं फाँसी के तख्ते पर भी खड़ा होकर हँसूँगा तो वकील साहब किस अदालत से मेरी शिकायत करेंगे और कौन-सा दण्ड मुझे दिलाएँगे।"

भगतसिंह ने अपना दावा सिद्ध करके दिखा दिया। भगतसिंह पर सदाचार का धन अटूट था। शृङ्गार-चित्रण के उद्देश्य से मैंने यह पता लगाने का बहुत प्रयत्न किया कि उसका कभी किसी लड़की से 'मामला जमा या नहीं' (भगतसिंह दूसरों के लिए इसी मुहाविरे का प्रयोग करता था) पर इस दिशा में मुझे सदा ही निराश होना पड़ा। ऐसी कोई दुर्बलता उसे छू तक नहीं गई थी। व्यक्तित्व के सौन्दर्य, आकर्षण और प्रभाव की उसमें कमी नहीं

थी। उसकी फाँसी का समाचार पाकर पंजाब की एक प्रमुख महिला ने कहा था :—

"आज जाने देश की कितनी महत्वाकांक्षी कुमारियों के हृदय विधवा हो गए होंगे।"

भगतसिंह के चरित्र के इस पक्ष के विषय में मैंने उसके दल के अन्य सदस्यों के अतिरिक्त उसके भाई राजेन्द्रसिंह से भी पूछ-ताछ कर डाली। उत्तर की पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

"आपके पाँचवें प्रश्न का उत्तर यही है कि सरदार जी के जीवन में कभी कोई औरत नहीं आई। वे बहुत छोटी उम्र में देश-सेवा में लग गए थे। केवल पन्द्रह वर्ष की आयु में ड्रामा पार्टी बना कर ऐसे ड्रामे करते थे जिनसे देश प्रेम जागे। प्रताप ड्रामा में वे खुद राणा प्रताप बने थे। मैजिक लालटेन से वे शहीदों के चित्र दिखाते थे।"

कहना पड़ेगा कि भगतसिंह का व्यक्तित्व असाधारण विशेषताओं का पुंजी-भूत स्वरूप था। कर्मठता के साथ भावुकता उसके स्वभाव की विशेषता थी। कोई भी बहादुरी का काम करने के उपरान्त उसके चेहरे पर एक विलक्षण तेज ज्योतित हो उठता था। मानवीय संवेदनाओं के उस सार्थवाह ने राष्ट्र के शत्रु सान्डर्स को अपनी गोली का निशाना बना कर भी सहानुभूति के स्वर में भावुकता से कहा था—**"कितना अच्छा नौ-जवान था वह।"**

भगतसिंह ये सारे खेल केवल तेवीस वर्ष की अवस्था में खेल गया। उसका अस्तित्व क्रान्ति-गगन में धूमकेतु के उदय से क्या कम था ?

सशस्त्र क्रान्ति को भगतसिंह की देन

सशस्त्र क्रान्ति के इतिहास में भगतसिंह को एक नया मोड़ या क्रान्ति के पंथ का दिशा-निर्देशक कहा जा सकता है। उसके पूर्ववर्ती क्रान्तिकारियों के बलिदान भी कम नहीं थे पर वह इस आन्दोलन की निर्बलताओं को जान चुका था और भरसक उसने उनका परिमार्जन किया। उसके पूर्व के क्रान्तिकारी फाँसी पर चढ़ते समय, वेद-मंत्र, गीता के श्लोक या कुरान की आयतों का पाठ करते थे। भगतसिंह ने इस सब को भी मृत्यु-भय से बचने का एक साधन समझा और उसने अधिक साहस के साथ मरने की

प्रेरणा दी। यही कारण है कि उसके समय के क्रान्तिकारी 'इन्कलाब जिन्दाबाद!' 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के नारे लगाते हुए फाँसी के फन्दे चूमते थे।

संसार की क्रान्तियों का अच्छा अध्ययन होने के कारण भगतसिंह ने भारत के सशस्त्र आन्दोलन को एक देश-व्यापी संगठन का रूप प्रदान किया। वह समझता था कि देश के विभिन्न भागों में होने वाले छुट-पुट विस्फोटों से या इनी-गिनी हत्याओं से अँग्रेजी साम्राज्य की नींव हिल नहीं सकती। अत: उसने सभी प्रान्तों के क्रान्तिकारियों को एक सूत्र में पिरोकर एक शक्तिशाली संगठन बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखी। पंजाब, बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के प्रान्तों में बिखरे-बिखरे क्रान्तिकारियों को संगठित कर एक दृढ़ मोर्चे का निर्माण करने में भगतसिंह को अभूतपूर्व सफलता मिली। प्रत्येक प्रान्त के गर्म-दलीय व्यक्तियों से उसने संपर्क स्थापित किया था। सुभाषचन्द्र बोस तो भगतसिंह पर लट्टू थे। भगतसिंह के बाल्य जीवन से ही उनका परिचय उससे हो गया था। सुभाषचन्द्र बोस भगतसिंह से अवस्था में लगभग नौ वर्ष बड़े थे, पर इन दोनों में बड़ी अंतरंगता थी। श्री बोस ने जब 'भारतीय राष्ट्रीय सेना' का निर्माण किया तो उसके युद्ध के नारे थे—

इन्कलाब जिन्दाबाद !

भगतसिंह जिन्दाबाद !

मार्च १९४५ में जब आई० एन० ए० द्वारा जीते गए प्रदेश फिर अँग्रेजों के अधिकार में पहुँच गए थे और सैन्य-शिविरों में जब निराशा के बादल घनीभूत हो उठे थे तब नेताजी की ललकार सुनाई दी थी—

साथियो ! दुनिया के लिए लड़ाई खत्म हो सकती है लेकिन हमारे लिए नहीं। हमारी लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक हिन्दुस्तान मुकम्मिल तौर से आजाद नहीं हो जाता। हम आगे बढ़ें। दुश्मन के खिलाफ हर सूरत और हर मुकाम पर लड़ना हमारा फर्ज है। आज हमें भगतसिंह बनने की जरूरत है। एक भगतसिंह लाखों की तादाद से बढ़ कर काम कर सकता है।"

भगतसिंह के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा प्रभाव था कि जो एक बार भी उसके संपर्क में आता वह उसका बन कर रह जाता था। उसकी चितवन में कुछ ऐसा

सम्मोहन था जो लोगों के मनों को बरबस अपनी ओर खींच लेता था। मानव मन का पारखी होने के नाते बड़ों के सामने ठुनक कर, छोटों को थपथपा कर, सम-वयस्कों को गुदगुदा कर और विरोधियों को घुड़क कर अपना काम बना लेता था। जोखिम के काम में वह अपने साथियों को पीछे रखकर, स्वयं ही जान झोंकने के लिए सब से आगे रहता था।

उसने जीवन की नहीं
अपनी मौत की योजना बनाई थी

लोगों को यह विचित्र-सा लगेगा कि कोई अपनी मौत की योजना क्यों बनाने चलेगा। पर यह सत्य है कि भगतसिंह ने अपनी मृत्यु की योजना बनाई थी। निष्क्रिय दीर्घ जीवन की अपेक्षा वह सक्रिय अल्प-जीवन और सार्थक मृत्यु का पक्षपाती था। सक्रिय जीवन की बात सिद्ध करने के लिए प्रमाण प्रस्तुत हैं :—

+ छात्र-जीवन में ही उसने विश्व-क्रान्तियों का अध्ययन कर डाला था और छात्र-संगठन का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।
+ देश की पुकार पर अध्ययन को तिलांजलि देकर वह असहयोग के अखाड़े में उतर पड़ा।
+ असहयोग आन्दोलन के लड़खड़ा जाने पर वह अकालियों के गुरुद्वारा आन्दोलन में कूद पड़ा।
+ गुरुद्वारा आन्दोलन की सफलता के पश्चात् वह फिर कॉलेज में प्रविष्ट हो गया।
+ सशस्त्र क्रान्ति की योजना बन जाने पर उसने कॉलेज से भी मुख मोड़ लिया।
+ निष्क्रिय न बैठ कर जीविका के प्रश्नों के कई उत्तर खोजे—कृषि-कार्य किया, दूध की डेरी चलाई, अखबार बेचे, संपादन कार्य किया और सब के साथ-साथ क्रान्ति की भट्टी भी दहकाई।
+ क्रान्तिकारियों के संगठन के लिए देश के कोने-कोने में चक्रवात-सा घूमता रहा।

सक्रिय जीवन के साथ ही साथ भगतसिंह के पास अपनी सार्थक मृत्यु की सुनिश्चित योजना थी और दृढ़ता के साथ वह उसे कार्यान्वित कर रहा था।

उसके मन में यह संकल्प घर कर गया था कि वह अपनी साहसिक मृत्यु द्वारा देश के निराश जीवन में प्राण फूंक सकता है और सुषुप्त राष्ट्रीयता को झकझोर कर खड़ा कर सकता है। ऐसी एक मृत्यु को वह लाख जीवन से श्रेयस्कर समझता था। हुआ भी यही। उसकी मृत्यु के पश्चात् जो तूफान खड़ा हुआ उसकी भयंकरता से अँग्रेजी साम्राज्य की नैया डगमगाए बिना न रह सकी। उसने अपनी मृत्यु की योजना बनाई थी उसके प्रमाण हैं :—

- जलयानवाला बाग के हत्या-काण्ड के समय भगतसिंह की आयु लगभग बारह वर्ष थी। इतनी कम आयु में वह हत्याकांड के पश्चात् युक्तिपूर्वक बाग के अन्दर गया और शहीदों के खून से सनी मिट्टी भर लाया। इस रहस्य को उसने अपने तक ही सीमित रखा और खूनी मिट्टी की नित्य पूजा करता रहा। उसका संकल्प था कि वह या तो इस हत्या-काण्ड का बदला लेगा या उसी प्रकार की मृत्यु का वरण करेगा।

- लाहौर के अनारकली बाजार में एक बार उसके पिता ने क्रुद्ध होकर उसे छड़ी से मारते हुआ कहा—"शहर में तुझे कौन जानता है। तू तो हमारे नाम से चलता-फिरता है और हमारे नाम से पूछा जाता है।"

  भगतसिंह ने दृढ़ता से उत्तर दिया था—

  "पिताजी! यह ठीक है कि आज मैं आपके नाम से चलता-फिरता हूँ और आपके नाम से पूछा जाता हूँ पर एक दिन आएगा जब आप मेरा नाम लेकर चलेंगे-फिरेंगे और लोग आपको भगतसिंह के पिता के नाम से जानेंगे।"

  सोचने की बात है, इस उत्तर के पीछे उसे किस संकल्प का बल था।

- शादी का प्रस्ताव आने पर वह घर से भाग खड़ा हुआ। उसके सामने उदाहरण थे कि उसकी दो चाचियाँ किस प्रकार अपने पतियों के वियोग में रो-रो कर जीवन व्यतीत कर रही थीं। वह नहीं चाहता था कि वह भी किसी को रोने छोड़ जाय।

- आशंकित मृत्यु के समय वह औरों को पीछे रख कर स्वयं ही सबसे आगे रहता था। पहले बम का परीक्षण झाँसी के जंगल में उसने स्वयं अपने हाथ से किया था। सान्डर्स को गोली मारने की योजना में उसने सब से आगे का मोर्चा सम्हाला था।

- यह जानते हुए भी कि वह सान्डर्स-वध कर चुका है और पकड़े जाने पर फाँसी निश्चित है स्वयं अनुरोध करके वह केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकने

गया और वहाँ अपने दल की नीति के प्रकाशन के लिए आत्म-समर्पण किया।

- भगतसिंह को निर्दोष सिद्ध करने के लिए सबसे बड़ी योजना श्री सुभाषचन्द्र बोस के पास थी। उन्होंने सिद्ध कर दिया था कि जिस दिन सान्डर्स मारा गया है उस दिन भगतसिंह लाहौर में न होकर कलकत्ता में था और ट्राफिक के नियमों का उल्लंघन करने के अपराध में उसने कलकत्ता की अदालत में जुर्माना भरा था। भगतसिंह ने आग्रहपूर्वक अपने बचाव में इस प्रमाण को प्रस्तुत नहीं होने दिया।

- भगतसिंह को जेल से छुड़ाने की बड़ी भारी योजना बनाई गई। इस योजना में क्रान्ति-वीर श्री भगवतीचरण को अपने जीवन का बलिदान देना पड़ा। भगतसिंह ने पूर्व-सहमति प्रकट करके भी इस मुक्ति-योजना को कार्यान्वित नहीं होने दिया। मन-चाही मौत का पुरस्कार छोड़ कर वह भगोड़ा कहलाने को तैयार नहीं हुआ। उसकी ओर से निर्दिष्ट संकेत न मिलने पर पूरा दल अपने बम गोले और मोटर गाड़ियाँ लेकर निराश हो कर लौट गया।

- देश के बड़े-बड़े नेता भगतसिंह से मिलने जेल में गये। पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, श्री नरीमन, श्री रफीअहमद किदवई और श्री मोहनलाल सक्सेना आदि ने भगतसिंह को बहुत समझाया पर वह किसी भी मूल्य पर अँग्रेजी साम्राज्य से समझौता करने तैयार नहीं हुआ।

- फाँसी की आज्ञा मिलने पर वायसराय के पास दया-याचना (Mercy Petition) भेजने के लिए भी भगतसिंह को बहुत फुसलाया गया पर वह टस से मस नहीं हुआ। उसकी जबान पर तो यह शेर चढ़ा रहता था :—

"जब से सुना है मरने का नाम जिन्दगी है—
सर से कफन लपेटे कातिल को ढूंढ़ते हैं।"

आखिर उसने कातिल को ढूँढ़ ही लिया। जीवन के मंच पर उसने मौत का वरण कर ही लिया। आज भगतसिंह हमारे बीच नहीं है। भगतसिंह और देश के कई सपूतों ने धरती की आजादी के लिए अपने जीवन होम दिए। वे तो स्वयं अपने साथ लेकर चलने वाले अपने कफन ओढ़ चुके। यदि देश को जिन्दा रखना है तो उनकी बलिदान-भावना को विस्मृति का

कफन न उढ़ाया जाय और ईमानदारी के साथ इस बात का भी अनुभव किया जाय कि देश की आजादी के रास्ते में शहीदों की लाशों के पाँवड़े भी बिछे हैं।

युग-भावना पर समर्पित होकर कवि की भावना, ग्रन्थ के आवरण में आपके हाथों में है। इसे आप कैसे अपनाते हैं, आप जानें।

गोपाल-भवन, माधवनगर
उज्जैन, म० प्र०
२७ सितम्बर १९६४ ई०

श्रीकृष्ण 'सरल'

प्रसंग-क्रम

कफन न उढ़ाया जाय और ईमानदारी के साथ इस बात का भी अनुभव किया जाय कि देश की आजादी के रास्ते में शहीदों की लाशों के पाँवड़े भी बिछे हैं।

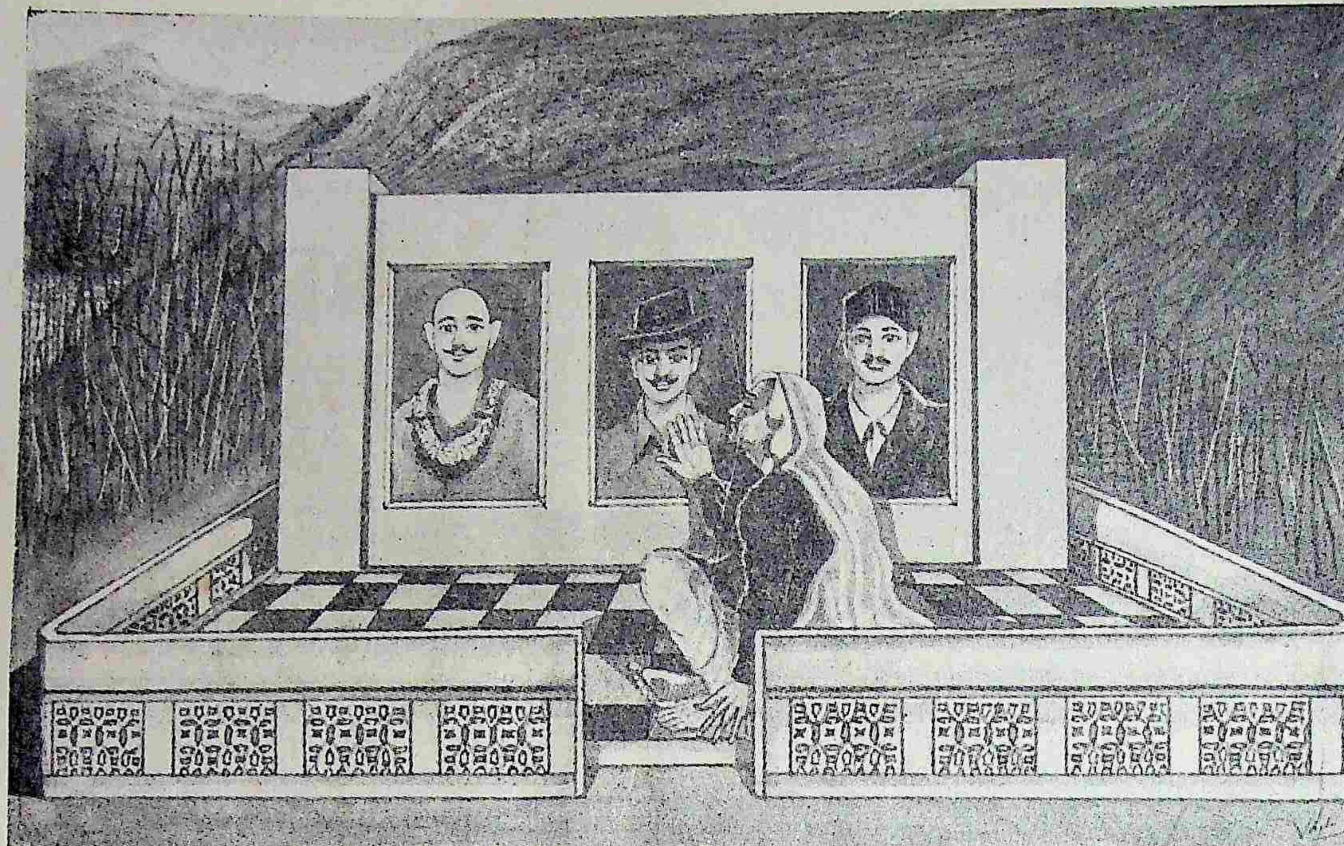
युग-भावना पर समर्पित होकर कवि की भावना, ग्रन्थ के आवरण में आपके हाथों में है। इसे आप कैसे अपनाते हैं, आप जानें।

गोपाल-भवन, माधवनगर
उज्जैन, म० प्र०
२७ सितम्बर १९६४ ई०

श्रीकृष्ण 'सरल'

प्रसंग-क्रम

सिंह-जननी अपने सिंह-सपूत



कौन तुम ? मन में तुम्हारे कौन-सी है व्याधि ?
अर्चना हित खींच लाई तुम्हें दिव्य समाधि ।

कौन माँ ममतामयी तुम ? क्यों नयन में नीर ?
उच्छ्वसित उर में तुम्हारे कौन-सी है पीर ?

सर्ग एक

सिंह-जननी

शान्ति के वरदान-सीं, तुम धवल-वसना कौन ?
संकुचित है मौन भी लख कर तुम्हारा मौन ।
दूध की मुस्कान से संपृक्त ये सित केश,
सौम्यता पर शुभ्रता का ज्यों विमल परिवेश ।

साधुता की, सरल जीवन के लिये यह देन,
उल्लसित मंथित अमल ज्यों ज्योत्स्ना का फेन ।
भव्यता धारण किये शुचि धवल दिव्य दुकूल,
या खिले जीवन-लता पर ये सुयश के फूल ।

कलुषता निर्वासिनी, यह धवलता की जीत,
संवरित है शीष पर, यह स्नेह का नवनीत।
प्रस्फुटित है भाल पर मानो हृदय का ओप,
साधना पर, सिद्धि का मानो सुखद आरोप।

और मुख पर स्निग्ध अन्तर की झलकती कान्ति,
लग रही, ज्यों साँस सुख की ले रही हो शान्ति।
भावनाओं की, मुखाकृति सहज पुण्य-प्रसूति,
झुर्रियों में युग-युगों की सन्निहित अनुभूति।

देह पर चित्रित त्वचा की संकुचित हर रेख,
लग रही वय-पत्र पर ज्यों एक सुन्दर लेख।
या कि जीवन-भूमि पर पग-डण्डियों का जाल,
चल रहा वय का पथिक संध्या समय की चाल।

कौन हो इस भाँति अपने आप में तुम लीन?
कौन हो तुम पुण्य-प्रतिमा-सी यहाँ आसीन?
कौन स्नेहाशीष की तुम मूर्ति अमित उदार?
कौन श्रद्धा-भावना ही तुम स्वयं साकार?

कौन तुम, मन में तुम्हारे कौन-सी है व्याधि?
अर्चना हित खींच लाई तुम्हें दिव्य समाधि।
है कृती वह कौन, किसका समाधिस्थ कृतित्व?
वन्दना से स्वयं वन्दित, कौन वह व्यक्तित्व?

कौन माँ! ममता-मयी तुम? क्यों नयन में नीर?
उच्छ्वसित उर में तुम्हारे, कौन-सी है पीर?
पूछता हूँ मैं अकिंचन एक कवि अनजान,
भाव-मग्ना कर रहीं तुम किस व्रती का ध्यान?

"वस करो अब वत्स ! अपना सुन लिया स्तुति-गान,
अब नहीं अपराध आगे कर सकेंगे कान।
बात हौले से करो, स्वर को सम्हाल-सम्हाल,
सो रहा इस भूमि में बरजोर मेरा लाल।

सो रहा है यहाँ, मेरी कोख का भूचाल,
सो रहा इस भूमि में निज शत्रुओं का काल।
सो रहा है मातृ-मन का यहाँ शाश्वत गर्व,
सो रहा सुख से, मना कर वह यहाँ बलि-पर्व।

सो रहा वंशानुक्रम से पुष्ट रक्तोन्माद,
जो कि वातावरण में ढल बन गया फौलाद।
सो रहा है यहाँ, मेरी आग का प्रिय फूल,
स्वर्ग का सुख दे रही, उसको धरा की धूल।

धूम धरती पर मचा, विद्रोह का वरदान,
यहाँ मेरे दूध का सोया अजस्र उफान।
सो गया उल्लास मेरा, सो गया आमोद,
एक माँ की गोद तज कर, दूसरी की गोद।

ओज अन्तस् का, यहाँ पर कर रहा विश्राम,
वत्स ! क्या तुमको बता दूँ उस हठी का नाम ?
लाल वह मेरा भगत, था सिंह ही साकार,
जन्म से ही था कहाया गया वह सरदार।

गर्जना उसकी विकट सुन, काँपते थे लाट,
निर्धना मैं, वह शहीदों का बना सम्राट।
सुन लिया, क्या और परिचय रह गया कुछ शेष ?
यहाँ मेरी भावना का सो रहा आवेश।"

"तनिक ठहरो माँ ! हुई वरदान मेरी भूल,
पूत चरणों की तनिक ले लूं सुशीतल धूल।
इन पगों पर ही रहे युग-युग नमित यह माथ,
फेर दो इस शीष पर माँ ! स्नेह-प्रश्लथ हाथ।

सिंह जननी धन्य हो तुम, कोटि बार प्रणम्य,
धन्य निश्चय ही तुम्हारा लाल वीर अदम्य।
किन्तु माँ ! शंका तनिक मेरी अभी है शेष,
बात हौले से करूँ, यह क्यों मिला आदेश ?"

"अरे ! इतनी सी न समझे तुम सरल सी बात,
मानवी मन के कहाते पारखी निष्णात।
सत्य है, शंका तुम्हारी है नहीं निर्मूल,
अर्थ मेरे भाव का तुमने लिया प्रतिकूल।

वार्ता के तीव्र स्वर से जागने का खेद,
शान्ति के संकेत का मेरा नहीं यह भेद।
वार्ता का विषय कर सकता उसे है त्रस्त,
निज प्रशंसा-श्रवण का, वह था नहीं अभ्यस्त।

वत्स ! दो बातें न कीं उसने कभी स्वीकार,
स्वयं का गुण-गान, या फिर शत्रु की ललकार।
देख पाता था न मेरा लाल, आँखें लाल,
निज प्रशंसा भी उसे करती रही बे-हाल।

किन्तु तुमने पूर्ण करने स्वल्प शिष्टाचार,
था 'कृती' या 'व्रती' शब्दों का किया व्यवहार।
संकुचन के क्षोभ को, उसके लिये यह बात,
है बहुत छोटी, कदाचित् हो बड़ा व्याघात।

आज तक है याद मुझको एक दिन की शाम,
एक दिन आये कहीं से वे, न लूँगी नाम।
साथ उनके आ गये थे मित्र उनके एक,
वार्ता से ही प्रकट अति बुद्धि और विवेक।

प्रस्फुटित वातावरण में हास्य और विनोद,
पा रहे थे हम सभी, वह सरल निश्छल मोद।
किया उपक्रम, मैं करूँ जलपान का उपचार,
सिंह-शावक आ गया मेरे हृदय का हार।

प्रणत होकर अतिथि का, उसने किया सम्मान,
अतिथि की वाणी बनी वरदान का तूफान।
"तुम प्रणत मुझको, प्रणत हो तुम्हें सब संसार,
जियो युग-युग, तुम करो निज सुयश का विस्तार।"

देख मेरी ओर बोले अतिथि वर सप्रयास,
कह रहा जो बात, भाभी ! तुम करो विश्वास।
है अडिग विश्वास मन में, यह तुम्हारा लाल,
विश्व में ऊँचा करेगा मातृ-भू का भाल।

आत्मा कहती, बनेगा वीर यह सम्राट,
इस धरा की दासता की बेड़ियों को काट।
पूत के लक्षण प्रकट हैं पालने में आज,
सिंहनी का सुअन होगा विश्व का सरताज।

अल्प वय, इतनी विनय, इतना पराक्रम, ओज,
सिंह-शावक सी ठवनि, ये नयन रक्तंभोज।
देह सुगठित, विक्रमी चितवन समुन्नत भाल,
शत्रुओं का शत्रु होगा यह कठोर कराल।"



महाराष्ट्र-केसरी स्व० श्री बाल गंगाधर तिलक

महाराष्ट्र-केसरी श्री बाल गंगाधर तिलक ने अपने पंजाब-प्रवास के समय बालक भगतसिंह को शुभाशीष देकर भविष्य-वाणी की थी कि यह बालक निश्चित ही पराक्रम के कार्य करके अमर-कीर्ति अर्जित करेगा।

अतिथि वर की बात में व्यति-क्रम हुआ तत्काल,
विनत होकर बाल ने स्वर में मधुरता ढाल।
कहा—"चाचाजी ! अनय यदि मैं करूँ, हो क्षम्य,
बात मुझको लग रही अनपेक्ष और अगम्य।

कह मुझे सम्राट, देते स्वप्न का क्यों जाल ?
स्वप्न में राजा बना करते सदा कंगाल।
मातृ-भू का ही अकिंचन बन सका यदि भृत्य,
सफल समझूँगा सभी मैं साधना के कृत्य।

और यदि गुण-गान आवश्यक, निवेदन एक,
देश के सम्मान का, स्वर में रहे उद्रेक।
सुन प्रशंसा, आदमी कर्तव्य जाता भूल,
अनधिकृत श्लाघा, पतन के लिये पोषक मूल।

जो न करता निज प्रशंसा सुन कभी प्रतिवाद,
अंकुरित उर में हुआ करता प्रमत्त प्रमाद।
विकस यह अंकुर बने जब एक वृक्ष विशाल,
पतन के परिणाम का फिर कुछ न पूछो हाल।

फिर निवेदन विज्ञवर ! हो क्षम्य यह व्याघात,
क्षम्य मेरी, आज छोटे मुंह बड़ी यह बात।
अनवरत अपनी प्रशंसा सुन हुआ कुछ क्षोभ,
प्रतिक्रमण का, संवरण मैं कर न पाया लोभ।"

"वार्ता का वत्स ! अब मैं क्या करूँ विस्तार,
वह प्रशंसा का सदा करता रहा प्रतिकार।
शान्ति के संकेत का मेरा यही था अर्थ,
और भी शंका रही कुछ शेष सुकवि समर्थ ?"

"धन्य हो माँ ! और क्या शंका रहेगी शेष ?
धन्य ऐसे पुत्र पाकर माँ ! हमारा देश।
धन्य हूँ मैं, आज सुन कर ये प्रबुद्ध विचार,
है नहीं सामर्थ्य, जो अभिव्यक्त हो आभार।

जान कर यह बात, जिज्ञासा बढ़ी कुछ और,
किन विचारों में पला था देश का सिर-मौर ?
किस तरह विकसित हुआ मन में विकट बलिदान ?
माँ ! करो उपकृत, सुना कुछ और भी प्रतिमान।"

वत्स तुम कितने चतुर, कितने उदार विचार,
स्वयं उपकृत का कथन-कर, कर रहे उपकार।
मातृ-मन का जानते हो तुम मनोविज्ञान,
बात कर यह, कर रहे प्रमुदित मुझे मतिमान।

लाल मेरा, बालपन में था बहुत शैतान,
हम नहीं केवल, पड़ौसी भी रहे हैरान।
जब झगड़ता, साथियों के केश लेता नोंच,
चिन्ह बनते गाल पर, लेता प्रकुप्त खरोंच।

फूल चुनना आग के, थे प्रिय उसे ये खेल,
घोर विपदायें विहँस कर लाल लेता झेल।
तोड़ता यह, फोड़ता वह, जोड़ता कुछ और,
थे कुए या बावड़ी सब खेलने के ठौर।

क्षमा करता, यदि कभी छोटे करें अपराध,
पर, सबल की धृष्टता का दण्ड था निर्बाध।
चौगुना भी क्यों न हो, वह माँगता था द्वन्द्व,
नम्र था व्यवहार में, संघर्ष में स्वच्छन्द।

मित्र की रक्षार्थ, वह बनता स्वयं था ढाल,
जो उसे नीचा दिखाये, किस सखी का लाल ?
बाहुओं का जोर था उसके लिये उन्माद,
मौम-सा तन, किन्तु बनता द्वन्द में फौलाद।

स्नेह में भी, वैर में भी, वह न था परिमेय,
दण्ड था उद्दण्डता का, साधुता का श्रेय।
नीति दुश्मन की सही पर स्वजन की न अनीति,
व्यक्ति पर उसकी नहीं, व्यक्तित्व पर थी प्रीति।

और हाँ, पूछी अभी तुमने हृदय की पीर,
पूछते थे तुम, लिये मैं क्यों नयन में नीर।
तो सुनो, है सहज ही सुत-व्यथा का सन्ताप,
सुन न पाती आज मैं निज तात का संलाप।

वह न मेरे पास, मेरी गोद का शृंगार,
आज सूना है हृदय, खोकर हृदय का हार।
हैं तड़पते कान सुनने लाल के प्रिय बोल,
हैं कहाँ वे चूम लूं जो मधुर स्निग्ध कपोल।

अंक में भर लूं जिसे, वह कहाँ कोमल गात,
वह न मेरे पास, उसकी रह गई है बात।
मातृ-मन्दिर पर हुआ अर्पित सुकोमल फूल,
शत्रुओं से जूझ, फाँसी पर गया वह झूल।

सांत्वना देता मुझे है लाल का सन्देश,
"शीघ्र ही स्वाधीन होगा माँ ! हमारा देश।
तुम न समझो माँ ! तुम्हारी गोद से मैं दूर,
तुम न समझो, आज तुम पर है विधाता क्रूर।

माँ ! हमारे देश के जितने हठीले बाल,
वे तुम्हारे ही भगत हैं, वे तुम्हारे लाल।
देख छबि उनकी, किया करना मुझे तुम याद,
विसर्जन मेरा, न बन जाये तुम्हें अवसाद।

स्वर्ग भी है जिस धरा के सामने अति रंक,
जो सभी की माँ हमारी, ले रही वह अंक।
व्यर्थ जायेगा नहीं माँ ! एक यह बलिदान,
है निकट स्वाधीनता का सुखद पुण्य-विहान।

मुक्ति की मंगल-प्रभाती सुनें जिस दिन कान,
ले नया उत्साह, खग-कुल कर उठें कल-गान।
जिस सुबह हो देश का वातावरण स्वच्छन्द—
गा उठें कवि-कण्ठ जिस दिन गीत नव, नव-छन्द—

मुक्ति के दिन बाल-रवि की रश्मियों का जाल—
इस धरा पर कुंकुमी आभा अलभ्य उछाल—
पुण्य-भारतवर्ष का जिस दिन करे अभिषेक--
देश के नर-नाहरों की पूर्ण हो जब टेक—

जब उठे दीवानगी की लहर चारों ओर—
गगन-भेदी घोष चूमे जब गगन के छोर—
जब दिशाओं में तरंगित हो हृदय का हर्ष—
विश्व अभिनन्दन करे—जय देश भारतवर्ष !

तब मिलूंगा तुम्हें फूलों की सुरभि के संग,
तुम्हें किरणों में मिलूंगा मैं लिये नव-रंग।
जब पवन अटखेलियाँ कर, करे तुमको तंग,
तब समझना, ये भगत के ही निराले ढंग।

तब लगेगा माँ ! दुपट्टा मैं रहा हूँ खींच,
तब लगेगा मैं तुम्हारे दृग रहा हूं मींच ।
भास परिचित स्पर्श का पा जब पुलक के साथ,
हाथ मेरा खींचने, अपना बढ़ा कर हाथ—

जब कहोगी—कौन है रे ढीठ ! तू है कौन ?
तब तुम्हें उत्तर मिलेगा एक केवल मौन ।
तुम चकित हो, चौंक देखोगी वहाँ सब ओर,
सुन सकोगी हर्ष-ध्वनियाँ और जय का शोर ।

एक ही क्यों भगत, देखोगी अनेकों वीर,
नमित नयनों से तुम्हारे चू पड़ेगा नीर ।
घुल सकेगा, धुल सकेगा रोष का उन्माद,
गर्व से प्रतिपल करोगी माँ मुझे तुम याद ।

तो यही सन्देश सुत का, कर रहा परितोष,
है सराहा भाग्य मैंने, दे न विधि को दोष ।
वत्स ! अन्तर का बताया है तुम्हें सब हाल,
तुम बताओ, क्यों बने जिज्ञासु तुम इस काल ?"

"लग रहा माँ ! मुझे जैसे आज जीवन धन्य,
आज मुझ-सा भाग्य-शाली कौन होगा अन्य ?
कर न पाया तप कि पहले मिल गया वरदान,
पूर्ण होता दिख रहा अपना बड़ा अरमान ।

भावनाओं ने हृदय से है किया अनुबन्ध,
क्रान्ति के इस देवता पर लिखूं छन्द प्रबन्ध ।
आ गया इस ओर लेने प्रेरणा मैं आज,
माँ ! तुम्हारे लाल की जैसे सुनी अवाज—

लगा जैसे कह रहा हो सिंह आज दहाड़,
लेखनी से कवि निराशा का कुहासा फाड़।
तुम सुकवि हो, मिला वाणी का तुम्हें वरदान,
तुम जगा दो निज स्वरों से देश में बलिदान।

लेखनी की नोंक में भर दो हृदय की शक्ति,
और कह दो धर्म केवल है धरा की भक्ति।
देश की मिट्टी इधर, उस ओर सौ साम्राज्य,
ग्रहण मिट्टी को करो, साम्राज्य हों सौ त्याज्य।

शीष पर धर देश की मिट्टी, करो प्रण आज,
प्राण देकर भी रखेंगे, हम धरा की लाज।
सह न पायेंगे कभी हम, देश का अपमान,
देश का सम्मान है प्रत्येक का सम्मान।

जो उठाये इस हमारी मातृ-भू पर आँख,
रोष की ज्वाला बने, हर फूल की हर पाँख।
भूल कर भी जो छुए इस देश का सम्मान,
कड़कती बिजली बने हर कली की मुस्कान।

लक्ष्य इस आदर्श का, सब को बता दो आज,
सो रहे जो, कवि ! जगा दो दे उन्हें आवाज।
आज कवि की लेखनी उगले कुटिल अंगार,
साधना का, रक्त की लाली करे शृंगार।

गर्जना का घोष हो, हर शब्द की झंकार,
रोष की हुँकार हो गाण्डीव की टंकार।
शान्ति का सरगम बने संघर्ष का उत्कर्ष,
आज भारतवर्ष का हर वीर हो दुर्द्धर्ष।

कवि ! भरो पाषाण में भी आज पागल प्राण,
चाहता युग कवि-स्वरों का आज सत्य प्रमाण ।
कर सके यह, लेखनी का तो सफल अस्तित्व,
सफल, वाणी का मिला जो आज तुमको स्वत्व ।''

''माँ ! इसी सन्देश की उर ने सुनी आवाज,
खींच लाई है यही आवाज मुझको आज ।
क्रान्ति के जो देवता, मेरे लिये आराध्य,
काव्य साधन मात्र, उनकी वन्दना है साध्य ।

और यह सौभाग्य मेरा, जो यहाँ तुम प्राप्त,
क्या न शुभ संकल्प का संकेत यह पर्याप्त ?
तुम करो माँ ! आज मुझ पर और भी उपकार,
सिंह-सुत की वार्ता कह, आज सह-विस्तार ।''

''वत्स ! तुमने विवश मुझको कर दिया है आज,
रह न पायेगा हृदय में आज कोई राज ।
पर समय का भी हमें रखना पड़ेगा ध्यान,
क्यों न घर चल हम विचारों का करें प्रतिदान ?

दे सकूंगी क्या तुम्हें आतिथ्य का आह्लाद ?
और रूखी रोटियों में क्या मिलेगा स्वाद ?
किन्तु तुमको पास बैठा, स्नेह का ले रंग,
लाल के चित्रित करूँगी, मैं अनेक प्रसंग ।''

''माँ ! तुम्हारा मान्य है साभार यह प्रस्ताव,
रोटियाँ रूखी भले, रूखा न होगा भाव ।
वस्तु में क्या, भावना में ही निहित आनन्द,
काव्य शोभित भाव से, हो भले कोई छन्द ।

तो चलो माँ ! आज मुझको दो दिशा का दान,
आज मेरी भावनाओं को करो गतिवान ।
मुक्त स्नेहाशीष का खोलो अमित भण्डार,
विश्व-जीवन को बने आलोक, माँ का प्यार ।"

उस दिन जब मैं आया भू पर, कोई एक प्रतिष्ठित घर था,
अंधकार में ज्योति किरण-सा, मैं उस घर में हुआ मुखर था।
सहज ज्ञान से बूढ़ी दादी ने जो मेरा अर्थ लगाया,
'बालक यह भागों वाला है' यही तथ्य सब को समझाया।

मंगल-मोद-बधावे के स्वर हर अन्तर से फूट रहे थे,
घर-बाहर, प्रिय-जन पुर-जन सब अगणित खुशियाँ लूट रहे थे।
हर्ष हृदय में, और पालने में शैशव झूला करता था,
माँ का मन अपने मोहन की ममता से फूला करता था।

जहाँ किलक मुस्कान बिखरती, शैशव-क्रीड़ा जहाँ मुखर है,
स्वर्ग अकिंचन उसके आगे, सचमुच ही ऐसा घर, घर है।
जब मंजुल मुस्कान बाल की, शुभ्र चाँदनी छिटकाती है,
अनायास नन्दन की शोभा घर-आँगन में आ जाती है।

इस आँगन में भी नन्दन की शोभा बलि हो-हो जाती थी,
मुस्कानों को सुधा-धार से स्वच्छ चांदनी धो जाती थी।
पलने के हिचकोले शिशु को मृदु-संवेदन बन जाते थे,
मनोभाव सब ही के, उसके सरस-स्नेह में सन जाते थे।

पड़े-पड़े हाथों-पैरों की थिरकन में गति आती रहती,
अपनी-अपनी मति से, सब को मन का अर्थ बताती रहती।
दादी कहती—"बाल विमाता की गोदी में खेल रहा है,"
माँ कहती—"हाथों-पैरों से यह घर के दुख ठेल रहा है।"

चाची नया अर्थ बतलाती—
"यह जो अपने हाथ-चलाता,
बन्धन का जो ताना-बाना,
काट-काट यह उसे गिराता।"

जीवन का स्वर्ण-भोर

'जन्म' नाम पाया है मैंने, जब से जन्म हुआ है मेरा,
विविध रूप नामों से जग में लगता रहता मेरा फेरा।
जग-जीवन के दो छोरों में, मैं जीवन का एक छोर हूँ,
दुख की काली रात नहीं हूँ, मैं जीवन का स्वर्ण-भोर हूँ।

मैं जन-जीवन का प्रतीक हूँ, मैं उमंग की मृदु हिलोर हूँ,
एक-दूसरे को जो बाँधे, बन्धन की वह स्नेह-डोर हूँ।
मैं अपने मन का राजा हूँ, नहीं समय का मैं अनुचर हूँ,
मैं दर्पण का उज्ज्वल मुख हूँ, शुभागमन मैं चिर-सुन्दर हूँ।

यह जितनी है सृष्टि, सभी के जीवन का मैं पहला क्रम हूँ,
कोई कहता निपट सत्य मैं, कोई कहता है मैं भ्रम हूँ।
जो कुछ हूँ मैं, एक अजन्मा की शुभ इच्छाओं का फल हूँ,
मैं जीवन की प्रथम रश्मि हूँ, सूनेपन की चहल-पहल हूँ।

जब मैं अपनी आँख खोलता, तो फिर जीवन ही जीवन है,
जल-थल-नभ मेरे घर-आँगन, मेरी गति यह जड़-चेतन है।
जग के जन ग्रह-नक्षत्रों से मेरी गति निर्धारित करते,
मेरे जीवन पथ के जाने कितने-कितने चित्र उतरते।

देख-देख इन गति-विधियों को, मन ही मन मैं मुस्काता हूँ,
ज्ञात मुझे भी नहीं, कौन-सा पथ जिस पर मैं बढ़ जाता हूँ।
उत्कण्ठा के पथ पर चल कर, मैं जग-जीवन में आता हूँ,
आशा के उज्ज्वल प्रकाश-सा, सब के मन पर छा जाता हूँ।

बुढ़िया-पुराण
या
परीक्षित मनोविज्ञान

शैशव सुख की साँस ले रहा था ममता की मृदु छाया में,
रमे हुए थे सब ही के मन, उस जादूगर की माया में।
जाने कौन-कौन सी निधियाँ, मुट्ठी में बाँधे रहता था,
सुखद सिद्धियाँ कितनी-कितनी, मन ही मन साधे रहता था।

जो कुछ पड़े हाथ में, मुख के अर्पण होना सहज कृत्य था,
अभी जटिलता छू न गई थी, जो कुछ था सब सरल सत्य था।
बाल, खिलौनों से क्या खेले, बना हुआ था स्वयं खिलौना,
किलकारी से सुधा बरसती, मुस्कानों से जादू-टोना।

यह भोलापन, हाव-भाव ये क्यों न किसी को प्यारे होते ?
उस चन्दा पर क्यों न रात-दिन राई-लोन उतारे होते ?
उसकी गतियों में विकास था, उस विकास में अच्छी गति थी,
पैतृक अनुहारों की, शिशु के अंग-अंग में प्रिय अनुरति थी।

अब बन्धन बन गया, खिलाड़ी उस ललना को अपना पलना,
पीठ उठा, करवट ले-लेकर, सहज कृत्य हो गया उछलना।
भू पर सरक-सरक चलने में, उसको अद्भुत सुख मिलता था,
चूम-चूम धरती-माता को, उसका मन-प्रसून खिलता था।

बालक क्या था, एक खिलौना सबने किया स्नेह-अर्पण था,
बुआ, चाचियों और ताइयों सब ही का वह आकर्षण था।
थी पड़ौस की महिलाओं की, बैठक वहाँ नित्य ही जमती,
एक बार चर्चा छिड़ जाये, नहीं थामने से वह थमती।

फिर उस ओर लपक बैठा वह, एक तमंचा रखा जहाँ पर,
एक सपाटे में ही उसको जाकर हथिया लिया किलक कर।
अब बालक के लिये दौड़ थी, चाची ने झट लपक उठाया,
बार-बार माथे का चुम्बन लेकर उसको हृदय लगाया।

बोली—"राजा-बेटा घर की आन-बान का रखवाला है,
इसीलिये तो वीर-पुत्र ने हाथ तमंचे पर डाला है।"
कोई बोल उठी, "यह काका आगे चल जण्डेल बनेगा,
बड़े-बड़ों की नाकों को यह गुड्डा विकट नकेल बनेगा।"

जिससे जो बन पड़ा, सभी ने अपनी मति से अर्थ लगाया,
चूम, बलैयाँ ले-ले सबने संचित स्नेहाशीष लुटाया।
माँ प्रमुदित थी सुन-सुनकर यह, फूल रही थी मन ही मन में,
मना रही थी, सदा सुखी हो हे प्रभु ! यह अपने जीवन में।

यह सब की आँखों का तारा जग में अद्भुत नाम कमाये,
इसकी उज्ज्वल कीर्ति-सुरभि से, जग का घर-आँगन भर जाये।
भोजन के क्रम में गृहिणी ने गृह-पति को सब हाल सुनाया,
भाग्य परखने का उपक्रम सब उनको ब्यौरे-बार बताया।

कहा किस तरह किलक-किलक कर शिशु ने निज करतब दिखलाये,
और किस तरह आभूषण सब उसने हाथों से बिखराये।
कहा—लपक कर कैसे उसने हाथ तमंचे पर था डाला,
कहा कि कैसे सबने उसको बतलाया घर का उजियाला।

फिर सगर्व बोली—"दिखता, यह तुम पर ही जायेगा आगे,
यह घर में क्या आया, लगता जैसे भाग्य हमारे जागे।
वक्ष तन गया गृह-पति का भी, मूंछों-मूंछों में मुस्काये,
बाल-सिंह को गोदी में ले, लगे अकड़ने रौब जमाये।

कोई कहती—"घर का चन्दा कितना प्यारा-प्यारा होगा,
सभी जगह उजियाला होगा गुड्डा राज-दुलारा होगा।"
कोई कहती—"बड़ा आदमी, बहुत बड़ा यह अफसर होगा,
खूब कमाई करके देगा, सदा सुखी इसका घर होगा।"

जब महिला-मण्डल जुड़ जाता, बातों का बस क्रम ही क्रम था,
बाल-मनोविज्ञान उखड़ता, नहीं तर्क में कुछ विभ्रम था।
किसी एक को उस दिन सूझी—आओ ! इसका भाग्य परख लें,
आगे यह क्या बनने वाला, सरल युक्ति से इसे निरख लें।

जुटा लिये उपकरण अनेकों, खेल-खिलौने, पट्टी-पुस्तक,
कलम-दवात, और आभूषण सोने-चाँदी के आकर्षक।
वस्त्र रेशमी हुए उपस्थित सुन्दर चमकीले-भड़कीले,
स्वच्छ, धवल, कुछ रंग-बिरंगे, लाल, गुलाबी, नीले-पीले।

कृषि-उद्योग आदि के भी कुछ यन्त्र हुये सज्जित धरती पर,
छोटे-मोटे अस्त्र-शस्त्र भी रखे वहाँ पर एकत्रित कर।
निश्चित हुआ सरक कर बालक जो भी पहली वस्तु उठाये,
तो उसके भविष्य का उसके क्रम में अर्थ लगाया जाये।

कुछ दूरी पर बाल-सिंह को छोड़ दिया आगे बढ़ जाने,
रखे हुये उपकरण अनेकों, सम्मुख ही थे मन ललचाने।
किलक गया शिशु उन्हें देखकर, लगा सरकने वह मुँह बाए,
लगा तैरता-चलता-सा वह, हाथ बढ़ा कर शीष उठाए।

निकट वस्तुओं के जा पहुँचा, ऐसा उसने भरा सपाटा,
जहाँ रखे थे अलंकरण कुछ, मारा उन पर एक झपाटा।
बिखर गये सब इधर उधर वे, मानो यह उनका वितरण था,
लगा कि जैसे यह समानता से ही बँटवारे का प्रण था।

फिर उस ओर लपक बैठा वह, एक तमंचा रखा जहाँ पर,
एक सपाटे में ही उसको जाकर हथिया लिया किलक कर।
अब बालक के लिये दौड़ थी, चाची ने झट लपक उठाया,
बार-बार माथे का चुम्बन लेकर उसको हृदय लगाया।

बोली—"राजा-बेटा घर की आन-बान का रखवाला है,
इसीलिये तो वीर-पुत्र ने हाथ तमंचे पर डाला है।"
कोई बोल उठी, "यह काका आगे चल जण्डेल बनेगा,
बड़े-बड़ों की नाकों को यह गुड्डा विकट नकेल बनेगा।"

जिससे जो बन पड़ा, सभी ने अपनी मति से अर्थ लगाया,
चूम, बलैयाँ ले-ले सबने संचित स्नेहाशीष लुटाया।
माँ प्रमुदित थी सुन-सुनकर यह, फूल रही थी मन ही मन में,
मना रही थी, सदा सुखी हो हे प्रभु ! यह अपने जीवन में।

यह सब की आँखों का तारा जग में अद्‌भुत नाम कमाये,
इसकी उज्ज्वल कीर्ति-सुरभि से, जग का घर-आँगन भर जाये।
भोजन के क्रम में गृहिणी ने गृह-पति को सब हाल सुनाया,
भाग्य परखने का उपक्रम सब उनको ब्यौरे-बार बताया।

कहा किस तरह किलक-किलक कर शिशु ने निज करतब दिखलाये,
और किस तरह आभूषण सब उसने हाथों से बिखराये।
कहा—लपक कर कैसे उसने हाथ तमंचे पर था डाला,
कहा कि कैसे सबने उसको बतलाया घर का उजियाला।

फिर सगर्व बोली—"दिखता, यह तुम पर ही जायेगा आगे,
यह घर में क्या आया, लगता जैसे भाग्य हमारे जागे।
वक्ष तन गया गृह-पति का भी, मूंछों-मूंछों में मुस्काये,
बाल-सिंह को गोदी में ले, लगे अकड़ने रौब जमाये।

बोल उठे, "मुझको भी दिखता,
उज्ज्वलतम भविष्य इसका है।
बोलो ! अब तो मान गईं तुम,
आखिर यह बेटा किसका है।"

सर्ग दो

देवकी का नन्दन यशोदा की गोद में

“बात क्या मन की कहूँ मैं, आज जब तुम जा रहे हो,
धैर्य मैं धारण करूँ, यह बात तुम समझा रहे हो।
धैर्य का उपदेश यह जो आज मुझको दे रहे हो,
क्या न समझूँ, तुम परीक्षा आज मेरी ले रहे हो।”

“यह परीक्षा भी नहीं, उपदेश क्या देना मुझे है ?
नाव जीवन की, तुम्हारे साथ ही खेना मुझे है।
जा रहा हूँ, किन्तु यह तो एक स्वल्प प्रवास ही है,
यह हमारे कार्यक्रम का एक प्रिय अभ्यास ही है।”

"कार्यक्रम ? क्या कार्यक्रम फिर तुम वही दुहरा रहे हो ?
क्या वही विध्वंस-लीला फिर मचाने जा रहे हो ?
इस हुकूमत को उलटना, यह तुम्हारा कार्य-क्रम है,
काम शुभ करने चले, साहस तुम्हारा कुछ न कम है।

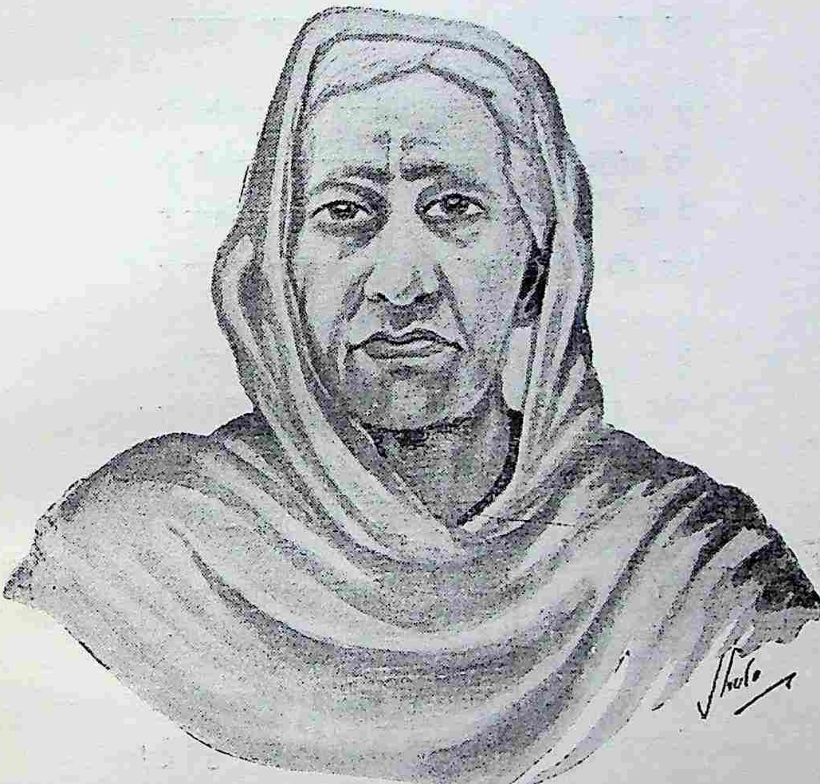
किन्तु घर का भार किस पर छोड़ने का तय किया है ?
क्या कभी इस ओर भी तुमने कभी निश्चय किया है ?
हैं न कम भाई तुम्हारे, जेल को ही घर बनाया,
भाव मन में भी तुम्हारे, यह सदा से ही समाया।

यह बहू कितनी दुखी, क्या तुम नहीं यह जानते हो ?
क्यों न मन की पीर उसकी तुम कभी पहचानते हो ?
जेल को घर समझ, देवर ने किया घर से किनारा,
रह गया है आँसुओं का ही इसे केवल सहारा।

कार्य-क्रम ही लक्ष्य है, तो यत्न कर उसको छुड़ाओ,
दुख नहीं होगा मुझे, वह घर रहे तुम दूर जाओ।
क्यों न दुख-सुख भी परस्पर बाँट सम-भागी बनें हम ?"
वीतरागी तो नहीं, फिर क्यों न अनुरागी बनें हम ?"

"ठीक ही तुम कह रही हो, यत्न का भी ध्यान मुझको,
वीर भाई पर सदा से ही रहा अभिमान मुझको।
और सचमुच दुख वधू का भी दुसह अब हो चला है,
किन्तु रो-धो कर किसी का आज तक कब दुख टला है।

दुःख कितना भी बड़ा हो, धैर्य ही उपचार होता,
डूबते को एक तिनका भी बड़ा आधार होता।
सौंप दो उसको भगत, खेले उसी की गोद में वह,
पुत्र अपना ही समझ कर, हो सदा ही मोद में वह।



स्वर्गीया श्रीमती हरनाम कौर

भगतसिंह के प्रसिद्ध क्रांतिकारी चाचा, स्व० सरदार अजीतसिंह की धर्मपत्नी स्व० हरनाम कौर पंजाब में चाची के नाम से जानी जाती हैं। बाल-भगत चाची के लिये खिलौना और आँखों का तारा सब कुछ था।

पंजाब के घर-घर में चाची को अत्यन्त श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है।

और गृह-चिन्तन सभी, अब यह तुम्हारा कार्य होगा,
मैं रहूँ निश्चिन्त, तो फिर यत्न भी अनिवार्य होगा।
आज से सहयोग या सह-धर्म यह होगा तुम्हारा,
यह तुम्हारा योग, मेरे यत्न में होगा सहारा।

है मुझे विश्वास, अपना धर्म तुम पहचानती हो,
जो परिस्थितियाँ हमारी हैं, उन्हें तुम जानती हो।
है सदा चलना उसी पर, पंथ जो अपना लिया है,
उठ गये जो पाँव, काँटों से न समझौता किया है।"

इस तरह गृह-पति गये, था कार्य[1] का उनको निमंत्रण,
और गृहणी को बना कर्तव्य अब गृह का नियंत्रण।
स्नेह से निज देवरानी को बहन कह कर बुलाया,
और फिर मंतव्य अपना यत्न से उसको सुनाया—

"जानती ही हो बहिन ! तुमसे छिपी क्या बात घर की,
खा रहे ये ठोकरें सब, देश के हित दर-बदर की।
छोड़ कर दायित्व मुझ पर, आज वे भी जा चुके हैं,
किस तरह करना हमें क्या, वे सभी समझा चुके हैं।

आज से दायित्व मैं तुमको भगत का दे रही हूँ,
भार मैं गृह की व्यवस्था का स्वयं ही ले रही हूँ।
जानती हूँ, बाल के प्रति है अकथ अपनत्व तुमको,
लाल के प्रति आज माँ का सौंपती हूँ स्वत्व तुमको।"

---

१ 'कार्य' = क्रान्तिकारी लोग जब तोड़-फोड़, लूट-पाट या किसी शत्रु या देश-द्रोही की हत्या की योजना बनाते थे तो अपनी सांकेतिक भाषा में वे इसे 'कार्य' (Action) कहते थे।

"भाग्यशाली मैं बहुत, जीजी ! तुम्हारा प्यार पाकर,
और भी बड़भागिनी हूँ, आज यह अधिकार पाकर।
यह बड़प्पन है तुम्हारा, जानतीं तुम मर्म मेरा,
चाहती हूँ, पर सुरक्षित रहे सेवा-धर्म मेरा।

स्नेह तो पा ही लिया है, किन्तु मैं आशीष पाऊँ,
कर्म-रत रह कर सदा सद्धर्म मैं अपना निभाऊँ।
चैन पहुँचाती सभी के हृदय को कर्तव्य-रति है,
कर्म की ही प्रेरणा, इस विश्व-जीवन की सुगति है।

और यह चन्दा सलोना जो मुझे तुमने दिया है,
सच कहूँ जीजी ! बड़ा उपकार ही तुमने किया है।
लग रहा मुझको कि जैसे आज बचपन लौट आया,
कूदता-हँसता खिलौना, खेलने को आज पाया।

बाल में चापल्य, वय के साथ बढ़ता जा रहा है,
बाल-रवि वय के गगन में पुलक चढ़ता जा रहा है।
ठुमक कर चलना, फुदकना, सरलता से खिल-खिलाना,
मोहनी सी डालता है, बाल का आंखें मिलाना।

ये नयन बोले बिना ही भेद मन का खोल देते,
और अस्फुट बोल तो मानो सुधा-रस घोल देते।
गोद का, घर का, न आँगन का इसे बन्धन सुहाता,
लग गये हैं पाँव, बाहर खेलने जी छटपटाता।

है मुझे विश्वास जीजी ! वंश का दीपक हमारा,
विश्व का आलोक होगा, देश का उज्ज्वल सितारा।
भग्न इस मेरे हृदय की, एक शुभ आशा यही है,
देश का गौरव बने यह, आज अभिलाषा यही है।

सर्ग तीन

बन्धूक का वृक्ष

बाल-तपस्वी-सा जो अपनी धुन में ही मतवाला है,
वीर-पुत्र यह अपने घर का दीपक है, उजियाला है।
चुप होकर बैठे रहना, यह इसको नहीं सुहाता है,
घर को उलट-पुलट करता है, सर पर उसे उठाता है।

अगर खिलौने मिल जाएँ तो उन्हें तोड़ता रहता है,
तोड़-फोड़ कर, सूझ-बूझ से उन्हें जोड़ता रहता है।
उठा-पटक के सब कामों में इसका मन रम जाता है,
समझो काम हुआ पूरा वह, जहाँ ध्यान जम जाता है।

इनकी चाल निराली सब से इनके हाल निराले हैं,
मन में ताने-बाने बुनते रहते बैठे-ठाले हैं।
सपनों की रंगीन सुनहली दुनिया में ये रहते हैं,
अपनी भाव-लहरियों में ही डूब-डूब कर बहते हैं।

जमे हुये श्रीमान अभी ये, अपनी किसी विकट धुन में,
पता नहीं ये किस उलझन में, जाने किस उधेड़-बुन में।
अपने नन्हें-नन्हें हाथों से ये खोद रहे धरती,
बाल-कल्पना इसके मन में है ऊँची उड़ान भरती।

रखे हुये पिस्तौल निकट ही, रखे हुये हैं ये पानी,
जो भी खेल देखता इनका, होती उसको हैरानी।
लो अपना प्रवास पूरा कर, इनके पापा[1] भी आये,
अपने साथ, एक वे अपने सुहृद मित्र[2] को भी लाये।

देख रहे यह खेल तमाशा दोनों ही कौतूहल से,
देखें क्या करते पानी से, क्या करते ये पिस्टल से।
अरे ! अरे ! क्या किया अतिथि ने, बड़ा रंग में भंग किया,
बड़ी ललक से बाल-भगत को पुलक गोद में उठा लिया।

पीठ थप-थपा पूछ रहे—"बेटे ! तुम क्या करने बैठे ?
कुआ खोद कर क्या तुम उसमें यह पानी भरने बैठे ?"
"नहीं ! नहीं ! चाचाजी ! मैं तो अच्छा बाग लगाऊँगा,
मैं बन्दूक बो रहा, बन्दूकों का पेड़ उगाऊँगा।"

---

१. बचपन में भगतसिंह अपने पिता को 'पापा' और माँ को 'मम्मी' कह कर संबोधन करते थे, अतः उसके द्वारा आगे भी इसी संबोधन का प्रयोग मिलेगा।

२. मित्र = भगतसिंह के पिता के मित्र, श्री आनन्दकिशोर मेहता, जो कांग्रेस कमेटी के मन्त्री थे। उन्हीं को भगत ने उत्तर दिया था :—"मैं दंबूक बोंदा हाँ (मैं बन्दूक बो रहा हूँ)" बचपन में बाल-भगत बन्दूक को दंबूक कहता था।

"अच्छा ! तुम बन्दूक बो रहे, पर फल किसे चखाओगे ?
क्या चिड़ियों के छोटे-छोटे बच्चे मार गिराओगे ?"
"बन्दूकों के फल चाचाजी ! मेरे दुश्मन खायेंगे,
चिड़ियों के बच्चे तो मेरे साथ खेलने आयेंगे।"

"मुन्ने ! कौन तुम्हारे दुश्मन हैं, यह भी तो बतलाओ
चले निशाना किसे बनाने, यह भी मुझको समझाओ।"
"राज कर रहे जो भारत में, वे सब अपने दुश्मन हैं,
उन्हें भगा कर अपनी माँ के हमें काटने बन्धन हैं।"

"किन्तु अकेले, बड़ा काम तुम यह कैसे कर पाओगे ?
तुम तो अभी बहुत छोटे हो, कैसे लड़ने जाओगे ?"
"नहीं अकेला, मैं भी अपनी सेना एक बनाऊँगा,
एक-एक पिस्तौल सभी को देकर, उन्हें भिड़ाऊँगा।"

"क्या तुमने आँखों से देखा, दुश्मन कैसा होता है ?
कैसे रहता ? क्या खाता है ? और कहाँ वह सोता है ?"
"दुश्मन पल्टन में रहता है, वह गोरा कहलाता है,
वह सब को बन्दूक दिखा कर अपना रौब जमाता है।

कल ही एक इधर से निकला, बड़ी शान से जाता था,
बन्दर जैसा दिखता था वह, बच्चों को डरपाता था।"
"अच्छा ! बहुत डरे होगे तुम, भाग गये होगे घर में,
मुँह ढक कर छिप बैठ गये होगे तुम अपने बिस्तर में।"

"क्यों डरपोकों जैसी बातें, चाचाजी तुम करते हो,
मुझको लगाता शायद तुम ही उन गोरों से डरते हो।
में क्यों लगा भागने, मैं था साथ लिये अपनी टोली,
मैंने तो अपनी पिस्टल से दागी थी उस पर गोली।

फिर सबने गोलियाँ चलाईं, ढेर हो गया वह गिर कर,
वहीं छोड़कर आये हम सब देखा तक न उसे फिर कर।"
"बड़े बहादुर हो तुम बच्चू ! हम तुमको पहचान गये,
बाप सेर, तो सवा सेर तुम निकलोगे, हम जान गये।"

बाल-खिलाड़ी
बाल-मनोविज्ञान की कसौटी पर

बच्चू बोते रहे तमंचा, अपनी धुन में लगे-लगे,
बच्चू के पापा-चाचा भी रहे देखते ठगे-ठगे।
पापा बोले, मेहता जी ! मैं परेशान इसकी धुन से,
परेशान सारा घर रहता है इसकी उधेड़-बुन से।

बच्चा क्या है, देख लिया तुमने, यह आक-धतूरा है,
जाने किस दुनिया में रहता, अपनी धुन का पूरा है।
सीख रहा यह झूट बोलना, अभी-अभी हमने देखा,
गोरे पर पिस्तौल चलाने का कल्पित ही है लेखा।

क्या भविष्य होगा इसका, मैं नहीं समझ यह पाता हूँ,
उलझन बढ़ती ही जाती, जितना अनुमान लगाता हूँ।
जाने कैसी मति है इसकी, जाने क्या इसकी गति है,
तोड़-फोड़ के खेलों में ही इसकी रुचि, इसकी रति है।"

बोले मेहताजी, "प्रियवर ! यह बात नहीं कुछ उलझन की,
स्वाभाविक ही है खेलों में रुचि शैशव की, बचपन की !
बालक के मन में खेलों के प्रति होती अनुरक्ति सहज,
संचित हैं जो शक्ति रक्त में, यह उसकी आवृत्ति सहज।

खेलों के द्वारा, बालक करता निज शक्ति-प्रदर्शन है,
जीवन के हित नई शक्ति का ही करता वह अर्जन है।
जग-जीवन, मानव-जीवन को नित-नूतन संघर्ष लिये,
यह संघर्ष-भावना, बच्चों का अभिनव उत्कर्ष लिये।

बालक हों निरुपाय अगर, तो वह बचपन, बचपन कैसा ?
यदि बैठे निश्चेष्ट रहें वे, तो उनका जीवन कैसा ?
उन्हें जूझना होगा, आगे चल कर अपने जीवन में,
इसीलिये अभ्यास किया करते वे उसका बचपन में।

धरे हाथ पर हाथ, न बालक कभी समय अपना खोता,
सहज-वृत्तियों[1] का विकास ही इन खेलों द्वारा होता।
खेलों से संवेगों का भी होता रहता परिशोधन,
क्रिया-शीलता का ही होता है खेलों से अनुमोदन।

तोड़-फोड़ द्वारा ही बालक अपना मन भरता रहता,
वह अपनी रचना-प्रवृत्ति को ही विकसित करता रहता।
सहज-ज्ञान अर्जित करता है, वह अपने ही कौशल से,
बालक आविष्कर्ता बनता, अपनी बुद्धि और बल से।

हस्तक्षेप निरर्थक, बालक की गति में बाधक होता,
अपने मन के संकल्पों का, हर बालक साधक होता।
उचित नहीं है, क्रिया-शीलता में हो किंचित अवरोधन,
हमें उचित है केवल उसकी रुचियों का ही परिशोधन।"

"नये विचार मिले जो, इनसे मेहताजी ! मैं सहमत हूँ,
मैं अपने बच्चे की रुचियों, गति-विधियों से अवगत हूँ।
पर इसकी बन्दूक-तमंचा-बाजी का क्या मतलब है,
क्यों विद्वेष-भावनाओं से पूरित इसका शैशव है ?"

---

१. बालकों की मूल-प्रवृत्तियों (Natural Instincts) के लिये यहाँ 'सहज-वृत्ति' शब्द का उपयोग किया गया है। इस अर्थ में आगे भी इस शब्द का प्रयोग होगा।

"विषय नहीं विस्मय का, यह तो परम्परा का द्योतक है,
वातावरण आपके घर का ही इसमें उद्बोधक है।
बालक यह कल्पना-शील है, जो कुछ सुनता रहता है—
सहज संस्कारों वश उसको मन में गुनता रहता है।

सुन-सुनकर, विदेशियों के प्रति घृणा जगी इसके मन में,
समा गई प्रतिशोध-भावना है इसके अवचेतन में।
वही भावना प्रबल कभी हो जाती है उद्दीपन से,
किसी फिरंगी अफसर या गोरे सैनिक के दर्शन से।

बस फिर क्या, प्रतिशोध-भावना वही वेग से है जगती,
जाग्रत हो, कल्पना कुलाँचें मन ही मन खाने लगती।
"मारूँगा—काटूँगा इसको, मैं इनका सर फोड़ूंगा,
हाथ उठाया इसने यदि, तो मैं उसको भी तोड़ूंगा।"

इन्हीं कल्पनाओं का मन में, होता रहता उद्वेलन,
कर देता सम्बद्ध उन्हीं को है, उद्दीपन का दर्शन।
सत्य और कल्पना, न कर पाता बालक इनमें अन्तर,
सुखद कल्पना इसीलिये लगती है उसे सत्य-सुन्दर।

सत्य समझ कर ही घटनाओं का विवरण वह देता है,
होता वह सन्तुष्ट सोचकर, जैसे वही विजेता है।
अतः कल्पना की उड़ान यह नहीं झूठ कहलाती है,
सहज वृत्तियों के उभार से यह द्रुत-गति पा जाती है।

इन बातों को झूठ समझकर, करें प्रताड़ित बालक को,
नहीं चाहिए ऐसा करना, शिक्षक को या पालक को।
उचित यही, निर्देशन से हो सहज-वृत्तियों का शोधन,
दण्ड-व्यवस्था और दमन से उचित नहीं है अवरोधन।"

"मान लिया यह तो मेहताजी, पर कैसे संशोधन हो?
भले-बुरे का, बालक को कुछ थोड़ा तो उद्बोधन हो।
बिना बताये, भले-बुरे की वह पहचान करे कैसे?
स्वल्प-बुद्धि प्रच्छन्न सत्य का अनुसंधान करे कैसे?"

"शंका उचित तुम्हारी प्रियवर, प्रस्तुत समाधान इसका,
सहज-वृत्ति का शोधन कैसे, मिलता है विधान इसका।
सही दिशा में, बाल-शक्तियों को हम उत्प्रेरित कर दें,
स्वानुभूति से भले-बुरे के निर्णय का ही अवसर दें।

'यह अच्छा', 'यह बुरा बहुत', शिक्षा का ऐसा ढंग न हो,
भावों का प्रत्यक्ष शमन हो, ऐसा कभी प्रसंग न हो।
यदि परोक्ष-विधि द्वारा उसका, करें उचित हम निर्देशन,
तो बालक की क्रिया-शीलता पा सकती अच्छा साधन।"

"पर भाई! इस क्रिया-शीलता की क्या गति? क्या दुर्गति है?
क्रिया-शीलता से सम्बन्धित कैसे उन्नति-अवनति है।"
"सुगति क्रिया की ही उन्नति है, इसकी दुर्गति अवनति है,
इसका कैसे संचालन हो, यह अपनी-अपनी मति है।

इस बन्दूक-तमंचे-बाजी की डाके में भी परिणति,
मूल्यवान मानव-जीवन की संभव इसके द्वारा क्षति।
उचित दिशा में उत्प्रेरित हो, अन्यायों का दमन करे,
अच्छा ही फल देगी, यदि यह उचित पंथ-अनुगमन करे।

बन्दूकों के चित्र खींचने में रुचि का निर्देशन है,
कला और यन्त्रों के कौशल का संभव गठ-बन्धन है।
वह भी सम्भव है, सेना में यह ऊँचा पद पा जाये,
अर्जित सही निशाने-बाजी का कमाल यह दिखलाये।

अतः आप चिन्तित न तनिक हों, इसके क्रिया-कलापों से,
यह वरदान मनुजता को देगा लड़कर अभिशापों से।
रचना-कौशल के ही कामों में रुचि का निर्देशन हो,
नहीं आपके मन में, इसकी इन बातों की उलझन हो।

हर बालक अपने भविष्य का खुद निर्माण किया करता,
करके सिद्ध शक्तियाँ निज, जग का कल्याण किया करता।
उसके शुभ विकास को, अच्छा वातावरण अपेक्षित है,
मौखिक शिक्षा कम हो पर सच्चा आचरण अपेक्षित है।"

सर्ग चार

गृहिणी या तपस्विनी ?

यह मूर्ति-वंत करुणा-सी
आसीन कौन तन्वंगी ?
अनुषंगित अभ्यन्तर में
केवल विषाद है संगी ।

जीवन की दोपहरी में
यह लगती है छाया-सी,
जो स्वयं ठगी बैठी हो
यह दिखती उस माया सी ।

हर साँस लग रही भारी
श्लथ-गति-सी फुटी-घुटी-सी,
अन्तरित हर्ष-निधि इसकी
विघटित-सी, लुटी-लुटी-सी,।

घर के आँगन में लगती
यह वन की तपस्विनी-सी,
गौरव-गरिमा से भूषित
यह गोचर मनस्विनी-सी।

कर रही विवशता से यह
एकान्त योग का साधन,
करती है मन ही मन में
प्रिय छवि का यह आराधन।

थे पलक-पाँवड़े बोझिल
पीड़ा से झुके-झुके-से,
मोती विकीर्ण होने को
सीपी में रुके-रुके-से।

कह देते चुपके-चुपके
वेदना बहुत गहरी है,
अधिकार-भावना से वह
इस अन्तर में ठहरी है।

भावों को ले डूबे हैं
अब क्यों अभाव तरसेंगे,
जो बादल भरे-भरे हैं
वे फिर-घिर कर बरसेंगे।

मन का छप्पर बिजड़ित है
बरसात कटेगी कैसे ?
आरबल विरह की लम्बी
यह उमर घटेगी कैसे ?

जो जीवन का साथी है
बिछुड़ा है जीवन भर को,
वरदान हुआ अभिशापित
जीवन के पुण्य-प्रहर को।

यश में अजीत[1] अपराजित
वह सिंह हुआ निर्वासित,
घर लौट नहीं सकता है
शासन नियमों से शासित।

यह कृपा-दृष्टि शासन की
संगीनों की छाया है,
जब तृषा जगी यौवन की
काला पानी पाया है।

इस धरती के बेटे को
दुर्लभ धरती के दर्शन,
है यह विडम्बना कैसी ?
यह कैसा न्याय-प्रवंचन ?

---

१. भगतसिंह के चाचा, प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार अजीतसिंह। इन्हें लाला लाजपतराय के साथ देश निकाला देकर रंगून की मांडले जेल में रखा गया था।

विश्वासों की उज्ज्वलता
पर, किसने कालिख पोती ?
यह कैसी मानवता है
जो बीज घृणा के बोती ।

निज मातृभूमि की सेवा
का पुरस्कार यह कैसा ?
है कौन यहाँ का शासक ?
है अनाचार यह कैसा ?

हो गया कौन हावी है
इस घर में गुप-चुप आकर ?
किसने हमको फाँसा है
धोखे का जाल बिछाकर ?

कर रहा कौन यह शासन
काले कानूनों द्वारा ?
अपना घर अपना कहने
में है अपराध हमारा ।

नर-वीर कोप-भाजन वह
है हुआ इसी शासन का,
जीवन भर का निर्वासन
निर्णय है अनुशासन का ।

उस लौह-पुरुष ने पाईं
उपहार-रूप हथ-कड़ियाँ,
यह बैठी पिरो रही है
आँसू की उज्ज्वल लड़ियाँ ।

इस वियोगिनी-बाला की
पीड़ा सहचरी बनी है,
मन पर विषाद की बदली
यह छाई घनी-घनी है।

यह इसीलिये बैठी है
पीड़ा में डूबी-डूबी,
यह कब तक करे प्रतीक्षा
जीवन से ऊबी-ऊबी।

लो आ बैठा यह बालक
गोदी में प्यारा-प्यारा,
उसके आते ही जैसे
यह भूल गई दुख सारा।

लो, पूछ उठा वह, "चाची!
क्यों यों गुम-सुम बैठी हो?
आँगन में अँधियारा है
किस धुन में तुम बैठी हो?"

"बेटे! आँगन में ही क्या
जीवन में भी अँधियारा,
मैं खोज रही हूँ इसमें
जीवन के लिये सहारा।"

"चाची! जीवन में कैसे
अँधियारा हो जाता है?"
"जीवन-अरण्य में अपना
जब साथी खो जाता है।"

"है कौन खो गया बोलो !
मैं उसे ढूंढ़ लाऊँगा,
वह किस वन में खोया है
मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा।"

"तुम वहाँ न जाना बेटे !
मैं तो सब कुछ सह लूंगी,
दुख में भी साथ तुम्हारे
मैं सुख से यहाँ रहूँगी।"

"तुम क्यों न मानतीं चाची !
मैं कब से समझाता हूँ,
अपना दुख क्यों न बतातीं
लो मैं रूठा जाता हूँ।"

"जब भाग्य रूठ बैठा, तुम
मत रूठो राज-दुलारे,
मेरे जीवन की आशा !
मेरी आँखों के तारे !

मत रूठो- तुमको मन का
मैं भेद बताये देती,
सम्भव, दुख घट जायेगा
लो, तुम्हें सुनाये देती।

बिछुड़े हैं जीवन भर को
चाचाजी पूज्य तुम्हारे,
वे देश छोड़ बैठे हैं
अत्याचारों के मारे।

जो यहाँ फिरंगी शासन
उसने ही उन्हें निकाला,
है इसीलिए जीवन में
छाया अँधियारा काला।"

"ओ चाची! तुम मत रोओ
दुख होता मेरे मन को,
मैं मजा चखा दूँगा, इस
अत्याचारी शासन को।

तुम चिन्ता करो न चाची!
मैं चैन नहीं पाऊँगा,
हों चाचा भले ही कहीं भी
मैं उन्हें छुड़ा लाऊँगा।"

"इस दुख से पीड़ित मैं ही
इस घर में नहीं अकेली,
छोटी चाची भी दुख में
है मेरी बनी सहेली।

वे चाचा पूज्य तुम्हारे
तन तपे स्वर्ण[1] सा उज्ज्वल,
घुल रही जवानी उनकी
कारा-गृह में ही पल-पल।

---

१. भगतसिंह के छोटे चाचा सरदार स्वर्णसिंह, जो क्रान्तिकारी होने के कारण शासन के बन्दी थे। इनकी तो मृत्यु भी जेल में ही हुई थी।



श्रीमती हुक्म कौर

भगतसिंह के स्व० चाचा सरदार स्वर्णसिंह भी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इस कट्टर शत्रु का एक पैर घर में और एक जेल में रहा था। इनकी पत्नी श्रीमती हुक्म कौर का भी भगतसिंह पर अटूट प्रेम था।

यह छोटी चाची उनके
दुख से है दुखी निरन्तर,
विरहानुभूति से बोझिल
है बाह्य और अभ्यंतर।

मैं उसकी मनोव्यथा का
कुछ हाल बताऊँ कैसे ?
मैं भूल रही अपने को
उसको समझाऊँ कैसे ?"

"कुछ कहो न चाची ! अब तुम
मैं कस कर बदला लूंगा,
यदि भगतसिंह हूँ मैं, तो
इस शासन को समझूँगा।"

"कर रहे यहाँ तुम भैया
यह भीषण भीष्म-प्रतिज्ञा,
माँ बुला रही है कब से
क्यों शोभित तुम्हें अवज्ञा ?

भोजन ठण्डा होता है
तैयार रखी है थाली,
मैं कब तक करूँ मनौती
यह कौन रीति अपना ली।"

"प्रिय बहिन ! जा कहो माँ से
मैं आज नहीं खाऊँगा,
चाचीजी बहुत दुखी हैं
मैं इनको समझाऊँगा।

ये आँसू पियें यहाँ पर
मुझको भोजन भायेगा ?
जब मन ही बे-मन हो तो
कोई कैसे खायेगा ?"

"चाची ! तुमको भी माँ ने
भैया के साथ बुलाया,
तुम इसको साथ खिलाओ
इसने न सुबह से खाया।"

"बीबीजी ! मैंने ही तो
इसका दिल दुखा दिया है,
कुछ हाल तुम्हारे चाचा
का, इसको बता दिया है।

हाँ चलो सभी हम मिल कर
इसका मन बहलायेंगे,
जब यह गुड्डा खायेगा
हम लोग तभी खायेंगे।

क्या उमर अभी इसकी है
पर कैसा भावुक मन है,
घर-वालों के सुख-दुख का
यह करता अनुशीलन है।

भगवान इसे खुश रक्खें
यह जुग-जुग जिये दुलारा,
जिसका न सहारा कोई
यह उसका बने सहारा।"

सर्ग पाँच

पंजाबी पानी

यह विस्तृत पंजाब प्रान्त, यह वन-प्रान्तर मैदानी,
पानी दार बनाता सब को, यहाँ पंच-नद पानी।
इस पानी में भाव क्रान्ति के घुले हुए रहते हैं,
यहाँ जान पर सभी खेलने तुले हुए रहते हैं।

अन्यायों को लख, न किसी के होठ सिले रहते हैं,
उर में विप्लव पलता, चेहरे खिले-खिले रहते हैं।
जो कुछ दिल में होता है, वह झट मुख पर आ जाता,
तनिक छेड़ दो, यहाँ आदमी ताव बहुत खा जाता।

तूफानों की तेजी जैसा तन में खून भरा है,
मातृ-भूमि के लिये हृदय में जोश-जुनून भरा है।
जैसी नदियों की धाराएँ, वैसी मन की गति है,
जीवन में प्रचण्डता मिलती, मिलती यहाँ प्रगति है।

लिये दूधिया जल, नहरों का जाल यहाँ जो फैला,
कहता है उज्ज्वल यश सब का, मन न किसी का मैला।
उज्ज्वल भूमि यहाँ की, उज्ज्वल ही जन-मन का मन है,
हर नर नाहर-सा दिखता है, धन्य यहाँ जीवन है।

गुरु गोविन्द के पुत्र, सिंह-से यहाँ दहाड़ा करते,
जो दिखलाये आँख, उसे वे पकड़ पछाड़ा करते।
यहाँ शिवाजी का, प्रताप का गौरव गाया जाता,
अपमानों का दाग रक्त से यहाँ मिटाया जाता।

देश-प्रेम का दीवाना, हर वीर यहाँ मतवाला,
वक्ष पिता-माता दोनों का है पंजाब निराला।
पितृ-वक्ष-सा तन कर संकट सब के झेला करता,
यह जीवन के खेल, मौत के घर में खेला करता।

पयोधरा करती है इसकी माता के उर जैसी,
भूमि उर्वरा, फिर अकाल की यहाँ कल्पना कैसी?
कवि-कल्पना आज इस धरती पर ही बिछल रही है,
और लेखनी इसके चित्रण-हित ही मचल रही है।

दृष्टि परिधि तक दिखती है, हरियाली ही हरियाली,
है सजीवता की प्रतिमा-सी, हर पत्ती हर डाली।
हर पौधे से बिखर रही है, ज्योति-किरण जीवन की,
मस्ती जगा रही हर मन में, धारा मस्त पवन की।

यह गेहूँ का खेत लहरियाँ लेता है क्षण-क्षण में,
आकर्षण है जाग रहा जैसे इसके कण-कण में।
ढीठ पवन को देख, बालियाँ रह-रह शरमाती हैं,
कुल-वधुओं सी सिमट संकुचित हो झुक-झुक जाती हैं।

ये बबूल के वृक्ष मेढ़ पर जो पहरा देते हैं,
जो उलझे, वे संगीनों से तुरत खबर लेते हैं।
इन वधुओं पर अगर किसी की नजरें बुरी गड़ेंगीं,
ये बबूल की फलियाँ तलवारों-सी टूट पड़ेंगीं।

और साधुओं की जमात-सी, यह मनहर अमराई,
कांति-वृत्त-सी खिंची बौर मिस वृक्षों की तरुणाई।
मादक दहक सुयश-सी, देती रह-रह मौन निमंत्रण
जन-मन श्रद्धा सहज समर्पित होती बिना नियंत्रण।

खग-कुल का कल-नाद, नाम-संकीर्तन-सा प्रिय लगता,
स्वयं ठगा-सा रह जाता मन, नहीं किसी को ठगता।
कुहुक-कुहुक कर कोयलिया जब गा उठती पंचम में,
लगता जैसे कथा-भागवत ध्वनित सुखद सरगम में।

यहाँ-वहाँ ये खड़े हुए हैं नीम संतरी जैसे,
ये रक्षक हों, रोग चोर बन कर आये तो कैसे ?
भरे निंबौली की गोली, ये लेते रहते आहट,
ये अमृत के बेटे, गुणकारी इनकी कड़वाहट।

कितने प्यारे-प्यारे लगते इसके बोल सुहाने,
कितनी निधियाँ इस ग्राँगन में ग्रा जाती ग्रनजाने।
उछल-कूद कर खेला करता है यह बाल-खिलौना,
बड़ा नाम पायेगा जीजी ! कभी सिंह का छौना।"

माँ के मन में भी ममता के मोदक फूट रहे थे,
उर के ग्रगणित भाव, खुशी की निधियाँ लूट रहे थे।
पर मन के भावों का, चतुराई से कर ग्रवगुण्ठन,
बालक के प्रति क्रिया रोष का जल्पित स्वल्प प्रदर्शन।

"बहिन ! तुम्हारा भगत तुम्हें जो लगता इतना प्यारा,
यह सूली का फूल, जिसे कहतीं ग्राँखों का तारा।
तोड़-फोड़ के कामों में ही इसका मन रमता है,
ग्राँधी-सा घूमा करता, कब एक जगह थमता है।

जन्म दिया मैंने, पर तुमने इसको प्यार दिया है,
मैंने क्या, इस घर ने तुमको यह ग्रधिकार दिया है।
बड़ा नाम पायेगा यह, ये बातें तुम ही जानो,
हिला-मिला है तुम से, तुम ही इसकी गति पहिचानो।

ग्रपना पुत्र समझ कर तुमने ही तो इसको पाला,
इससे ही तो पूछो, ग्रागे यह क्या बनने वाला।"
चाची पूछें, इसके पहले बालक खुद ही बोला,
छोड़ दिया निज मुख से उसने ग्ररमानों का गोला।

"बड़ा ग्रादमी नहीं, देश का बनना मुझे सिपाही,
जो ढा रहे देश पर, उन पर ढाना मुझे तबाही।
माँ ! मेले में जाग्रो तो बन्दूक मुझे ले ग्राना,
चाची उसे चलाना तुम मुझको हर रोज सिखाना।

जिसने कैद किया चाचा को, भेजा काले पानी,
वह गोरी सरकार, धज्जियाँ उसकी मुझे उड़ानी।
अपने दोनों चाचाओं का उससे बदला लूंगा।
बदला लिये बिना उससे, मैं शान्त न कभी रहूँगा।

माँ ! अच्छी बन्दूक और तुम कारतूस दिलवादो,
वह डाइन सरकार किसी दिन चल कर मुझे दिखादो।
ठीक निशाना साध, गोलियाँ मैं उस पर दागूँगा,
तन कर खड़ा रहूँगा, डर कर मैं न कभी भागूँगा।''

सिंह-गर्जना सुन निज सुत की, माता ने धर खींचा,
दोनों बाहों में भर उसको, कस कर उर से भींचा।
बार-बार माथे का चुम्बन और बलैयाँ लेकर,
हलका हृदय लगी करने वह अगणित आशिष देकर।

'जुग-जुग जियो लाल मेरे, तुम करो देश की सेवा,
तुम जन-जन से अपनेपन की पाओ अतुलित मेवा।
पर इतनी बातें तुमको कैसे आईं, समझाओ !
अरे सिपाही ! अपने मन का मुझको भेद बताओ !'

बालक ने मुड़कर चाची को, फिर माँ को भी देखा,
खुल कर देने लगा हृदय का वह अपना यों लेखा।
''तुम दोनों भी तो ऐसी ही बातें करती रहतीं,
ये बातें ही रोष हृदय में मेरे भरती रहतीं।

कल ही पापा के कमरे में कुछ बातें सुन पाया,
मुझको सोया जान, नहीं शंका का अवसर आया।
पापा अपने मित्रों से करते थे गुप-चुप बातें,
''उनको पूजा नहीं चाहिए, जिन्हें चाहिए लातें।''

है गोरी सरकार दुष्ट यह, होते थे ये चर्चे,
लोगों में बंटवाने उनने छपा रखे हैं पर्चे।
कहते थे, मिट्टी में हमको यह सरकार मिलाना,
अपनी धरती पर अपने शासन का फूल खिलाना।

पापा यह भी कहते थे, "शायद मैं पकड़ा जाऊँ,
हो सकता है मैं भी जाकर हवा जेल की खाऊँ।
पर जो बनी योजना, उसको तुम सब चालू रखना,
उठा लिया जो बीड़ा, उसका स्वाद हमें है चखना।

बालक की बातों को सुन कर माँ का माथा ठनका,
खुश होकर बोली वह उससे, भाव छिपा कर मन का।
"श्री गुरु करें तुम्हारे मन के सभी मनोरथ पूरे,
जीवन में सच हो जायें, जो सपने अभी अधूरे।"

बालक अब माँ की गोदी के बाहर, घर बाहर था,
बन्धन में बँध कर रह जाना उसको अति दुष्कर था।
खेत, मेंढ, खलिहान, बाग, वन, ये भी उसके घर थे,
बाल-सखा-दल संग खेल के मिलते नित अवसर थे।

माता नमित नयन कुछ अपने मन में सोच रही थी,
गूँज रही थी बात वही, जो सुत ने अभी कही थी।
सहसा चिर-परिचित पद-गति का स्वर कानों में आया,
आगन्तुक की अनुज-वधू ने घूंघट कुछ सरकाया।

धीरे-धीरे दधि-भाजन उपकरण आदि ले जाकर,
भीतर नया काम ले बैठी, बाहर काम बढ़ा कर।
दधि-मंथन हो गया पूर्ण था, होता था मन-मंथन,
परदेशी की याद बनी थी उसको अन्तर-दर्शन।

गृहिणी ने हो न्यस्त, उठाये नमित नयन कुछ ऊपर,
गृह-स्वामी के दर्शन को वे थे सतृष्ण, चिर तत्पर।
आगन्तुक ने कहा, "सुना जी! अपना भगत कहाँ है?
बड़ी शान्ति दिखती है घर में, क्या वह नहीं यहाँ है?"

उत्तर मिला, "सुन लिया मैंने, जो तुम अब कहते हो,
और भगत द्वारा वह भी, जो नित कहते रहते हो।
अभी गया है बाहर, कल की उसने बात सुनाई,
जेल-यात्रा की जो तुमने है योजना बनाई।"

पूछ उठे सरदार, "इसी से क्या यह मन उन्मन है?"
उत्तर मिला, "नहीं! मेरा कुछ चिन्तन और गहन है।
सह-धर्मिणी तुम्हारी हूँ मैं, जीवन की मंजिल में,
इसी लिये यह बात एक उठती है मेरे दिल में—

तुम जेलों की हवा निरन्तर ही खाते रहते हो,
कृष्ण-भवन है, पुण्य-धाम है, यह भी तुम कहते हो।
कई तीर्थ भी तुमने मुझको जा-जाकर दिखलाये,
यह जो तीर्थ तुम्हारा, इसके दर्शन नहीं कराये।"

किशनसिंह जी बोले, "अच्छा! तो यह बात विचारी,
मेरे साथ-साथ चलने की दिखती है तैयारी।
किन्तु साधना अभी तुम्हारी दिखती मुझे अधूरी,
इसीलिये है तुम्हें वहाँ ले चलने में मजबूरी।

पुण्य कमाने पड़ते पहले कई, वहाँ जाने को,
पहले तप करना पड़ता है, उसका फल पाने को।
तुम्हें तीर्थ करना है वह, तो पहले पुण्य कमाओ,
यह सरकार फिरंगी, इसको कुछ करतब दिखलाओ।

तोड़-फोड़ विप्लवी-करिश्मे, भीषण भाषण-बाजी,
इन कामों से उस मन्दिर की देवी रहती राजी।
इस पूजा में अर्घ्य हेतु निज रक्त चढ़ाया जाता,
पुण्य-धाम के तब अलभ्य दर्शन साधक कर पाता।"

सहसा स्वर सुन पड़ा, "और भी तो बातें बतलाओ,
मम्मी को क्या, पापा ! मुझको ये युक्तियाँ सिखाओ।"
चौंक उठे सरदार, दुष्ट ने ये बातें भी सुन लीं,
ऐसी कितनी-कितनी बातें जाने इसने गुन लीं।

हर्ष हृदय में, किन्तु प्रकट में उनने रोष जताया,
बाल-वीर पर नकली घुड़की देकर रौब जमाया।
"क्यों रे ढीठ ! बड़ों की बातें क्यों सुनता रहता है,
मेरी बातें सुन-सुन कर तू माँ से आ कहता है।"

"बातें सदा बड़े-बूढ़ों की पापा ! मुझे सुहातीं,
बात आपकी सुन, मम्मी भी तो खुश हो जातीं।"
बात सुनी सरदार खिल उठे, माँ ने तेवर बदले,
बिना बात की बातें क्यों करता रहता रे पगले !"

दो बातें कीं, और हुआ बालक नौ-दो ग्यारह था,
एक जगह टिक कर रह जाना, उसके लिये दुसह था।
गूँज रही थी बात बाल की दोनों के कानों में,
गूँज रही वह स्वर-लहरी थी, इनके अरमानों में।

सरस चिकौटी की मिठास पौरुष में पुलक उठी थी,
स्निग्ध मुखाकृति पर शुचि स्नेहिल व्रीड़ा झलक उठी थी।
गृह-स्वामी की हँसी, हिलोरें ले-ले झूल रही थी,
गृहिणी की मुस्कान कि जैसे संध्या फूल रही थी।

सर्ग ६ :

प्रश्नों के पटाखे

"पापा ! चला रहे खेतों में जो हल-बैल किसान,
वे क्या वस्तु बो रहे इनमें छेड़ सुरीली तान ?"
"बेटे वे गेहूँ बोते हैं, जो खाते हम लोग,
गेहूँ की खेती है अपना बहुत बड़ा उद्योग।"

"गेहूँ कब, पापा ! हम तो रोटी खाते सब लोग,
क्यों न रोटियाँ बोकर उनका करते हम उद्योग ?"
"रोटी को गेहूँ का आटा ही होता दरकार,
रोटी उगती नहीं खेत में, होती घर तैयार।"

"पापा ! गेहूँ की खेती जो करते यहाँ किसान,
इसे बेचकर हो जाते होंगे ये सब धनवान।"
"इनमें सभी किसान नहीं है, कुछ इनमें मजदूर,
श्रम करके भी जुटा न पाते जो भोजन भरपूर।"

"श्रम भी करें, रहें भूखे भी, यह कैसा अन्याय ?
पापा ! उनके हित किसान क्यों करते नहीं उपाय ?"
"बेटे इस शासन की है कुछ विकट व्यवस्था आज,
ये किसान भी जमींदार के रहते हैं मुहताज।"

"पापा ! जमीदार क्या होता ? वह करता क्या काम ?
क्या वह भी श्रम करता, या करता रहा आराम ?"
"जमींदार की जो जमीन, उसकी मालिक सरकार,
माल-गुजारी दे, जमीन का लेता वह अधिकार।

जमींदार यह भूमि किसानों को देता है बाँट,
उनसे खूब वसूली करता, और मुफ्त के ठाट।'
"जमींदार का, पापा ! मुझको जँचा नहीं व्यवहार,
जो खुद श्रम न करे, क्यों उसको खाने का अधिकार ?

अपने घर में करता पापा ! कब कोई आराम ?
आप कमाते, मम्मी-चाची करतीं घर का काम।"
'बेटे ! काम कुछ न कुछ, रहता है हम सब के पास,
किन्तु तुम्हारा काम यही बस, बातों का अभ्यास।'

"बातों का क्यों, पढ़ने लिखने का भी करता काम,
रोज मदरसे पढ़ने जाता, लिखा हो गया नाम।"
"बड़ा पढ़ैया मेरा बेटा, है तेरी क्या बात ?
शायद पढ़ता ही रहता है घर में तू दिन-रात।

जब घर रहता, सारा घर रहता तुझसे हैरान,
वहाँ गुरू जी के तू खाता रहता होगा कान।"
"नहीं ! नहीं ! चुप रहते पापा ! वहाँ सभी शैतान,
हम क्यों, वहाँ गुरू जी खाते रहते सब के कान।"

"चुप-चुप ! ऐसी बात न कहते, गुरू तो है भगवान,
वह तो सब को पूजनीय है, उसकी ऊँची शान।"
"पापा ! हम सब भी तो उनका करते हैं सम्मान,
उनके डंडे से तो डरते बड़े-बड़े बलवान।

डरपाते वे सब को टेबिल पर डंडा फटकार,
मेरे मन में आता, कर दूँ उसे किसी दिन पार।"
"बहुत कठिन है बेटे ! करना उनका डंडा पार,
ऐसा किया अगर तुमने, तो बुरी पड़ेगी मार।

अच्छा, आज किया है, तुमने पाठ कौन-सा याद ?
या तुम अपना समय किया करते यों ही बरबाद ?"
आज गुरूजी ने बतलाया था परियों का हाल,
पंख कमर में, बड़े-बड़े होते हैं उनके बाल।

पापा ! परी किसे कहते, कैसा उनका व्यवहार ?
कौन देश वह जहाँ औरतें उड़ती पंख-पसार ?
"बेटे ! पंख न होते उनके, यह तो कल्पित बात
परियों के बारे में मुझको केवल इतना ज्ञात—

जो नारियाँ सुन्दरी होतीं, होतीं चतुर सुजान,
लोग परी उनको ही कहते, परी गुणों की खान।"
"बात आप जो कहते पापा ! मैं लेता हुँ मान,
तो पापा ! क्या अपनी मम्मी भी हैं परी सुजान ?"

"धत् पगले ! क्या पूछा करता बातें ऊल-जलूल,
बात तनिक-सी, देता रहता है तू उसको तूल।
हैं या नहीं परी तेरी मम्मी यह उनको ज्ञात,
चल कर अभी पूछ लेना तू उनसे ही यह बात।

बातें करने में तू काटा करता सब के कान,
अभी उमर में छोटा, पर तू बहुत बड़ा शैतान।"
"पापा ! तुम मुझसे कहते, पर गोरे हैं शैतान,
खाते अन्न हमारा, भजते रहते इंगलिस्तान।

क्यों पापा ! ये लोग नहीं क्यों जाते भारत छोड़ ?
ये मुट्ठी भर, हम तो संख्या में हैं कई करोड़,"
"बेटे ! पाँव तोड़कर बैठी अपने घर में फूट,
इसी लिये अँग्रेज यहाँ पर मजे रहे हैं लूट।

अगर सभी के दिल में हो, निज मातृ-भूमि की भक्ति,
यदि हम पैदा करलें मिलकर प्रबल संगठन-शक्ति—
तो दो दिन में हो सकते हैं इनके बिस्तर गोल,
और वीरता की इनकी, सब खुल सकती है पोल।"

"जब तक हो संगठन, न लड़ने का क्या और उपाय ?
इन्हें भगाने में क्यों कोई कसर उठाई जाय ?"
"हाँ यदि इन पर छुट-पुट हमले भी हों छापा-मार,
संभव है कि लड़खड़ा जाये तो इनकी सरकार।

किन्तु हमारा सबल संगठन ही इनका उपचार,
हम मिलकर यदि एक हुये तो निश्चित इनकी हार।"
"किन्तु संगठन कैसे संभव हो सकता है आज,
जब भारत के लोगों पर है गिरी फूट की गाज।"

"हो सकता संगठन, छोड़ दें यदि सब अपने स्वार्थ,
त्याग और बलिदान, संगठन के हैं मंत्र यथार्थ।
गिने-चुने भी लोग ठान लें यदि करना बलिदान,
तो हो सकते पूर्ण हमारे कार्य अनेक महान।

अच्छा, अब हम लौट चलें, ले अपने घर की बाट,
बिना तुम्हारे, सबका मन है होता बहुत उचाट।"
"चलो, किन्तु हम यहाँ घूमने आयेंगे हर रोज
अभी बहुत बातें बाकी हैं, शेष बहुत है खोज।"

सरस फुहारें

"अजी ! सुना कुछ, कहाँ गये थे लिये भगत को संग ?
चढ़ा दिया तुमने उस पर क्या उल्टा-सीधा रंग ?
रक्खा अभी तुम्हारा उसने कच्चा चिट्ठा खोल,
कहता है वह, मुझे बनाना है बच्चों का गोल।

अंग्रेजों से लड़ने की भी करता बात बखान,
वह क्या समझे इन बातों में, अभी बहुत नादान।
खाता रहता दिन भर घर पर वह मेरे भी कान,
मैं तो उसे डाट देती हूँ, होती जब हैरान।"

"भाग्यवान ! मैं चढ़ा सकूंगा उस पर कैसा रंग ?
मैं खुद उसके रंग-ढंग से होता रहता दंग।
जो मुझसे पूछता, करा देता मैं उसका बोध,
नहीं बाल-जिज्ञासा का है उचित तनिक अवरोध।

उस दिन मेहता जी ने भी तो देखे इसके ढङ्ग,
वे कहते थे, इसके मन में अद्भुत भाव-तरंग।
उचित दिशा यदि मिल जाये तो यह इसका उत्साह,
बन सकता है देश-भक्ति का सागर एक अथाह।

यदि अवरोध हुआ, तो संभव है करे गलत यह काम,
हमें और पूरे समाज को बने अशुभ परिणाम।
कहा उन्होंने, अतः उचित है जिज्ञासा की पूर्ति,
उचित निवारण हो इसका, तो बढ़ती मन की स्फूर्ति।

जो कुछ इसको बनना, वह हम कैसे सकते रोक,
किन्तु दिशा-भ्रम हो जाये तो समझा सकते टोक।
वे यह भी कह गये, रखें हम इसकी गति पर ध्यान,
अब घर नहीं इसे भायेगा, प्रिय होंगे मैदान।

उचित बाल-दल मिले अगर, तो दें खेलों की छूट,
बाल-मंडली संग खेल, पायेगा शक्ति अटूट।
उचित नहीं है अतः आपका मुझ पर यह आक्रोश,
मैं तो सही दिशा में प्रेरित करता इसका जोश।"

"कौन जीत सकता बातों में तुम से हे मतिमान!
बाप और बेटे दोनों की गति-मति एक समान।
हाँ, परियों-पुरियों की तुमने की उससे क्या बात?
बिना काम की बातें क्यों हों उसे अभी से ज्ञात?"

"तो हो गया कौन-सा मुझसे बहुत बड़ा अपराध?
अच्छी बात बतादी मैंने यदि उसको एकाध।
इन बातों की शिक्षा भी है बच्चों को अनिवार्य,
बच्चों की ये शंकायें भी होती हैं परिहार्य।

होते हैं जिज्ञासु और ये बच्चे चिन्तन-शील,
हम न बतायें, तो सीखेंगे ये बातें अश्लील।
अच्छा, आज आपने मुझको दिये बहुत उपदेश,
बना पाक-शाला में क्या, अब मिल जाये आदेश।

सर्ग सात

माटी के घरौंदे

'मिट्टी के मोल बिकी वस्तु अनमोल वह,'
जो भी यह कहते असत्य वे बखानते।
जो कुछ किया था, सब मिट्टी होगया वह,
वे भी तो मिट्टी का मूल्य नहीं जानते।
सृष्टि और जीवन का मिट्टी परम तत्व,
मिट्टी का मोल कुछ लोग पहचानते।
स्वर्ण, मणि, माणिक, लुटाते वे मिट्टी पर,
प्राण से अधिक मूल्यवान इसे मानते।

प्राणों को मिट्टी पर न्यौछावर करते जो,
जाने किस मिट्टी के बने हुए होते हैं;
मिट्टी भले ही वे स्वयं हो जाँय, किन्तु,
मिट्टी का मान वे कदापि नहीं खोते हैं।
सुख ऐश्वर्य पर डाल-डाल मिट्टी वे,
मिट्टी की महिमा को त्याग से सँजोते हैं।
व्यर्थ नहीं जाते बलिदान उन वीरों के,
मिट्टी में मिल, बलिदान-बीज बोते हैं।

मिट्टी में मानव के स्वेद-विन्दु मिलते तो,
श्रम के पवित्र, शुभ्र फूल खिल जाते हैं।
खेतों की मिट्टी उगलती है स्वर्ण-राशि,
पौरुष के पुण्य-फल हमें मिल जाते हैं।
मिट्टी का पुतला दिखाता पराक्रम तो,
धीर दिग्गजों के कलेजे हिल जाते हैं।
काँप-काँप उठती है दानवता थर-थर,
घोर अन्यायियों के होठ सिल जाते हैं।

तत्व-ज्ञानियों को यह विश्व भी घरौंदा है,
बालकों को अपने घरौंदे सत्य लगते हैं।
कल्पना के लोक में विचरते हैं बाल-वृन्द,
नव-निर्माण के अनेक स्वप्न जगते हैं।
भूख और प्यास का न भान उन्हें होता कभी,
सर्जना के मनोभाव मन में उमगते हैं।
राज-महलों की शोभा फीकी-सी लगती जब,
उनके घरौंदे हमारा मन ठगते हैं।

जमे हुए बाल-कलाकार यहाँ, देखो इन्हें,
नीम का है वृक्ष, नीचे बैठक जमाई है।
ऊष्मित संध्या है, एक बदली ने उठ,
धरती पर बूँदों की लड़ी छिटकाई है।
सोंधी सुवास उठी मिट्टी के उर से है,
धरती की धूल में नमी-सी कुछ आई है।
माटी की गंध से है बाल-वृन्द झूम उठा,
बाल-मंडली को यही गंध खींच लाई है।

पावों के पंजों पर मिट्टी का ढेर लगा,
हाथों से थोप-थोप उसे थपथपाते हैं।
धीरे से पाँव खींच लेते हैं तो बनता घर,
इसको ही घर मान मोद वे मनाते हैं।
एक दो ही क्यों, ऐसे बनते हैं अनेक द्वार,
कई घर बनते तो ग्राम बस जाते हैं।
खेल-खेल में ही बाल रचना के कौशल से,
भवन-विधायकों से होड़ ये लगाते हैं।

घर भी अनेक बसे, ग्राम बस गया यह,
गलियों का, सड़कों का होता निर्माण है।
मिट्टी के ढेरों में डाल खोंस वृक्ष बने,
घाम में पथिक-वृन्द पाता परित्राण है।
हर एक बालक जुटा है कोई काम लिये,
श्रम-सर्जना से पुलकित प्राण-प्राण है।
यह उत्साह संगठन हो बड़ों में यदि,
समझो समाज का सदैव कल्याण है।

रहने के सुन्दर सुडौल ये भवन बने,
बालकों की यह प्राथमिक पाठशाला है।
मिट्टी की मूर्ति नहीं, बैठ श्री गुरू जी ये,
डंडा भी पास रखा, ठाट क्या निराला है।
सुन्दर सरोवर बना है एक ओर जो,
बरसा है पानी नहीं, बालकों ने डाला है।
अपनी ही रचना को देख-देख बालकों का,
नाच-नाच कर होता मन मतवाला है।

दुबले-से, पतले-से, लम्बे और ऊँचे-से,
बाल-वीर-दल के ये निर्विरोध नेता हैं।
नाम है भगतसिंह, सिंह हैं स्वभाव से भी,
दृढ़ कर्तव्य-भावना के ये सचेता हैं।
स्नेह में भी नेता ये, विरोध में भी जेता ये,
श्रम के पुजारी और बाल अध्येता हैं।
साथियों के साथ आज रचना का काम लिये
ग्राम और भवनों के ये ही तो प्रणेता हैं।

और पास में ही यह एक दूसरा भी दल,
इसी काम में है लगा, भवन बनाता है।
नेता है चननसिंह, ऊँचा और पूरा खूब,
डाँट से डपट से काम वह चलाता है।
भगत की रचना को देख-देख ईर्ष्या से,
जल उठता है, कुविचार एक आता है।
मन में विनाश की हैं भावनाएँ जाग उठीं,
ताकता है बार-बार, घात यों लगाता है।

किन्तु है भगत भी कम सावधान नहीं,
रचना के साथ रखवाली का भी ध्यान है।
संख्या विरोधियों की इनसे अधिक कहीं,
हमला संभाव्य, वह भी तो सावधान है।
एक आँख यहाँ और एक आँख लगी वहाँ,
नेता के डील-डौल का भी उसे ज्ञान है।
वह जो पहलवान, यह भी है कम नहीं,
डील-डौल वाला वह, यह प्राण-वान है।

वह जो बढ़ा तो यह गरज उठा है वीर,
जाओ जी चनन! यहां काम नहीं आने का।
तुम रहो वहाँ और हम रहें यहाँ, यह
सीधी सी है बात उपदेश है जमाने का।
पर यदि दल और बल का घमण्ड तुम्हें,
हौसला है यदि तुम्हें जोर आजमाने का।
आओ जी चनन! ताल ठोक है भगत खड़ा
आज रण-कौशल भी देखो मर्दाने का।

टाल गया चनन चुनौती यह भगत की
बोला 'भाई-भाई हैं लड़ाई नहीं लड़ते।
एक-दूसरे से गले मिल-मिल रहते वे
छोटी-छोटी बातों पर वे हैं न झगड़ते।
किन्तु भोला भगत न भेद यह जान सका,
करते सदैव दगा, नाक जो रगड़ते।
हाथ-पैर जोड़ भीख माँगते दया की, फिर
दाव-घात लगा, वे ही छाती पर चढ़ते।

चूकी जो नजर तो चनन ने सपाटा भरा,
माटी के घरौंदों में लात एक मार दी।
बाल-कलाकारों की भव्य-रचना को उस,
आततायी ने थीं सब लात से बुहार दी।
कृत्य यह युद्ध के लिये था विस्फोट बना
बात भाई-चारे की भगत ने बिसार दी।
प्रतिद्वन्दी के दर्प, गर्व, बल-विक्रम की,
एक ही झपाटे में थी सारी लू उतार दी।

दोनों दल-नायक थे एक-दूसरे से गुँथे,
एक-दूसरे के लात-घूँसे फटकारते।
एक-दूसरे को झक-झोर जोर-शोर कर,
साथियों को लड़ने के लिये थे प्रचारते।
दोनों दल एक-दूसरे से भिड़ जूझ पड़े,
दाँत पीस-पीस दोनों दल फुफकारते।
नोंचते-खरोंचते थे, खाल खींच-खींच लेते,
दाव जैसा लगे, एक-दूसरे को मारते।

गरज उठा था वीर भगत सक्रोध तब,
साथियो ! नहीं पाँव पीछे को धरेंगे हम।
आततायी ने है घर अपना उजाड़ा यह,
क्रुद्ध हो-हो आज सब युद्धक रंगे हम।
धरती का यह अपमान सह्य नहीं हमें,
मिट्टी की माँग आज खून से भरेंगे हम।
यदि अपमान का न बदला चुकाया, सब,
आज रण-खेत बीच जूझ मरेंगे हम।

यह घर-द्वार भूमि प्राणों से भी प्रिय हमें,
आततायी दल इस पर ललचायें क्यों ?
सिंह मतवाले रखवाले जिस भूमि के हैं,
गीदड़ों के दल दृष्टि अपनी जमायें क्यों ?

धरती की लाज रखने को धरती के वीर,
समर-विजय हेतु कसर उठायें क्यों ?
हमें ललकार, दुत्कार फुफकार कर,
जीवित यहाँ से अरि-दल जायें, जायें क्यों ?

नेता की पुकार ललकार सुन-सुन सब,
साथी लड़ने का और-और जोश खा गये।
ताव खा-खा निज प्रतिद्वन्दियों से भिड़-भिड़,
मरने के और मारने के भाव आ गये।

टूट-टूट पड़े, तीर जैसे छूट-छूट पड़े,
बोल निज नेता के हृदय में समा गये।
प्रति-पक्षियों को विकराल काल बन-बन,
थोड़े वीर बड़े समुदाय पर छा गये।

भगत उधर फन-फना रहा क्रोध से था,
निज प्रतिद्वन्दी को दबोचे हुए क्रुद्ध था।
झटक-पटक, झक-झोर जोर-शोर कर,
गरज-गरज कर रहा वह युद्ध था।

रण की पुकार ललकार सुन-सुन वह,
पाँव पीछे धरे यह नियम विरुद्ध था।
मारता था शत्रु को, प्रमत्त उन्मत्त हो-हो
रण-रचना में वह विकट प्रबुद्ध था।

होना जो था हुआ वही, सत्य को विजय मिली,
रक्षक-दल वीरता का रस घोल उठा।
आततायियों के पैर उखड़-उखड़ गये,
भागे दुम दाब, मार खाई मन डोल उठा।
घूँसे-लात जहाँ-जहाँ पड़े, प्रतिपक्षी-दल,
दर्द सहलाने निज घाव टटोल उठा।
विजय वरण अरि-गर्व-हरण कर,
वीर भगत धरती की जय बोल उठा।

तन-मन-धन है हमारा धरती के लिये,
धरती की माटी का ही मान रखेंगे हम।
इस धरती के रखवाले मतवाले हम,
मन में सदैव अभिमान रखेंगे हम।
जय मातृ-भूमि ! जय-जय-जय मातृ-भूमि,
मातृ-भूमि का ही सब ध्यान रखेंगे हम।
जिस धरती की धूल के हैं हम फूल सब,
उस धरती की सब शान रखेंगे हम।

सर्ग आठ

मास्टर जी का डंडा

यह चौपाल गाँव की, लगती यहीं पाठशाला है,
यहीं मास्टरजी ने भी अपना डेरा डाला है।
यह सन्दूक बड़ा, इसमें उनका सामान भरा है,
सभी गाँव रखवाला, उनको चिन्ता नहीं जरा है।

एक सुरक्षित कोने में, मंझा भी एक पड़ा है,
वहीं उसी कोने में डंडा भी तैयार खड़ा है।
अंजर-पंजर ढीले जिसके, कुर्सी एक पड़ी है,
घड़ा रखा है, इसी लिये आवश्यक नहीं घड़ी है।

यह लंगड़ी-सी मेज, टाँग जिसकी हिलती-डुलती है,
मेज-पोश भी नहीं, किन्तु यह यहाँ बहुत खुलती है।
लिखे हुए आदर्श वाक्य भी हैं कुछ दीवारों पर
लिखवाये जाते विशेष ही जो कुछ त्यौहारों पर।

घायल-सी कुछ टाट-पट्टियाँ हैं अस्तित्व सम्हाले,
जोखिम में है जान, बन्दरों के हो गईं हवाले।
होती रहती बहुधा रस्सा-कशी इन्हीं के द्वारा,
जोर-अजमाई करता इन पर वानर-दल सारा।

यह भारत का मान-चित्र, इसमें खिड़की-दरवाजे,
कहीं-कहीं से साफ हो गये, अक्षर कहीं बिराजे।
क्षत-विक्षत तन, किन्तु प्राथमिक हुई चिकित्सा इसकी,
कहीं-कहीं पर पट्टी चिपकी, कहीं-कहीं से खिसकी।

घंटी नहीं, रेल की पटरी का यह टुकड़ा लटका,
चोट हथौड़े-सी बच्चों पर करता इसका खटका।
समय हो गया, लो अब यह भी टन्-टन्-टन्-टन् बोला,
अध्यापक जी ने सतयुग का अपना बक्सा खोला।

एक रजिस्टर उठा, उसे टेबिल पर लाकर पटका,
धूल उड़ी, विद्रोह कर उठी, खा यह तगड़ा झटका।
पत्रक का रँग उड़ा हुआ है, उस पर अक्षर काले,
दो कोनों से जिल्द साफ है, पन्ने हैं घुँघराले।

धुँआधार होने वाली है, जमकर यहाँ पढ़ाई,
लो ये अध्यापक जी आये, बैठक यहाँ जमाई।
चर-चर-चर-चर, चूँ-चूँ-चूँ-चूँ, कुर्सी भी चर्राई,
आधा बजन मेज पर, वह भी बेचारी थर्राई।

कोने में का डंडा, लो अब टेबिल पर आ लेटा,
लगता जैसे अध्यापक जी का वह प्यारा बेटा।
जमे हुए उस्ताद अकड़ कर, रौब-दौब भारी है,
रौब व्यक्ति-गत ही उनका व्यक्तित्व न सरकारी है।

उमर अधेड़ भले ही हो, पर डील-डौल वाले हैं,
चेहरा चिकना साफ किन्तु उस पर मूँछें पाले हैं।
वे मूंछें जो स्वाभिमान से हर-दम रहीं तनी हैं,
उनके सघन ज्ञान-गरिमा-सी, वे भी घनी-घनी हैं।

है परिधान स्वच्छ, पहने हैं धुला हुआ पाजामा,
कोट हुआ हावी तो कुरते ने अपना दिल थामा।
सचमुच ही यह कोट, कोट, तन किला उसे यह घेरे,
नहीं आधुनिकता फटकी, यह तो उससे मुँह फेरे।

एक सफेद बड़ा-सा साफा सर पर कसा हुआ है,
लगता जैसे अध्यापन का गौरव बसा हुआ है।
अनुभव के हैं धनी, मास्टर जी ये पढ़े-लिखे हैं,
गुरु क्या, ये गोविन्द रूप ही सब के लिये दिखे हैं।

सब की सभी समस्याओं को, ये झट सुलझाते हैं,
उलझाते भी, किन्तु स्नेह-बन्धन में उलझाते हैं।
सभी गाँव वाले, इनका अच्छा आदर करते हैं,
बच्चे इनसे नहीं किन्तु वे डंडे से डरते हैं।

एक-एक दो-दो करके बच्चे भी लगे टपकने,
देख-देख टेबिल पर डंडा, सब ही लगे झपकने।
कर-करके प्रणाम आ बैठे, लो ये धीरे-धीरे,
दिखते हैं सब ही गुदड़ी के लाल और ये हीरे।

ये बच्चे पाकर विकास निज सौरभ बिखरायेंगे,
ये प्रताप-से और शिवा-से जौहर दिखलायेंगे।
छिपे हुए इनमें ही अंकुर राम-कृष्ण-गौतम के,
ये प्रकाश के पुँज, हरण-कर्ता हैं जग के तम के।

ये उन्मीलित कलियाँ, भारत-माता की आशाएँ,
ये जाग्रत-ज्वलंत जीवन की जीवित परिभाषाएँ।
विशद राष्ट्र के अवलम्बित इन पर ही सुन्दर सपने,
अतुलित धन-सम्मान देश के ये बच्चे हैं अपने।

किन्तु अभी अपनी-अपनी धुन में ये सँवर रहे हैं,
जीवन-पथ पर भिन्न-भिन्न गति-विधि से विचर रहे हैं।
विविध रूप-रँग वेश, मुखाकृति सबका मन ठगती है,
बहु-रूपियों की महफिल-सी, यह बाल-सभा लगती है।

यह आया सलवार पहन कर, वह पहने है कच्छा,
विद्यालय है बना एक चिड़िया-घर खासा अच्छा।
यह नेकर पहने, तो उसने है पतलून चढ़ाया,
और अधिक कुछ बात न पूछो, यह बच्चों की माया।

जो पाजामा पहने, उसकी नाड़ी लटक रही है,
खिसक-खिसक कर मुन्नी की भी चुन्नी भटक रही है।
कोई बाल ओंछ कर आया बँधे किसी के जूड़े,
जो पगड़ी पहने है, उसके हाथों में हैं चूड़े।

गोरे-काले, छोटे-मोटे, लम्बे, दुबले-पतले,
तरह-तरह के 'मॉडल' अपने-अपने घर से निकले।
वैसे सभी भले चंगे हैं लगते हैं सब सुन्दर,
नाक-नक़्श में किसी-किसी के है पर भारी अन्तर।

तोते जैसी नाक किसी की सुन्दर ग्रौर नुकीली,
किसी-किसी की लम्बी, जैसे हो माचिस की तीली।
यदि इसकी है नाक पकौड़े जैसी फूली-फूली,
तो उसकी बैठी-बैठी-सी, बिलकुल ही मामूली।

किसी-किसी की भरी-भरी-सी, किसी-किसी की खाली,
इसकी नाक तमंचे जैसी, उसकी नाक दुनाली।
किसी-किसी की रुकी-रुकी-सी, किसी-किसी की चालू,
किसी-किसी की है पठार-सी, किसी-किसी की ढालू।

इसकी नाक हिमालय, जिससे बहतीं गंगा-जमना,
होड़ लगी दोनों में, कोई नहीं चाहती थमना।
हैं रूमाल व्यर्थ, जाने ये कितने खो देते हैं,
ग्रास्तीन ही यहाँ सफाई का ठेका लेते हैं।

पर छोड़ो यह बात, ग्रौर भी रंग हमें भरना है,
किसकी कैसी नाक, मास्टर जी को क्या करना है।
यहाँ गुरू जी ग्रच्छे-ग्रच्छों के हैं भूत भगाते,
तीस-मार-खाँ बड़े-बड़े हैं, नाकों चने चबाते।

ग्रब ग्रारम्भ यहाँ पर क्रम होता है ग्रध्यापन का,
यह पावन कर्तव्य मास्टर जी के प्रिय जीवन का।
खोल रजिस्टर, बच्चों के वे नाम पुकार रहे हैं,
कह 'हाजिर जनाब !' बच्चे भी चुप्पी मार रहे हैं।

नाम पुकारा 'भगतसिंह !' 'हाजिर जनाब' गायब था,
पत्रक पर से दृष्टि हट गई, उन्हें सहन यह कब था।
गरज उठे, "क्या भगत नहीं है ?" किन्तु कौन उत्तर दे,
जान-बूझ कर कौन ग्रोखली में जो ग्रपना सर दे।

फिर खुद ही बड़-बड़ा उठे, "देखूँगा वह आये तो,
बिना प्रसाद चखे डंडे का, बच्चू अब जाये तो।"
इतने में ही टपक पड़ा लो, वह नाहर का बच्चा,
कच्ची उमर भले ही हो, पर नहीं अकल का कच्चा।

आते ही बोला, "प्रणाम ! ओ मास्टरजी ! पालागन !'
अभी-अभी जो गरम हुआ था पर अब नरम हुआ मन।
पूछा, "क्यों रे ! देर हुई क्यों ? क्या यह तेरा घर है ?"
मेरे नाम और डंडे का नहीं तुझे क्या डर है ?"

कहा भगत ने, "बात मास्टर जी ! मैं क्या बतलाऊँ,
अगर पिटाई लगे नहीं तो सच्चा हाल सुनाऊँ।
पहले अपनी गदा आप नीचे धरती पर धर दें,
सच्ची बात बताऊँगा यदि आप मुझे अवसर दें।"

अध्यापक जी भुन्नाये, पर अभय-दान दे बैठे।
डंडा नीचे रखा, विनय के लिये कान दे बैठे।
सच्चा कारण क्या था, वे भी सुनने को आतुर थे,
कक्षा में जो बालक थे, उनके भी उत्सुक उर थे।

बोला भगत, "मास्टर जी ! जब हुआ समय चलने का,
मैं चल पड़ा किन्तु जो होना था वह कब टलने का।
मैं गिर पड़ा, लगी जोरों की मुझको होश नहीं था,"
कहा मास्टर जी ने, "सचमुच तेरा दोष नहीं था।

पर तू गिरा कहाँ बतला तो कहाँ लगी है तुझको ?
बेटा तेरा गिरना सुनकर दुःख हुआ है मुझको।"
बेटा अब गंभीर हो गया, रोनी शकल बनाई,
जो घटना थी घटी, इस तरह उसने उन्हें सुनाई—

तोते जैसी नाक किसी की सुन्दर और नुकीली,
किसी-किसी की लम्बी, जैसे हो माचिस की तीली।
यदि इसकी है नाक पकौड़े जैसी फूली-फूली,
तो उसकी बैठी-बैठी-सी, बिलकुल ही मामूली।

किसी-किसी की भरी-भरी-सी, किसी-किसी की खाली,
इसकी नाक तमंचे जैसी, उसकी नाक दुनाली।
किसी-किसी की रुकी-रुकी-सी, किसी-किसी की चालू,
किसी-किसी की है पठार-सी, किसी-किसी की ढालू।

इसकी नाक हिमालय, जिससे बहतीं गंगा-जमना,
होड़ लगी दोनों में, कोई नहीं चाहती थमना।
हैं रूमाल व्यर्थ, जाने ये कितने खो देते हैं,
आस्तीन ही यहाँ सफाई का ठेका लेते हैं।

पर छोड़ो यह बात, और भी रंग हमें भरना है,
किसकी कैसी नाक, मास्टर जी को क्या करना है।
यहाँ गुरू जी अच्छे-अच्छों के हैं भूत भगाते,
तीस-मार-खाँ बड़े-बड़े हैं, नाकों चने चबाते।

अब आरम्भ यहाँ पर क्रम होता है अध्यापन का,
यह पावन कर्तव्य मास्टर जी के प्रिय जीवन का।
खोल रजिस्टर, बच्चों के वे नाम पुकार रहे हैं,
कह 'हाजिर जनाब !' बच्चे भी चुप्पी मार रहे हैं।

नाम पुकारा 'भगतसिंह !' 'हाजिर जनाब' गायब था,
पत्रक पर से दृष्टि हट गई, उन्हें सहन यह कब था।
गरज उठे, "क्या भगत नहीं है ?" किन्तु कौन उत्तर दे,
जान-बूझ कर कौन ओखली में जो अपना सर दे।

फिर खुद ही बड़-बड़ा उठे, "देखूँगा वह आये तो,
बिना प्रसाद चखे डंडे का, बच्चू अब जाये तो।"
इतने में ही टपक पड़ा लो, वह नाहर का बच्चा,
कच्ची उमर भले ही हो, पर नहीं अकल का कच्चा।

आते ही बोला, "प्रणाम ! ओ मास्टरजी ! पालागन !"
अभी-अभी जो गरम हुआ था पर अब नरम हुआ मन।
पूछा, "क्यों रे ! देर हुई क्यों ? क्या यह तेरा घर है ?"
मेरे नाम और डंडे का नहीं तुझे क्या डर है ?"

कहा भगत ने, "बात मास्टर जी ! मैं क्या बतलाऊँ,
अगर पिटाई लगे नहीं तो सच्चा हाल सुनाऊँ।
पहले अपनी गदा आप नीचे धरती पर धर दें,
सच्ची बात बताऊँगा यदि आप मुझे अवसर दें।"

अध्यापक जी भुन्नाये, पर अभय-दान दे बैठे।
डंडा नीचे रखा, विनय के लिये कान दे बैठे।
सच्चा कारण क्या था, वे भी सुनने को आतुर थे,
कक्षा में जो बालक थे, उनके भी उत्सुक उर थे।

बोला भगत, "मास्टर जी ! जब हुआ समय चलने का,
मैं चल पड़ा किन्तु जो होना था वह कब टलने का।
मैं गिर पड़ा, लगी जोरों की मुझको होश नहीं था,"
कहा मास्टर जी ने, "सचमुच तेरा दोष नहीं था।

पर तू गिरा कहाँ बतला तो कहाँ लगी है तुझको ?
बेटा तेरा गिरना सुनकर दुःख हुआ है मुझको।"
बेटा अब गंभीर हो गया, रोनी शकल बनाई,
जो घटना थी घटी, इस तरह उसने उन्हें सुनाई—

सर्ग नौ

यह जेब है या कबाड़-खाना?

"क्यों रे दुष्ट ! यहाँ तो आ तू, तेरी अच्छी दशा बनाऊँ,
आ तो मेरे पास तनिक तू, तुझको अच्छा मजा चखाऊँ।
बतला तो, अपनी जेबों में तू क्या-क्या ठूंसा करता है ?
कूड़ा-कचरा जो मिल जाये, जाने क्या-क्या तू भरता है।

चल तो दशा देख चाची की, तेरी करनी का फल पाया,
उँगली कटी, खून बह निकला, यह सब है तेरी ही माया।
तेरे कपड़े धोने उसने, जेबों से सामान निकाला,
फक् से उँगली कटी, हाथ जैसे ही उसने अपना डाला।

निकले तेरी जेबों में से, लोहा-लंगर, कंकड़-पत्थर,
चाकू-छुरी, काँच, कीलें भी. अगड़म-बगड़म चिड़ियों के पर।
बतला तो, ये सभी वस्तुएँ कहाँ-कहाँ से तू लाता है ?
और जेब ही रखने मिलती, क्यों तू बाज नहीं आता है ?

ज्ञात नहीं क्या, इस धुन में तू कितने कपड़े फाड़ चुका है,
कपड़े ही क्या, अच्छी-अच्छी चीजें कई उजाड़ चुका है।
रखें शीशियाँ कहीं छिपा कर, ढक्कन के हैं पते न चलते,
हरदम तेरी जेबों में ही ऐसे कई कबाड़े मिलते।

इनसे हाथ-पैर कट सकते, नहीं तनिक भी तू डरता है,
बतला तो इन सभी वस्तुओं से तू क्या करता-धरता है ?"
"मम्मी ! मम्मी ! हुई तुम्हारी लम्बी आज प्रश्न-माला है,
अच्छा खासा भाषण तुमने मेरे सम्मुख दे डाला है।

तनिक खून यदि चाची का बह गया, हुआ क्या बड़ा गजब है ?
वीर-बहादुर की पत्नी वह, बात नहीं कुछ हुई अजब है।
तनिक खून से घबरायें हम, जीवन में क्या कर पायेंगे ?
बिना खून की होली खेले, कैसे आजादी लायेंगे ?

आज कई वीरों के किस्से, हमें गुरू जी ने बतलाये,
तुम्हें पता क्या, मम्मी ! मेरे मन में भाव कौन से आये।
मैंने सोचा मम्मी ! मै भी बहुत बड़ा योद्धा बन जाऊँ,
और दुश्मनों को खदेड़ कर मातृ-भूमि आजाद कराऊँ।

यह भी कहा गुरू जी ने था, भारत में बनते बम गोले,
गुप-चुप कई कारखाने हैं, भारत के वीरों ने खोले।
मेरी जेबों में जो निकला, इन चीजों से बम बन सकता,
बम बन गये, देश के दुश्मन से फिर खूब युद्ध ठन सकता।'

"क्यों रे ! अच्छे कामों में तो, तनिक न तेरा मन रमता है,
और अभी से इन बातों में तेरा ध्यान बड़ा जमता है।
आने दे, मैं आज उन्हें बतलाऊँगी सब तेरी बातें,
तू क्या-क्या सोचा करता है, और लगाता है क्या घातें।"

"मम्मी ! जब देखो तब मुझको, तुम पापा की धौंस दिखातीं,
रँगे हुए वे भी इस रँग में, क्यों न उन्हें भी तुम समझातीं।
ऐसी कई-कई बातें, वे आये दिन करते रहते हैं,
वीर बनें भारत के बच्चे, वे भी यही बात कहते हैं।"

"बेटे ! उनकी बात और है, तू उन बातों को क्या जाने ?
तू तो अभी बहुत छोटा है, भला-बुरा तू क्या पहचाने ?
पहले तू अच्छा पढ़ लिख ले, ज्ञान सीख तू ध्यान लगाकर,
जिसमें तेरा भला, बात मैं वही कह रही हूँ समझा कर।

फिर तू वही काम करना, जो तेरे पापा तुझे बतायें,
और सीखना उन बातों को, जो कुछ भी वे तुझे सिखायें।
पता नहीं तू क्या कर बैठे, अभी बिना कुछ समझे-बूझे,
इतनी कच्ची उमर, न जाने कैसे भाव तुझे ये सूझे।

अच्छा जाकर देख, आज।
चाची ने क्या-क्या तुझे बनाया,
मुश्किल से अब आ पाया है.
तुझको कितनी बार बुलाया।

खूनी सपना

"चाची ! उँगली कटी तुम्हारी, सुना बहुत सा खून बहा है,
मुझे खेद है, मेरे कारण तुमने यह सब दुःख सहा है।"
"कोई बात नहीं है बेटे ! क्यों मेरे दुख से डरता है?
तनिक खून बह गया—बह गया, तू क्यों मन हल्का करता है?"

"चाची ! मुझे तनिक पीड़ा हो, तुम तो बहुत दुखी होती हो,
तब तुमको क्या हो जाता है, तुम अपनी सुध-बुध खोती हो।
और तुम्हें दुख हो चाची ! तो क्यों न दुखी मेरा भी मन हो ?
दुखी रहो तुम और सुखी मैं, क्यों मुझको यह बात सहन हो ?

खून तुम्हारा बहा, न उतना जब तक मेरा बह जायेगा,
सच कहता हूँ चाची ! मेरे मन को चैन नहीं आयेगा।"
"बेटे अशुभ बात मत कह तू, खून बहे तेरे दुश्मन का,
तू तो प्यारा-प्यारा चन्दा मेरे धूमिल भाग्य-गगन का।

तू मेरी दुर्भाग्य-निशा का, ज्योति-किरण बन तम हरता है,
तुझे पता क्या, कितने-कितने तू मेरे दुख कम करता है।"
"चाची ! अभी कहा यह तुमने, खून बहे तेरे दुश्मन का
क्या सचमुच ही सच हो सकता, यह सपना मेरे जीवन का ?

क्यों चाची ! जब हम सोते हैं, तो हमको सपने क्यों आते ?
सब बातें सच-सी लगती हैं, जब तक जाग नहीं हम जाते।"
"बेटे ! हम सो जाते हैं पर कई विचार नहीं सोते हैं,
वे सब मन के अंतराल में, जाने कहाँ पड़े होते हैं।

जब हम जाग रहे होते तो, भाव नहीं वे बाहर आते,
संकोची होते विचार वे, भय से वहीं दबे रह जाते।
किन्तु कभी ऐसा होता, जब पड़े बे-खबर हम सोते हैं,
चोरों जैसे भेष बदल कर, वे ही भाव उदित होते हैं।

नींद लगी तो सपने सच हैं, जागें स्वप्न चले जाते हैं,
सपनों की माया में पड़कर, मानव सदा छले जाते हैं।
बात कहें हम क्या सपनों की, सपने तो आखिर सपने हैं,
किन्तु भाग्य जब अपना सोता, अपने सगे नहीं अपने हैं।

मानव अपने संकल्पों से, अपने सपने सच करता है,
कर्म-तूलिका से सपनों में, मानव कई रंग भरता है।
पर जाने दे इन बातों को, तुझको यह विचार क्यों आया ?
क्या कोई सपना देखा है, जो तूने यह जिक्र चलाया ?"

"चाची ! मम्मी से मत कहना, तुझको भेद बताया अपना,
गई रात जब मैं सोया तो, देखा कुछ विचित्र-सा सपना।"
"पगले ! तू रातों में क्या, दिन में भी सपने देखा करता,
पता नहीं तेरा भावुक मन, कहाँ-कहाँ किस तरह विचरता।

अच्छा तनिक सुनूँ मैं भी तो, तूने है क्या सपना देखा,
देखूं तेरी बाल-कल्पना ने है कौन दृश्य अवरेखा।"
"चाची ! मैंने देखा, सचमुच खूब लड़ाई छिड़ी हुई है,
और विदेशी सेना, भीषण मार-काट में भिड़ी हुई है।

गोरे सैनिक तोप-तमंचे हम लोगों पर चला रहे हैं,
कुचल रहे हैं घोड़ों से वे, किसी-किसी को जला रहे हैं।
और लोग भी नहीं मानते, वे भी उनसे जूझ रहे हैं,
मार-काट के भाव उन्हें भी अपने मन में सूझ रहे हैं।

यद्यपि हैं हथियार न उन पर, फिर भी सीना तान रहे हैं,
गिरते हैं, मरते हैं, फिर भी हार नहीं वे मान रहे हैं।
मुझे देख कर कोई गोरा, बड़े जोर से मुझ पर झपटा,
किन्तु एक बाबाजी ने आ, मुझे बचा कर उसको डपटा—

"क्यों रे! शर्म नहीं आती है? बच्चे पर है हाथ उठाता,
बड़ा वीर बनने आया है, आग निहत्थों पर बरसाता।
इसे बड़ा तो हो जाने दो, देखें फिर वीरता तुम्हारी,
यह कितना मासूम अभी, फिर देखेगा धरिता तुम्हारी।"

गोरा बोला, "बड़ा साँप का बच्चा कैसे हो पायेगा?
पहले ही मारा जायेगा, उसका फन कुचला जायेगा।"
बाबा बोले, "देख, सिंह-बच्चा यदि अपनी पर आयेगा,
एक झपट में ही दबोच कर, कच्चा तुझे फाड़ खायेगा।"

यह सुनते ही उस अफसर ने, क्रोधित हो पिस्तौल निकाली,
पर बाबा जी ने झट उसकी, भाले से पिस्तौल उछाली।
और हुमक कर वह भाला फिर उसकी छाती में दे मारा,
वहीं ढेर हो गया दुष्ट वह, जाने कितनों का हत्यारा।

जैसे ही वह गिरा, साथ के सौ-सौ सैनिक टूटे हम पर,
बाबा जी ने मंत्र फूँक झट, बना दिया उन सबको पत्थर।
फिर मुझसे बोले बेटे तू डर तो नहीं गया बतला तो?
तुझे लगा लूँ मैं छाती से, मेरी गोदी में तू आ तो।

करते रहे प्यार वे मुझको, मैं बोला—मुझको क्या डर है?
छाया आप बड़े-बूढ़ों की, जब तक मेरे मस्तक पर है।
फिर बोले वे, बच्चा! तेरा खून अगर मिल जाय वतन को,
तो हरियाली मिल सकती है, अपने उजड़े हुए चमन को।

मैं बोला—हड्डियाँ खून मैं सब कुछ अपना दे सकता हूँ,
क्या न पूर्वज ऋषियों जैसा, दान-सुयश मैं ले सकता हूँ ?
वे बोले, अच्छा, क्या अपना थोड़ा रक्त निकाल सकेगा ?
ले कृपाण यह, बोल खून देने में तो तू नहीं डरेगा ?

मैं क्यों डरता चाची ! मैंने वह कृपाण इस तरह चलाई,
लगते ही, इस तरह खून की धार निकल उँगली से आई।"
'अरे ! अरे ! पगले ! तूने यह क्या कर डाला मुझे बता तो,
सपना कहते-कहते उँगली सचमुच कटी मुझे दिखा तो।

नरम उमर में ही यह तुझ पर कैसा पागलपन सवार है ?
देख, नरम उँगली से कैसी गरम खून की लगी धार है।
समझ गई मैं, खून बहाने की तूने हठ पूरी की है,
नहीं जानता, मेरे मन को कितनी बड़ी प्रेरणा दी है।

चल, जीजी के पास ले चलूँ, तेरी यह करतूत बताऊँ,
जो कुछ तूने मुझे सुनाया, तेरा सपना उन्हें सुनाऊँ।"
"कैसे ले जाओगी चाची ! हाथ तुम्हारे क्या आऊँगा ?
नहीं पकड़ पाओगी मुझको, उछल फुर्र से उड़ जाऊँगा।"

उछल-कूद करता वह सचमुच
पलक मारते फुर्र हो गया,
कई मनोभावों के, चाची के
मन में वह बीज बो गया।

स्वप्न-विश्लेषण

"जो बातें आपने भगत की, भाई साहब ! मुझे बताईं,
अपनी स्वल्प-बुद्धि से वे सब, ठीक समझ में मेरे आईं।
मैं शिक्षक हूं, अनुभव से ही ज्ञान सदा आँका करता हूं,
बाल-हृदय हैं खुले पृष्ठ-से, उनको नित झाँका करता हूँ।

मैंने देखा, भगत आपका तीव्र-बुद्धि है, अच्छी मति है,
सबल संस्कारों के कारण, निश्चित-सी ही उसकी गति है।
सहज-वृत्तियों के विकास को वातावरण मिल रहा घर में,
इसीलिये उन्मुक्त हो रहे, भाव अंकुरित जो अंतर में।

और आजकल भारत भर में, फैली असंतोष की ज्वाला,
फिर यह तो पंजाब हमारा, यहाँ क्रान्ति ने डेरा डाला।
धधक रही भावना कौन-सी यहाँ, आप इससे अवगत हैं,
गुप्त क्रान्तिकारी-दल, विप्लव की तैयारी में अनुरत हैं।

सभी विदेशों से अपने घर, लौट रहे हैं वीर प्रवासी,
बीज क्रान्ति के नये-नये वे, साथ ला रहे सत्यानाशी।
जितने क्रान्ति-वीर अमरीका और कनाडा से आये हैं,
चीन और जापान, मलाया के साथी भी वे लाये हैं।

हो स्वतन्त्र यह देश हमारा, यह ज्वलंत भावना हृदय में,
बड़ा जोश लोगों के मन में, विप्लव के इस पुण्योदय में।
गाँव-गाँव, घर-घर में जाकर, वे अपना प्रचार करते हैं,
वे राष्ट्रीय-भावना बच्चे-बच्चे के दिल में भरते हैं।

इन्हें किसी का डर न तनिक है, सभी जान पर खेल रहे हैं,
ये दासता देश की, पूरा जोर लगा कर ठेल रहे हैं।
भूख-प्यास, पीड़ायें सह कर, ये सब गाँव-गाँव जाते हैं,
देश-भक्ति का पाठ पढ़ा कर, ये लोगों को समझाते हैं—

"महा-समर की लपटों में जब, लिप्त हो रहे आज फिरंगी,
इस अवसर का लाभ उठाने, प्रस्तुत रहें क्रान्ति अनुरंगी।
एक और धक्का यदि हम भी दे दें इन गिरनेवालों में,
हम न अगर आदर्श बघारें राजनीति की इन चालों में—

यदि हम अपनी पिछली भूलें, आज नहीं फिर से दुहरायें,
यदि सब भारत-वासी मिल कर, एक बार फिर जोर लगायें—
आजादी की मंजिल हम से, समझो फिर कुछ दूर नहीं है,
कोई गर्व नहीं, जिसका सर होता है चकनाचूर नहीं है।

रोयेंगे अपने कर्मों को, ये अभिमानी—ये उन्मादी,
और खून देकर हम अपना, पायेंगे अपनी आजादी।"
ऐसी कई-कई बातें ये, गुप-चुप लोगों को समझाते,
फलीभूत होंगे प्रयत्न सब, यह उनको विश्वास दिलाते।

अपना गाँव अछूता कैसे रह सकता है इन बातों से,
नहीं अलिप्त आप भी हैं इस दाव-पेच से इन घातों से।
ऐसे ही विचार इस बालक के मन में हैं चक्कर खाते,
उग्र-भाव, चेतना-तरंगों से आ-आ कर हैं टकराते।

यह भी अपनी बाल-मंडली में ऐसी बातें करता है,
सभी साथियों के मन में यह जोश-खरोश खूब भरता है।
यह वय से भी बड़े बालकों का नेतृत्व किया करता है,
धरती के प्रति कर्तव्यों का, यह उपदेश दिया करता है।

जब बातों का क्रम चलता, तो सब बच्चे उत्साह दिखाते,
सुनी-सुनाई बातों में वे, नमक-मिर्च भी खूब लगाते।
इसी लिये, मैं उन्हें सत्य घटनाओं का विवरण देता हूँ,
मैं तो शिक्षक हूं, समाज का कोई नहीं बड़ा नेता हूं।"

"बात मास्टर जी! सब सच है, कब मुझको विरोध है इससे,
पर वह बात और कुछ ही है, मैं सुनकर चिन्तित हूँ जिससे।
वह सपने की बात भगत की, क्या उसमें कुछ निहित अर्थ है?
कुछ तो तथ्य छिपा ही होगा, हो सकता सब नहीं व्यर्थ है।"

"भाई साहब! आप व्यर्थ ही इन बातों की चिन्ता करते,
सपने तो सब सपने ही हैं, वे कब,कब हैं सत्य उतरते।
कल ही यहाँ सुनी थीं उसने, कूका-विप्लव[1] की घटनाएं,
कई बाल-वीरों की उसने पूछ-पूछ कर सुनी कथाएँ।

असम्बद्ध प्रतिक्रिया इन्हीं बातों की संभव उसके मन पर,
दिखता, अपनी इच्छाओं का उसने इनमें रंग दिया भर।
उलटे-सीधे क्रम में ये ही बातें उसे बन गईं सपना,
चिन्ता की तो बात नहीं कुछ, यह अनुभव है मेरा अपना।

---

१. पंजाब में सबसे पहले स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये जो बलिदान हुये, वे कूका-विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध हैं। कूका-विद्रोह के नेता भैणी निवासी गुरू रामसिंह जी थे। धर्म और गौ-रक्षा के माध्यम से देश-भक्त सिक्खों के हृदय में विदेशी शासन के प्रति विद्वेष की भावनायें फूंकी जा रही थीं। सन् १८७२ ई० में पचास कूके विद्रोहियों को लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर मि० कावन ने मालेरकोटला में सरे आम तोप के मुंह से बाँधकर उड़वा दिया था। इस घटना का विस्तृत वर्णन सर्ग १८ के 'तेरह का अशुभ अंक' प्रसंग में मिलेगा जब भगतसिंह ने कानपुर में अध्यापक बनकर अपने छात्रों को यह घटना सुनाई थी।

ग्रौर ग्रापका पुत्र भला क्यों ऐसी बातें नहीं करेगा ?
जिस पथ पर परिवार चल रहा, यह भी उस पर ही विचरेगा।
ठीक कहा है—पुत्र पिता का, या सवार का ग्रपना घोड़ा,
बिलकुल वैसा ही होता है, बहुत नहीं तो थोड़ा-थोड़ा।"

"ग्रच्छा चलूँ मास्टर जी ! मैं, हैं निर्मूल सभी शंकाएँ,
ग्राप जानते भली भाँति हैं मानव की सब मनोदशाएँ।
मिल लेता जब कभी ग्राप से, तबियत खुश हो जाती मेरी,
ग्रच्छा गुरुवर ! विदा ! चलूंगा, ग्राज हो गई है कुछ देरी।"

"ग्रच्छा नमस्कार भाई जी !
ग्राप शीघ्रता में हैं, जाएँ,
किन्तु विनय है, कभी-कभी
ऐसे ही दर्शन देने ग्राएँ।"

सर्ग दस

विजय के मंसूबे

"है बन्द पाठ-शाला तो, फिर आज वहाँ क्यों जाता ?
जाने की धुन में तुझको, कुछ भी तो नहीं सुहाता।
यह धूप तेज कितनी है, बाहर कैसी लू चलती,
घर से निकलें तो लगता, जैसे वह आँख बदलती।

मैं आज न जाने दूंगी, क्यों इतनी हठ करता है ?
तू ऐसे में जायेगा, मेरा मन तो डरता है।
तू रह घर की छाया में, मेरी छाया में रह तू,
दोपहरी के आतप का, रे! व्यर्थ कष्ट मत सह तू।"

"है बन्द पाठशाला तो, पर जाना आवश्यक है,
क्यों नहीं सोचती माँ तू, दल का भी मुझपर हक है।
मेरे दल के सब साथी, कर रहे प्रतीक्षा मेरी,
तू मुझको रोक रही है, हो रही मुझे है देरी।

मिल कर हम लोग वहाँ से, सब मेले में जायेंगे,
सूरज ढलते-ढलते ही हम यहाँ लौट आयेंगे।
'अभिमन्यु-वीर-दल' मेरा, 'हीरो-दल' से खेलेगा,
मुझको विश्वास, विजय-श्री यह मेरा दल ले-लेगा।

यह धूप नरम है कितनी, है नहीं नाम भी लू का,
है खेल वहाँ आयोजित उस दल से हुतू-तू का।
कप्तान चुना है मुझको, निश्चित ही जाना होगा,
मैं वचन-बद्ध हूँ दल से, कर्तव्य निभाना होगा।

यदि पहुँच न पाया मैं, तो मुंह कैसे दिखलाऊँगा ?
क्या नहीं साथियों द्वारा मैं धिक्कारा जाऊँगा ?
ओ मम्मी ! अच्छी मम्मी ! तू मुझे चला जाने दे,
करके मुकाबला उनसे, जय-श्री मुझको लाने दे।"

"किससे मुकाबला होगा ? यह जय-श्री कौन बला है ?
बेटे ! विवाद माँ से तू क्या करने आज चला है ?
पापा ! माँ रोक रही है, है मुझे खेलने जाना,
कप्तान चुना है मुझको, अपना दल मुझे जिताना।"

"क्यों रोक रही हो इसको ? जाता है तो जाने दो,
हौसला न तोड़ो इसका, कुछ जौहर दिखलाने दो।
ये ही तो दिन हैं इसके, खेलने और खाने के,
फिर तो दिन आते, घर के चक्कर में पड़ जाने के।"

"तुमने ही इसे बिगाड़ा, तुम ही तो शह देते हो,
हो कोई बात, इसी का तुम पक्ष सदा लेते हो।
दिन-रात खेल के पीछे, यह रहता है मतवाला,
बच्चा क्या है, यह पूरा आफत का है परकाला।

अच्छा जाओ बेटे तुम, पर शीघ्र लौट कर आना,
खेलना खूब, पर झगड़ा मत जाकर वहाँ कमाना।
ये कुछ पैसे ले जाओ, तुम सब कुछ खा-पी लेना,
पर देर न हो आने में, मत कष्ट मुझे तुम देना।"

यों उलझ-सुलझ कर माँ का वह भगत हुआ घर बाहर,
पिंजड़े की कारा से ज्यों, उन्मुक्त हुआ हो नाहर।
जा मिला शीघ्र दल में वह, सब फूले नहीं समाये,
खुश हो-हो उछले-कूदे, हो ! हो ! करके चिल्लाये।

"कप्तान आ गया अपना, हाँ करो कूच अब भाई !
हीरो-दल को चीरो सब, वीरो ! है विकट लड़ाई।
हो गई देर क्यों तुमको, हम सब निराश होते थे,
था समय बीतता जाता, हम सब धीरज खोते थे।"

"हाँ मैं आगया, मुझे माँ आने से रोक रही थी,
लू और धूप की बातें करके वह टोक रही थी।
धर मैंने उसे बनाया, पापा से भी कहलाया,
सब को खाने-पीने को, कुछ पैसे भी ले आया।

चल पड़ो शीघ्र अब, बातें होने दो चलते-चलते,
लम्बे-लम्बे डग भर कर वीरो ! सब चलो उछलते।
तगड़ा मुकाबला अपना है सचमुच हीरो-दल से,
यह खेल ज़ीतना होगा, चतुराई से छल-बल से।

उनमें वह चन्ना ही है, जो अपनी अकड़ दिखाता,
वह डील-डौल से अपने, है हम पर रौब जमाता।
वह भूल न पाया होगा, मैं उसे पछाड़ चुका हूँ,
उसके घमंड की सारी खूंटियाँ उखाड़ चुका हूँ।

वह पाला देने आये, बन्ता ! तुम दहल न जाना,
तुम पीछे हटते-हटते, आगे को उसे बढ़ाना।
वह टाँग उछाले ज्यों ही, बस लपक लिपट जाना तुम,
हम सब भी चढ़ बैठेंगे, उससे मत घबराना तुम।

सीधी न पंक्ति अपनी हो, मोर्चा धनुष जैसा हो,
जो नहीं डिगे किंचित भी, हौसला विकट ऐसा हो।
चड्ढा ! तुम पाला देने जाओ तो मत अर्राना
अक्सर पकड़े जाते हो, मत पड़े-पड़े टर्राना।

यदि गिरो, हाथ लम्बा कर, झट मध्य-पंक्ति छू लेना,
बल से न काम चल पाये, तो उनको चकमा देना।
भल्ला ! तुम खुल्लम-खुल्ला, मारना शत्रु को गिन-गिन,
तुम खूब गर्जना करना, मत करना जाकर पिन-पिन।

तुम कुशल शिकारी जैसे, दम साधे रहना सोंधी।
जो तुम पर लपके, करना खोपड़ी उसी की औंधी।
शर्मा ! तुम शरम न जाना, दो-चार मार कर आना,
चन्दू ! तुम चाँद किसी की, चपटी कर मजा चखाना।

जस्से ! तुम घिस्से देकर, अपना जस उज्ज्वल करना,
मारना हमें है केवल, इस रण में हमें न मरना।
बेला ! तुम ठेला जैसे मत सीधे बढ़ते जाना,
उड़-उड़ कर, उछल-उछल कर, अपने पैंतरे दिखाना।

खन्ना ! चौकन्ना रह कर, रखना सामान सम्हाले,
तुम और सूद दोनों ही हो डेरे के रखवाले।
लो मंजिल भी आ पहुँची, हम ठीक समय पर आये,
दो लगा जान की बाजी, यह बाजी आज न जाये।

है नाम हमें इस दल का सब को मिल कर चमकाना,
अपने प्रतिद्वन्द्वी दल पर है हमको धाक जमाना।
अभिमन्यु-वीर-दल है यह, गौरव भी वैसा पाये,
यह चक्र-व्यूह की रचना को तोड़-फोड़ कर आये।

यह विजय न मेरी-तेरी, यह अपने दल की होगी,
यह आज परीक्षा अपने पौरुष की बल की होगी।
लो, चलो ! सभी हम मिल कर अपने अरमान निकालें,
जो आये दचकें-पटकें रगड़ें, हम उसे उछालें।"

हीर-राँझाओं का मेला

यह चहल जो दिखती, यह गाँव देश का मेला,
यह रेल-पेल तो देखो, देखो यह ठेलम-ठेला।
पथ की बहु-धाराओं से, यह जन-प्रवाह संचित है।
जो यहाँ, लूटता सुख वह, जो आ न सका, वंचित है।

जो आस पास के हैं वे सब पाँव-पाँव आये हैं,
चौ-तरफा जितने भी हैं, वे सभी गाँव आये हैं।
कुछ संग-साथ आये हैं, कुछ आये इक्के-दुक्के,
कुछ भले आदमी आये, आये कुछ चोर-उचक्के।

घोड़े-घोड़ियाँ सजे हैं, सज-सज कर आये छकड़े,
क्या शान दिखाते आये, आये क्या अकड़े-अकड़े।
गाँड़ियाँ नहीं, ये भर-भर आये पंजाबी गाड़े,
कुछ लेटे-लेटे आये, कुछ आये बैठे-ठाड़े।

कोई फट-फटिया लाये, कुछ उठा साइकिल भागे,
सब होड़ा-होड़ी करके, जाते क्या आगे-आगे।
यह बाइसिकल तो देखो, इन भाई की धज देखो,
कुनबा ही बिठा चले हैं, इनका अचरज तो देखो।

जिससे जैसे बन पाया, वे आये वैसे-वैसे,
सज-सँवर-सँवर कुछ आये, कुछ जैसे के ही तैसे।
हर्षित उत्संगों का यह, यह रूप रंग का मेला,
यह दिल वालों का मेला, दिल की उमंग का मेला।

यह मेला है वीरों का, मेला तीखे तीरों का,
यह राँझाओं का मेला, यह मेला है हीरों का।
लटके कृपाण फिरते हैं, यह मेला तलवारों का,
कुरतियों और कुरतों का, यह मेला सलवारों का।

हैं इनके ठाट निराले, यह आन-वान क्या कहना,
चल रहे तान कर सीना, यह अजब शान क्या कहना।
यह साफों की धज देखो, देखो ये कलगी-तुर्रे,
रौबीली मूँछों पर ये, देखो बल खाते मुर्रे।

क्या सुन्दर रंग-बिरंगी, ये सजी पगड़ियाँ देखो,
ये गौरव से गर्वीली गरगजी पगड़ियाँ देखो।
दाढ़ी-मूँछों वाले ये नर नाहर-से लगते हैं,
तलवार डुबा शोणित में, ये यश-गाथा लिखते हैं।

लुँगियाँ विविध रंगों की, ये कस-कस कर आये हैं,
दिल वाले किसी किसी के दिल में बसकर आये हैं।
कैसे-कैसे कद्दावर गभरू जवान आये हैं,
ये अरमानों की मस्ती, सब छान-छान आये हैं।

ये पुष्ट वक्ष क्या चौड़े, ये क्या अल्हड़ मर्दाने,
गजराज लजा जाता जब ये चलते सीना ताने।
सुगठित, बलिष्ट, फौलादी, ये मांसल, सबल भुजाएँ,
लेखनी करे चित्रित क्या, इनकी अनेक क्षमताएँ।

ये जिस धरती के बेटे, जय उस धरती की जय हो,
जब ये रखवाले हैं फिर क्यों नहीं शत्रु का क्षय हो?
लेखनी विराम न ले तू, यह चलने का है अवसर,
यह धूप रूप की कैसी, इसका भी तो चित्रण कर।

मन के इन राजाओं की, ये सुघढ़ रानियाँ आईं,
सिंहनी देख शरमाये, ऐसी जनानियाँ आईं।
तन टाँकी से निर्मित से, साँचे में ढले-ढले से,
इनके मन, मादकता का रस पीकर पले-पले से।

आसव का असर चुराये, रतनारे नयन सजीले,
अंजन की रेखाओं से जो लगते और कटीले।
ये उठें फूल खिल जायें, भौंरे भ्रम में पड़ जायें,
इनकी रचना को लख कर, खंजन, मृग, मीन, लजायें।

समता मयंक कर पाये कैसे इन अमल-मुखों की,
दुख से अनुभूति मिलेगी क्या मन को कभी सुखों की ?
वह बहुत दूर धरती से रहता है सूनेपन में,
ये रहते बीच हमारे उर-उर में नयन-नयन में।

अंधों में काना राजा, वह दूर गगन का वासी,
ये राजाओं के मन पर भी शासन के अभ्यासी।
इठलाया करता है वह सेवित होकर तारों से,
ये पोषित होते रहते मानव की मनुहारों से।

उपमान न घन अलकों के, वे कहाँ ठहर पाते हैं,
वे सदा शून्य में तिरते, ये मन पर लहराते हैं।
वेणियाँ नागिनें क्यों हों ? नागिनें सदा डसती हैं,
ये तो दर्शक की आँखों—उनके मन में बसती हैं।

जो उर-प्रदेश पर शोभित, क्या उनको कहें दुपट्टे ?
दिल तार-तार हो-हो कर, हो आये यहाँ इकट्ठे।
इतने झीने, वेणी की आभा न छिपा पाते हैं,
वह लहराती, ये खुद ही झट खिसक-खिसक जाते हैं।

यह रूप न रस ही केवल, यह रूप कभी ज्वाला है,
इसने अपने गौरव को, काँटों में रख पाला है।
यह रूप आन पर अपनी है आँच न आने देता,
यह जान झोंक देता है, पर शान न जाने देता।

कल्पने ! विनत हो इसको, श्रद्धा से अंतर भरले,
कुछ दृश्य और बाकी हैं, उनका भी चित्रण कर ले।
यह गाँव-देश का मेला, मेला यह अलमस्ती का,
यह मेला अपनी-अपनी सब की विचित्र हस्ती का।

यह राग-रंग का मेला, दिल बाँसों उछल रहे हैं,
इस लोक-नृत्य की धुन पर सब के मन मचल रहे हैं।
रस में डूबे-डूबे सब, धारों में बहे-बहे हैं,
लोगों को पता नहीं, पग उनके भी थिरक रहे हैं।

लय और ताल का संगम, स्वर में रस घोल रहा है,
यह वह जादू जो सब के सर पर चढ़ बोल रहा है।
सरगम से रस झरता है, मन रस-प्लावित हो जाते,
कैसा जादू, इतने जन ये खड़े-खड़े खो जाते।

इस ओर नया ही ढँग है, है यहाँ प्रदर्शन बल का,
हो रही अखाड़े-बाजी, क्या कहना चहल-पहल का।
यह एक-एक से बढ़कर, जोड़ों का आयोजन है,
जब ताल ठोकते हैं ये, लगता यह घन-गर्जन है।

मल्ल-युद्ध का आयोजन यह
आयोजन है यह भिड़न्त का,
आयोजन यह अपने-अपने
ढँग से मल्लों की लड़न्त का।

यहाँ हौसला परखा जाता,
यहाँ परीक्षा होती बल की,
आवश्यक हो जाती इनको
फुर्ती दाव-पेच की, छल की ।

ताल ठोक कर हाथ मिलाकर
उत्सुक रहते हैं भिड़ जाने,
दृष्टि मिलाते, दृष्टि बचाकर
अच्छा दाव-घात हथियाने ।

दाव लग गया, देर नहीं फिर
सरपट झरपट हो जाती है,
दचका-पटकी, झटका-झटकी,
सब कुछ चट-पट हो जाती है ।

यदि इसने टँगड़ी मारी तो
लो उसने भी मारी बगली,
इसका दाव लगा तो उसकी
कमर भुजाओं में झट कस ली ।

झट उसने भी पलटा खाकर
मारा उलटा एक झपाटा,
हुई कला-बाजी दोनों की
दोनों ने ही भरा सपाटा ।

कन्धे से झटका दे इसने
क्या धोबी पछाड़ अजमाई,
गिरा धाड़ से वह धरती पर
तगड़ी एक पटकरी खाई ।

घिस्से लगा रहा यह उसमें
किन्तु व्यर्थ ही बल खोता है,
उसने धरती पकड़ रखी है
टस से मस न तनिक होता है।

उल्टा दाव लगा उसने ही
मारा ऐसा तगड़ा झटका,
झट से चढ़ बैठा छाती पर
चित करके धरती पर पटका।

बस फिर क्या, मित्रों ने इसको
ऊपर हाथों-हाथ उठाया,
हार-फूल से लाद-लाद कर
दूलहा जैसा इसे सजाया।

झूम-झूम यह आगे चलता
चलता अपना वक्ष फुलाये,
साथी बने बराती जैसे
चलते अपने शीष उठाये।

देखा, इस मेले में ऐसे-ऐसे
होते हैं आयोजन,
बल के और बुद्धि के ऐसे
होते रहते कई प्रदर्शन।

नेतृत्व
खेल में भी और युद्ध में भी

यह जो भीड़-भाड़ दिखती है, यह जो दिखती उथल-पुथल है,
पता आपको है यह क्या है, यह बच्चों की चहल-पहल है।
उछल रहा है कोई-कोई, कोई-कोई कूद रहा है,
दौड़ लगा कर इधर-उधर वह, कोई धरती खूंद रहा है।

कोई लोट-पोट होता है, कोई-कोई उड़ी लगाता,
कोई बना विदूषक जैसा है अपने कमाल दिखलाता।
इनके अंग-अंग में देखो मची हुई कैसी थिरकन है,
बने फिरकनी घूम रहे ये, नाम इसी का तो बचपन है।

लगता है, इनमें जीवन की तगड़ी चाभी भरी हुई है,
और कहीं होगी निष्क्रियता, वह तो इनसे डरी हुई है।
इनके क्रिया-कलाप देखकर आप बहुत ललचाते होंगे,
रह-रह यही सोचते होंगे, मन में यही मनाते होंगे—

कितना अच्छा हो यदि फिर से एक बार बचपन आ जाये,
यह अल्हड़ता, यह नादानी, फिर से यह जीवन आ जाये।
किन्तु व्यर्थ ही आप सोचते, कब आता फिर गया समय है,
हाथ मसलते रह जाते हम, होता रहता दग्ध हृदय है।

बचपन चला गया, जाने दो, करें सार्थक हम यौवन को,
जीवन के इस पुण्य-प्रहर को, पुण्यों के इस संचित धन को।
यदि हम में यौवन है तो हम यौवन जैसा इसे बितायें,
स्वाभिमान से ऊँचा मस्तक आतंकित हो नहीं झुकायें।

हम अन्याय कहीं भी देखें, सहें नहीं उसको चुप रहकर,
लज्जित करें नहीं यौवन को, हम अत्याचारों को सह कर।
अत्याचारी कोई भी हो, आखिर वह अत्याचारी है,
उसका हर अन्याय, दमन का और दण्ड का अधिकारी है।

यौवन का अपमान, अगर हम चुप रह अपमानों को झेलें,
यौवन का अपमान, अगर हम नहीं आग-पानी से खेलें।
यौवन का अपमान, अगर हम नहीं शत्रु को चढ़ कर मारें,
यौवन का अपमान, दया के लिए अगर हम हाथ पसारें।

यौवन वह जो अन्यायों को ललकारे आवाज उठाए,
नहीं प्रहारों से घबराए, सम्मुख अपना वक्ष अड़ाये।
चले कुचल कर जो काँटो को, वह यौवन यौवन कहलाता,
यौवन वह जो अगर ठान ले, तो जो चाहे कर दिखलाता।

यौवन नहीं आह भरता है, यौवन विवश न हो रोता है,
अधिकारों की भीख माँग कर यौवन अपमानित होता है।
भीख न अधिकारों की मिलती, वे लड़कर छीने जाते हैं,
मिलते हैं वे दीवानों को, जब वे अपनी पर आते हैं।

अन्यायों के तख्ते, यौवन पलटा करता अपने बल से,
यौवन मंजिल पाता अपनी, दृढ़ संकल्पों के संबल से।
नहीं इसलिये बात सोच की, क्या पछतायें बचपन खोकर,
वर्तमान अपने सम्मुख है, इसे नहीं काटें रो-धो कर।

बचपन तो हम चाहें फिर भी अपनी झलक दिखा सकता है,
यदि हम बच्चों में मिल जायें, हम में बचपन आ सकता है।
अतः आइए, यह बच्चों का खेल हो रहा, इसे निहारें,
बचपन के उमंग की फिर हम अपने मन में भरें फुहारें।

डटे हुए हैं ये जो दो-दल एक दूसरे के प्रति-द्वन्दी,
दल-नायक देते दिखलाई करते हुए मोर्चा बन्दी।
यह 'हीरो दल' कहलाता है, चननसिंह इसका नायक है,
सींग कटा बछड़ों में आया, जो कर बैठे सब लायक है।

और दूसरा दल जो सम्मुख करता है अपनी तैयारी,
यह 'अभिमन्यु-वीर-दल', इसकी आन-वान है सबसे न्यारी।
इसका नेता भगतसिंह है, इसका अपना ठाट निराला,
ऐसे ही कामों में रहता, जबसे इसने होश सम्हाला।

अभी उमर में छोटा है, पर दिल इसने जवान पाया है,
करके दिखलाया है इसने, जो इसके मन में आया है।
इसके जितने साथी हैं वे, इस पर जान दिये मरते हैं,
यह हो उनके साथ, नहीं वे फिर अच्छे खाँ से डरते हैं।

यह कर रहा मोर्चा-बन्दी देखो कितनी तन्मयता से,
समझा रहा सभी को चालें दृढ़ रहने की यह दृढ़ता से।
लो सीटी बज उठी फुर्र से, देखो खेल हो गया चालू
हीरो-दल का नायक उछला, जैसे फुदक उठा हो भालू।

वह पाला देने आया है, हुत्तू-तू-तू-तू-तू करता,
झपट पड़ा है वह अर्राकर, बलशाली है वह क्यों डरता।
जैसे ही अर्राया, उसको भगतसिंह ने धर दे मारा,
टूट पड़ा क्षण भर में उस पर, उसका दल का दल ही सारा।

अब बारी थी भगतसिंह की, वह भी लपका देने पाला,
किन्तु विपक्षी-दल ने इस पर बढ़ दो-तरफा घेरा डाला।
उछल-उछल वह लगा बोलने—हुत्तू-तू-तू-तू-तू-तू-तू,
किसने माँ का दूध पिया है, कौन मुझे आकर सकता छू?

अगर तनिक भी कोई लपका, इसने बन्दर-झपट दिखाई,
जो लपका, झट पीछे हट कर, उसने अपने मुँह की खाई।
हाथ-पैर फटकार रहा था, बढ़ता था वह बना गुरिल्ला,
और विफल कर-कर देता था, सुदृढ़ मोर्चे का वह किल्ला।

यह क्या हुआ? एक कोने से झपट पड़े कुछ इसके ऊपर,
उतनी ही फुर्ती से यह भी, झटक गिर पड़ा पट से भू पर।
यद्यपि दबा हुआ था उन से, किन्तु सरक कर हाथ बढ़ाता,
अंगुल-अंगुल करके धीरे-धीरे वह बढ़ता ही जाता।

और इस तरह सरक-सरक कर, छू ही ली उसने वह रेखा,
उछल पड़े सब इसके साथी, जब इसको वह छूते देखा।
उछल-उछल कर कूद-कूद कर, एक साथ ही सब चिल्लाये,
देखा, कैसा कुशल खिलाड़ी, एक साँस में छः चटकाये।

किन्तु कहें क्या, बेईमानी! मिलता बड़ा आसरा तेरा,
चन्ना उचक बीच में आया, बोल उठा—"यह दावा मेरा—
टूट चुकी थी साँस बीच में ही रेखा छूने के पहले,
यह अन्याय सरासर कोई कैसे चुप हो करके सहले।"

उसे बहुत समझाया सब ने, पर सवार थी बेईमानी,
नहीं सुनी निर्णायक की भी बात नहीं उसकी भी मानी।
बोला—"जब तक न्याय न होगा, नहीं हटेंगे! नहीं हटेंगे!
खेल न होगा आगे, हम सब यहीं डटेंगे, यहीं डठेंगे।"

निर्णायक हो गया विवश था, देख-देखकर यह घोटाला,
'विजयी है अभिमन्यु-वीर-दल' उसने यह निर्णय दे डाला।
बस फिर क्या था, उछल पड़े सब, लगे बोलने हिप-हिप हुर्रे,
हीरो-दल के आज बिखेरे हमने हुत्तू-तू में धुर्रे।

चन्ना खिसक गया चुपके से, आगे जाकर इनको टोका,
खुला निमंत्रण दिया युद्ध का, डट कर इनके पथ को रोका।
और चुनौती खुले युद्ध की विजयी दल ने भी स्वीकारी,
एक-दूसरे से भिड़-भिड़ कर होने लगी लड़ाई भारी।

वीर भगत ने झपट दबोचा, नीचे पड़ा हुआ था चन्ना,
दचक रहा था उसको चड्ढा, घूंसे मार रहा था खन्ना।
बन्ता भी बलवंता निकला, शर्मा ने पैंतरे दिखाये,
कूद रहा था सूद गरज कर, सोंधी ने भी हाथ जमाये।

कई साथियों को चन्ना के, डट कर रहा सम्हाले बेला,
चन्दू, जस्से, भल्ला ने भी खेल युद्ध का खुल कर खेला।
ऐसे हाथ दिखाये सब ने, दुम दाबी हीरो-दल भागा,
खोया था मैदान वहाँ पर और यहाँ भी उसको त्यागा।

यह अभिमन्यु-वीर-दल डट कर खेल युद्ध दोनों में जीता,
खा-पीकर थी खुशी मनाई, बहुत समय यों उनका बीता।
दिन ढलने के पहले ही सब, मेले से अपने घर आये,
दल नायक के घर जा सब ने बढ़-चढ़ अपने हाल सुनाये।

भगतसिंह की माँ ने सब को,
शाबासी दी पीठ थप-थपा
मना रहे थे खुशी यहाँ भी
कर सब ही-ही-हू-हू-हा-हा।

सर्ग ग्यारह

जंगल का शेर शहर में

"पापा ! यहाँ गाँव की मैंने पढ़ली सभी पढ़ाई,
जितने दर्जे थे, उन सब पर पूरी हुई चढ़ाई।
कहाँ पढ़ायेंगे अब मुझको, क्या यह कभी विचारा ?
नये ज्ञान की कहाँ खोजनी होगी हमको धारा ?

"बेटे ! अन्त नहीं विद्या का वह अथाह सागर है,
मानव-जीवन उसको भरने छोटी-सी गागर है।
पर इस छोटी गागर की भी बहुत बड़ी क्षमता है,
अपनी लघुता से, यह सागर से करती समता है।

जितना ज्ञान भरो, इस घट में सभी समा जाता है,
भरते रहने से इसमें भरने का बल आता है।
तुम भी पढ़ो, तुम्हारा पढ़ने को जितना मन चाहे,
ज्ञान भरो जीवन के घट में, जितना जीवन चाहे।

सोच रहा, लाहौर चलें हम, वहाँ कई विद्यालय,
किन्तु समस्या एक सामने, हो न सका है निश्चय।
चाह रहा, तुम नये विचारों से परिचित हो जाओ,
दयानन्द वैदिक विद्यालय में प्रवेश तुम पाओ।

पर विचार है कुछ लोगों का, धर्म-कर्म अपनाओ,
वहाँ खालसा विद्यालय में ही तुम नाम लिखाओ।
मैं निश्चय कर सका नहीं कुछ, यही एक उलझन है,
तुम बतलाओ, किस विद्यालय में पढ़ने का मन है ?"

"पापा ! धर्म-कर्म तो माँ से पढ़ सकता हूँ घर में,
है अक्षय भंडार भरा इनका उसके अंतर में।
पर अच्छा होगा, यदि कोई नया ज्ञान मैं पाऊँ,
क्यों न आपकी ही विचार-धारा को मैं अपनाऊँ ?

नये विचारों का महत्व जो, आप उसे समझा दें,
दयानन्द विद्यालय में ही भरती मुझे करा दें।
मेरे बाल-सखा छूटेंगे, यह मुझको उलझन है,
अपना प्यारा गाँव छोड़ते भी यह चिन्तित मन है।"

"बेटे मैं प्रसन्न हूँ सुन कर उच्च विचार तुम्हारे,
सच है गाँव सखा-संगी छूटेंगे सभी तुम्हारे।
लक्ष्य प्राप्ति के लिये किन्तु है त्याग बहुत आवश्यक,
ममता और मोह के बन्धन सदा प्रगति में बाधक।

क्षेत्र तुम्हारा नया बनेगा, नये मित्र पाओगे,
धीरे-धीरे उस जीवन में भी तुम रम जाओगे।
बन्धन के घेरों के बाहर ही जीवन की गति है,
बन्धन काटे बिना कहाँ संभव अपनी उन्नति है।"

बन्धन की ही बात भगत भी मन में सोच रहा था,
गूँज रहा था वाक्य, पिता ने जो यह अभी कहा था—
"गन्धन के घेरों के बाहर ही जीवन की गति है,
बन्धन काटे बिना कहाँ संभव अपनी उन्नति है?"

गाँव और मित्रों का बन्धन छोड़ शहर में आया,
जन-कोलाहल के उस सागर में अपने को पाया।
तोड़ चुका था कुछ बन्धन, कुछ बन्धन जोड़ चुका था,
एक नई धारा में जीवन-तरणी छोड़ चुका था।

किन्तु बात वह भूल नहीं पाया माँ के बन्धन की,
यहाँ नये जीवन में उसको दिशा मिली जीवन की।
उर के भावों के अंकुर अब थे विकास के पथ पर,
नई वायु में मिले ऊर्जा के थे अगणित अवसर।

नया पाठ्य-क्रम, नये विषय, थे मिले नये अध्यापक,
वातावरण नया, जीवन का दृष्टि-कोण था व्यापक।
घुल-मिल गया नयेपन में भी, यहाँ गाँव का वासी,
मित्र-मंडली यहाँ बनाली उसने अच्छी खासी।

था प्रसन्न गुरु-वर्ग सदा ही उसके शील-विनय से,
निरखा करते थे उसकी गति, सभी बड़े विस्मय से।
बिना तर्क के ज्ञान सीखना उसे नहीं रुचिकर था,
अनुभव से भी उसे परख लेने का क्रम दृढ़तर था।

राजनीति की चर्चा में भी उसके मन की गति थी,
जो सुन लेता, नहीं भूलता, ऐसी उसकी मति थी।
मित्र-मंडली का, बहुधा नेतृत्व किया करता था,
छोटा था, पर बड़े-बड़े उपदेश दिया करता था।

शान्ति या क्रान्ति ?

राजनीति पर बहस छिड़ गई उस दिन विद्यालय में,
वैचारिक संघर्ष छिड़ा था, सब के शान्त हृदय में।
था विवाद का विषय—"मुक्ति का पंथ कौन सुन्दर है—
उग्र-नीति या शान्ति-साधना भारत को हितकर है ?"

कहा किसी ने, शान्ति-साधना का पथ चिर श्रेयस्कर,
भारत को स्वाधीन कराने, यह साधन ही दृढ़-तर।
हिंसा से, हिंसक के मन को नहीं बदलना संभव,
करके घृणा, घृणित पथ पर ही सब का चलना संभव।

जिस दुश्मन की शक्ति असीमित, अपरिमेय हों साधन,
उसे जीतने मंत्र एक ही, मात्र सत्य आराधन।
करते रहें आत्म-बलिदानी अपने प्राण-विसर्जन,
मानव उर तो क्या, पत्थर में भी संभव परिवर्तन।

अतः एक पर्वत से टकराने में नहीं कुशलता,
लक्ष्य प्राप्त कर लेता वह, जो सोच-समझ कर चलता।
आज हमें जब गाँधी जी से मिले सत्य के साधक,
विश्व-भावना द्वारा, मानव समता के आराधक।

अस्त्र अहिंसा का ही उनका, हमें मुक्ति दे सकता,
भारत की तरणी, तूफानी सागर में खे सकता।
यदि अभीष्ट हो मुक्ति, शान्ति पथ ही हम सब अपनायें,
सत्याग्रह द्वारा हम अपना विजय केतु फहरायें।"

नरम नीति के प्रबल-पोषकों को विचार ये भाये
किन्तु तर्क ये, उग्र-नीति वालों को नहीं सुहाये।
कहा उन्होंने, "शठ को केवल उचित नीति है शठता,
दया-याचना निष्फल होती, जहाँ वरेण्य विकटता।

दूध नाग को पिला-पिला, क्या वृत्ति बदल सकते हम,
सम्भव जीवन की रक्षा, यदि उसे कुचल सकते हम।
कितने दिन भेड़िये अहिंसक बन कर यहाँ जियेंगे ?
खून लगा जिनकी दाढ़ों से, क्या वे दूध पियेंगे ?

जो ठुकराये प्यार, मार ही उसको आवश्यक है,
लोक-मान्य यह नीति, घोषणा करता आज 'तिलक' है।
रोटी के टुकड़े मिल सकते, यदि हम हाथ पसारें,
राज्य न भिक्षा में मिलते, अर्पित करतीं तलवारें।

राज्य माँग कर नहीं, जीत कर ही वे पाये जाते,
राज्य भोगते वे नर, जो हैं अपना खून बहाते।
छीने जाते राज्य, न बाजारों में वे बिकते हैं,
नहीं राष्ट्र में शक्ति अगर, तो राज्य नहीं टिकते हैं।

शान्ति न केवल सत्य, युद्ध भी सत्य बड़ा भारी है,
यह वह सत्य, मानता जिसको हर सत्ताधारी है।
युद्ध सत्य वह, जिसे वीरता से ही जाना जाता,
नहीं युद्ध को कभी भीरुता से पहचाना जाता।

उपदेशों से नहीं शत्रु का शमन हुआ करता है,
तलवारों से अन्यायों का दमन हुआ करता है।
जो झुकता है कायरता से, कटता वह मस्तक है,
वक्ष फुला कर चलने वालों को जीने का हक है।

पार दासता की करनी है यदि हम को वैतरणी,
तो तरणी है युद्ध, हमारे लिये एक ही करणी।
है आश्चर्य, आज के मोहन[1] शान्ति-नीति अपनाते,
कुरु-क्षेत्र में सेनाओं को जब वे[2] रहे भिड़ाते।

गीता का उपदेश यही है, मारो या कि मरो तुम,
युद्ध सिंधु के तीर वैठकर आहें नहीं भरो तुम।
विना बहाये खून, मान का शोध नहीं होता है,
बिना बहाये खून, विजय का बोध नहीं होता है।

अतः दासता की हथ-कड़ियाँ यदि अभीष्ट तड़काना,
यदि अभीष्ट खोई आजादी फिर से हम को लाना—
एक राह है, उसे छीन कर—लड़ कर ही ला सकते,
हाथ जोड़ कर, पैरों पड़कर राज्य नहीं पा सकते।

और अगर पा भी जायें, तो फिर खोने का डर है,
इसी लिये उसको लड़कर ही लेना श्रेयस्कर है।
जिसे खून से अर्जित करते, उस पर ममता होती,
खून माँगता है रक्षा को, आजादी का मोती।"

ऐसे अगणित तर्क कर रहे थे प्रस्तुत दोनों दल,
सहसा वहाँ युद्ध जैसी ही मची भयंकर हल चल।
झगड़े का क्या कारण था, यह नहीं समझ में आया,
भगतसिंह पर एक छात्र ने, अपना हाथ चलाया।

---

१. 'मोहन' = मोहन दास कर्मचन्द गाँधी।
२. 'वे' = भगवान श्रीकृष्ण, जो महाभारत युद्ध के सूत्र-धार थे।

वह जंगल का शेर भला यह कब सहने वाला था,
खाकर मार किसी की, वह कब चुप रहने वाला था।
एक हाथ के बदले उसने तगड़े कई जमाये,
हमला करने वाले के थे होश ठिकाने आये।

मिला न मन को चैन, झपट कर उसकी गर्दन पकड़ी,
अपने प्रबल शिकंजे में थी कस कर उसको जकड़ी।
उसकी दुर्गति देख, दौड़ कर कुछ अध्यापक आये,
दूर भगत को किया, क्रोध से उस पर धौल जमाये।

खड़ा प्रश्न-वाचक जैसा था, एक ओर वह पिट कर,
पूछ रहा हो जैसे, "चलना श्रेयस्कर किस पथ पर!
क्यों न सदा ही शान्ति-नीति है यहाँ सफलता पाती?
कौन विवशता, दंड-व्यवस्था आवश्यक हो जाती?"

सर्ग बारह

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी'...

जीवन की आशा ही कैसी, जब रक्षक भक्षक बन जाये,
फसल कहाँ से लहराये, जब बागड़ स्वयं खेत को खाये।
अत्याचारी बने वही, जिस पर हो बाग-डोर शासन की,
जनता करे कल्पना कैसे, अपने लिये सुखी जीवन की ?

शासन क्या है ? यह शासक का जन्म-सिद्ध अधिकार नहीं है,
शासन, शासक का मन-मानी करने का अधिकार नहीं है।
शासन केवल दमन नहीं है, जन-शुभ-चिन्तन ही शासन है,
न्याय-व्यवस्था के रक्षण का, शासन एक उचित साधन है।

आज धड़ाका हुआ यहाँ यदि, कल भीषण बम गिरा वहाँपर,
सर-सर लगीं फैलने लपटें शासन रोके किसे कहाँ पर ?
पाँव लड़-खड़ाये शासन के विस्फोटों से सर चकराया,
लगा, भवन साम्राज्यवाद का जैसे अब धरती पर आया।

लगा कि जैसे स्वप्न-कँगूरे टूट-टूट कर अब गिरते हैं,
लगा कि जैसे कुछ दिन में ही, अब भारत के दिन फिरते हैं।
गिरते-गिरते किन्तु विदेशी सम्हल गया कुछ धक्के खाकर।
सम्हल गया, वह दमन-चक्र को भीषणता से यहाँ घुमा कर।

जिसने भी सर तनिक उठाया, उस पर जैसे पर्वत टूटा,
उस पर दमन-तोप से जैसे, लक्ष्य साध कर गोला छूटा।
उठी बाढ़ तोपों गोलों की, पड़ी गोलियों की बौछारें,
प्यास बुझाई संगीनों ने, मनुज-रक्त की उड़ी फुहारें।

दमन-चक्र जब चलता है तो वह फिर बस चलता ही जाता है,
पीस डालता है वह सब को, जो उसके चक्कर में आता।
और चलाने वाला, अपनी आँखें बन्द किये रहता है,
नशा चढ़ा होता विनाश का, वह जन-रक्त पिये रहता है।

सभी मौत के घाट उतरते, बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी,
इनमें भेद नहीं करता है, कोई भी हो अत्याचारी।
यही हाल था, जब भारत के सिंह-सपूत हुए मतवाले,
भूने गए गोलियों से वे, संगीनों पर गये उछाले।

इधर एक बम फटा अगर, तो उधर गये वे दस लटकाए,
भूख लिये युग-युग की सुरसा, टूट पड़ी इन पर मुँह बाए।
हाथों-पैरों में जंजीरें, मन पर ताले गये लगाये,
गोरे तन वालों ने अगणित थे काले कानून बनाये।

किन्तु व्यवस्था और न्याय का, शासन ही जब गला दबाये,
शान्ति-सुरक्षा को पैरों से कुचल-कुचल जब वह इठलाये।
तो वह शासन, शासन कैसा ? एक लुटेरों का ही दल है,
वहाँ नीति का नाम नहीं है, शासन-नीति मात्र छल-बल है।

शासित करे सहन क्यों उसको ? क्यों न विप्लवी ज्वाला भड़के ?
जन-मानस विक्षुब्ध न हो क्यों ? क्यों न रोष की विद्युत तड़के ?
क्यों न भूख जागे जनता की, ऐसे शासन को खा जाने ?
जन-आक्रोश प्रलय-घन बन कर क्यों न उठे लावा बरसाने ?

शासन जन-हिताय होता है, जनता उसे बदल सकती है,
यदि शासक अत्याचारी हो, जनता उसे कुचल सकती है।
यही अर्थ शासन का, भारत की जनता है रही लगाती,
अनय और अन्यायी, दोनों को वह रही सदा ही खाती।

फिर अन्याय विदेशी के वह कैसे सह लेती चुप होकर ?
कैसे संभव था चुप रहना अपनी आजादी को खोकर ?
भारत ने तेवर बदले हैं, जब-जब ऐसे अवसर आये,
दुःशासन को चला निगलने प्राणों में तूफान उठाये।

राष्ट्रीय अपमान हुआ जब, उसके प्राण सदा तड़पे हैं,
अपने महा-उदर में उसने अन्यायी शासक हड़पे हैं।
आज प्राण मचले थे उसके अत्याचारों को खा जाने,
आज प्राण मचले थे उसके, धरती की आजादी पाने।

जहाँ शान्ति ने सिद्धि न पाई, मचली वहाँ क्रान्ति की धारा,
मानवता ने आँख बदल कर, दानवता को है ललकारा।
बाँध-बाँध कर कफन सरों से, उठे क्रान्ति के हैं दीवाने,
गोले नहीं, प्राण ही जैसे, चले शत्रु पर वे अर्राने।

आज धड़ाका हुआ यहाँ यदि, कल भीषण बम गिरा वहाँपर,
सर-सर लगीं फैलने लपटें शासन रोके किसे कहाँ पर ?
पाँव लड़-खड़ाये शासन के विस्फोटों से सर चकराया,
लगा, भवन साम्राज्यवाद का जैसे अब धरती पर आया।

लगा कि जैसे स्वप्न-कँगूरे टूट-टूट कर अब गिरते हैं,
लगा कि जैसे कुछ दिन में ही, अब भारत के दिन फिरते हैं।
गिरते-गिरते किन्तु विदेशी सम्हल गया कुछ धक्के खाकर।
सम्हल गया, वह दमन-चक्र को भीषणता से यहाँ घुमा कर।

जिसने भी सर तनिक उठाया, उस पर जैसे पर्वत टूटा,
उस पर दमन-तोप से जैसे, लक्ष्य साध कर गोला छूटा।
उठी बाढ़ तोपों गोलों की, पड़ी गोलियों की बौछारें,
प्यास बुझाई संगीनों ने, मनुज-रक्त की उड़ी फुहारें।

दमन-चक्र जब चलता है तो वह फिर बस चलता ही जाता है,
पीस डालता है वह सब को, जो उसके चक्कर में आता।
और चलाने वाला, अपनी आँखें बन्द किये रहता है,
नशा चढ़ा होता विनाश का, वह जन-रक्त पिये रहता है।

सभी मौत के घाट उतरते, बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी,
इनमें भेद नहीं करता है, कोई भी हो अत्याचारी।
यही हाल था, जब भारत के सिंह-सपूत हुए मतवाले,
भूने गए गोलियों से वे, संगीनों पर गये उछाले।

इधर एक बम फटा अगर, तो उधर गये वे दस लटकाए,
भूख लिये युग-युग की सुरसा, टूट पड़ी इन पर मुँह बाए।
हाथों-पैरों में जंजीरें, मन पर ताले गये लगाये,
गोरे तन वालों ने अगणित थे काले कानून बनाये।

गला न्याय का घोंट रहे थे, न्याय-विधायक खुल्लम-खुल्ला,
एक अस्त्र था—दमन सभी का, पण्डित हो ग्रंथी या मुल्ला।
मानवता का ढोल पीट कर, शासन होता था पशु-बल से,
था मारीच बना कंचन-मृग, लुभा रहा था सबको छल से।

शोषण बना लक्ष्य शासन का, वह जन-रक्त निचोड़ रहा था,
वह अपने अत्याचारी शर, एक-एक कर छोड़ रहा था।
अधिकारों के नाम, भीख के टुकड़े केवल दिखा रहा था,
और विश्व के इतिहासों में, अपना गौरव लिखा रहा था

नाम न्याय का लेकर बन्दर, सबकी रोटी हड़प रहा था,
और भूख से व्याकुल होकर देश हमारा तड़प रहा था।
सोने की चिड़िया के सारे पंख बधिक वह नोच रहा था,
अपने पैंने नाखूनों से उसका मांस खरोंच रहा था।

नाम सुधारों का ले-लेकर
शासन सबको जकड़ रहा था,
सत्य-अहिंसा हड़प-हड़प कर
हत्यारा क्या अकड़ रहा था।

रौलट बिल !
हाय ! हाय !

लो सुधार योजना बन रही, मिस्टर चेंम्सफोर्ड आये हैं,
झोली में वरदान कई ये हमको देने भर लाये हैं।
मिलिए ! ये रौलट साहब हैं, दल-बल लेकर आ धमके हैं,
जाँच रहे ये, प्रबल धड़ाके यहाँ हो रहे क्यों बम के हैं।

यहाँ-वहाँ ये क्रान्ति सूंघते कान लगा आहट लेते हैं,
घर का भेद बता दो इनको, पुरस्कार अच्छा देते हैं।
जो भी तथ्य मिले—हथियाए, यों इनने भर लिया पिटारा,
शासन के सामने खोल कर दिखा दिया सारा का सारा।

खड़े हो गये कान सभी के चौंक गई सरकार फिरंगी,
दो जिह्वा वाले ने अपनी नीति घुमाई यहाँ दुरंगी।
ये चिन्तित हैं जन-रक्षा हित, लो अब यह रौलट बिल आया,
कैसी सुन्दर शब्द-योजना, क्या ही अच्छा जाल बिछाया।

जन-रक्षा का मन्त्र बन गया खुले दमन का प्रबल शिकंजा,
और अधिक दृढ़ता से फैला, लो शासन का खूनी पंजा।
जिस पर हुई तनिक भी शंका, जेलों का मेहमान बनाया,
शासन कृपावन्त था उस पर, पाई संगीनों की छाया।

क्या कारण है ? कारण पूछे—जनता को अधिकार नहीं है,
जनता की सच्ची शुभ-चिन्तक क्या होती सरकार नहीं है ?
जिनको शासन नीति न आती, फिर वे क्यों आवाज उठायें ?
स्वामि-भक्ति का परिचय देकर, प्राप्त करें वे कुछ सुविधायें।

यह रौलट विचार-धारा थी, खुली व्यवस्था दंड-दमन की,
डंडे का शासन करता था सबसे आशा यहाँ अमन की।
दमन प्रभावी हो सकता है, पीड़ित और दलित के तन पर,
किन्तु न शासन कर सकता है, वह उसके विद्रोही मन पर।

घड़ा पाप का भरते-भरते, भर कर स्वतः फूट जाता है,
नहीं जोड़ने से जुड़ता वह, यदि विश्वास टूट जाता है।
यदि विद्रोह जाग बैठे तो, उठ कर छोटी-सी चिनगारी,
लपटों में परिवर्तित हो कर खा सकती है दुनिया सारी।

दलित भावनाएँ ही उठ कर, क्रान्ति-ज्वाल बनकर लहरातीं,
विद्रोही आँधी के बल से, लहर-लहर कर वे हहरातीं।
क्रुद्ध क्रान्ति की भूखी लपटें, अन्यायी का भक्षण करतीं,
शोषित, दलित और पीड़ित के अधिकारों का रक्षण करतीं।

यह जो रौलट बिल आया था, जन-स्वतंत्रता पर प्रहार था,
हम इसको कानून कहें क्यों, यह जेलों का खुला द्वार था।
लोगों का सम्मान सुरक्षित इससे रहा नहीं किंचित था,
भारत का जन-जीवन, अगणित आशंकाओं से चिन्तित था।

यह चिन्ता—यह आशंका ही, उग्र-भावना बनी हृदय की,
लगता था जैसे कि सूचना आई हो आसन्न प्रलय की।
कोने-कोने से विरोध की उठने लगीं प्रबल हुंकारें,
क्षुब्ध तरंगित जन-सागर से उठी क्रुद्ध उद्धत फुंकारे।

जन-मन क्रान्ति-भावना भड़की, छिड़ा एक भीषण आन्दोलन,
रोके रुका न रोष हृदय में, प्रकट हुआ बन विकट प्रदर्शन।
क्या गाँवों में, क्या शहरों में, क्या घर-बाहर बाजारों में,
खोल-खोल कर रोष हृदय का बाहर आता था नारों में।

'क्षय हो इस नौकर-शाही का, इस साम्राज्यवाद का क्षय हो !
जय हो, जय भारत-माता की ! जागरूक जनता की जय हो !
यह दिल्ली है, देखो कैसे भड़क उठे विप्लव के शोले—
धधक उठीं भट्टियाँ हृदय की, भाव बन गये भीषण गोले ।

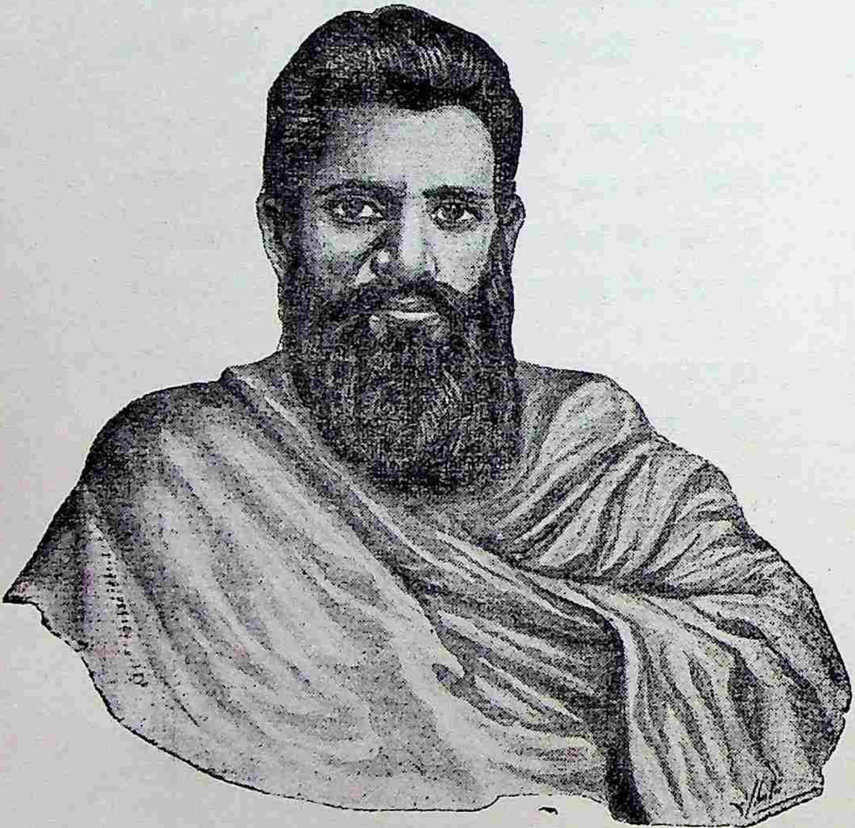
स्वामी श्रद्धानन्द कर रहे जन-आन्दोलन का संचालन,
सच्ची सिद्धि प्राप्त करते थे, राष्ट्र-धर्म का करके पालन ।
जन-समूह उन्मत्त हो रहा, खून सभी का खौल रहा था,
बलिदानों की तुला उठाये, राष्ट्र शक्ति निज तौल रहा था ।

गरज उठा, लो, गोरा अफसर, "रुको ! वरन् गोली दागूँगा",
गरजे स्वामी, "बड़े हर्ष से प्राण देश-हित मैं त्यागूँगा :
लो, यह वक्ष खुला है मेरा, तुम इस पर गोलियाँ चलाओ !
हम तैयार खड़े बलि होने, प्राणों की होलियाँ जलाओ !

एक बात का ध्यान रहे पर, ये बलिदान न रुक पायेंगे,
मर जायेंगे, मिट जायेंगे, किन्तु नहीं हम झुक पायेंगे ।"
यह दहाड़ जब सुनी सिंह कीं, सहम गया वह अत्याचारी,
अपने नेता का बल पाकर, बल खाकर जनता हुंकारी ।

दिल्ली ही क्या, नगर-नगर में आयोजित थे कई प्रदर्शन,
थे असह्य हो उठे सभी को, अपनी मातृ-भूमि के बन्धन ।
यह पंजाब, यहाँ तो जैसे ज्वाला-गिरि ही भड़क उठा है,
लाहौरी गर्जना विकट सुन, शासन का दिल धड़क उठा है ।

यह कैसा विशाल आयोजन, ये दल के दल उमड़ रहे हैं,
लगता जैसे आज प्रलय-घन, ये विनाश हित घुमड़ रहे हैं ।
नर-मुण्डों का छोर न मिलता, हलचल की है थाह न मिलती,
गलियों, सड़कों, बाजारों में, चलने को है राह न मिलती ।



अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

दिल्ली में ३० मार्च सन् १९१९ ई० को रौलट बिल के विरोध में स्वामी श्रद्धानन्द ने जन-आन्दोलन का नेतृत्व किया था। गोरे अफसर की पिस्तौल की धमकी के उत्तर में उन्होंने सिंह-गर्जना की—

"ले तेरी पिस्तौल की गोली के लिए मेरी छाती खुली है। यदि हिम्मत हो तो मार!।"

और सचमुच ही उस अफसर की हिम्मत स्वयं ही ठण्डी पड़ गई।

उठतीं हैं उत्ताल-तरंगें, रह-रह कर भीषरण जन-स्वर की,
बरस रही है बाहर आकर, अग्नि-प्रज्ज्वलित हर अंतर की।
मीलों तक काले झण्डों को उठी बाढ़ जो है तूफानी,
लगता, काला सागर आया, करने गोरों की अगवानी।

हाय ! हाय ! कर, रौलट बिल का सभी लोग कर रहे सियापा,
वह काला कानून कलंकित, यह काले झण्डों का छापा।
गूँज रही है गिरा गगन में, गरज रहे हैं सिंह हठीले
सुन-सुन कर साम्राज्यवाद के, पड़ते सभी हौसले ढीले।

इस चल-समारोह में हल-चल, बाजारों में सूनापन है,
है पूरी हड़ताल नगर में, क्रुद्ध नगर का जन-जीवन है।
यह अंतर-प्रेरणा सभी की, नहीं प्रदर्शन मात्र दिखावा,
शासन का सिंहासन हिलता, जन-विरोध का है यह धावा।

नहीं एक, दो, तीन, सात दिन स्वतः बन्द हैं सब दूकानें,
क्या अद्‌भुत हड़ताल हुई यह, क्यों न लोग सब इसको मानें ?
नहीं दुकानें खुलतीं किंचित, सेना और पुलिस झख मारे,
जनता अड़ी हुई अपनी पर, कर-करके प्रयत्न वे हारे।

घूम रहे गलियों-सड़कों पर कई देश के भी दीवाने,
चिन्ता नहीं गोलियों की है, घूम रहे वे सीना ताने।
यौवन तो यौवन ही है पर, शान नहीं कुछ कम बचपन की,
बच्चों के दल भी सक्रिय हैं, सुधि न उन्हें अपने तन-मन की।

काले झण्डे ऊँचे करके, घूम रहे हैं उनके भी दल,
लगा रहे हैं वे भी नारे, उन में भी है भारी हलचल।
देखो, क्या ही अजब शान से, यह बच्चों की सेना आई,
रौलट बिल की हाय ! हाय ! की इसने भी आवाज लगाई।

सबसे आगे-आगे यह जो तेजवंत बालक चलता है,
अभी उमर ही क्या है इसकी, पर यह शासन को खलता है।
भगतसिंह यह यहाँ कर रहा बाल-वीर-दल का संचालन,
इसके दल की गति-विधियों से चौंक-चौंक उठता है शासन।

जब से है हड़ताल नगर में, लगा रहा इसका चक्कर दल,
प्रेरित करता है जन-मन को, लेता है शासन से टक्कर।
बड़े दलों को यह छोटा दल, कई सूचनाएँ देता है,
संचालन की अद्भुत क्षमता रखता यह इसका नेता है।

गलियों-सड़कों से जाने कब, कैसे, कहाँ खिसक जाता है,
डाल जान को भी जोखिम में, यह रहस्य कुछ ले आता है।
यह इतना प्रसन्न है जैसे बहुत बड़ा त्यौहार मनाता,
अपनी वय से अधिक शक्ति के कई काम करके दिखलाता।

लाहौरी जनता ने परिचय इसकी क्षमताओं का पाया,
बाल-सूर्य ने जैसे अपना पहला-पहला तेज दिखाया।
जन-आन्दोलन की ये लपटें, लगीं सभी नगरों को छूने,
दमक-चक्र घूमा तेजी से, भड़के जन-मन दूने-दूने।

पीछे रहता अमृतसर क्यों यह बलिदान-निमंत्रण पाकर,
क्रोधित हो गरजे नर-नाहर, रौलट बिल का चाबुक खा कर।
तड़प उठे थे बच्चों के दिल, तड़पे यौवन के दीवाने,
युग के भीष्म लगे आँखों से प्रतिशोधी ज्वाला बरसाने।

बहिनों ने निज तेवर बदले, लपटें बन बैठी ललनाएँ,
विद्युत जैसी तड़प उठीं सब सिंह-सपूतों की माताएँ।
मानव तन तो जलते ही थे, हुईं सभी विप्लवी हवाएँ,
यही भावना थी, शासन का दर्प धूल में आज मिलाएँ।

अत्याचारी को खा जायें, अत्याचारों को दफना दें,
कितनी आग भरी है हम में, हम इस शासन को दिखला दें।
उठने लगीं इन्हीं भावों की, उर-उर से प्रज्ज्वलित मशालें,
आज दिखा सकते जो करके, क्यों हम उसको कल पर टालें ?

लो, अमृतसर आज गरल को आत्मसात् करने उमड़ा है,
यह आक्रोश अहिंसक, शासन को निपात करने उमड़ा है।
जलयाँ वाला नाग बन गया जनता का लहराता सागर,
ये पंजाबी सिंह करेंगे आज यहाँ निज रक्त उजागर।

गरज उठा नरसिंह एक, "यह रौलट बिल कलुषित कलंक है,
है कुत्सित अभिशाप एक यह, और घृणित यह पाप-पंक है।
जनता की स्वतंत्रता पर है, यह घातक प्रहार पशु-बल का,
भारत ने कंचन के घट में पाया है उपहार गरल का।

असम्मान की दूषित छाया है यह भारत के गौरव पर,
आज एक होकर हम सब को देना है इसका दृढ़ उत्तर।
जिसने बारूदी प्राणों में डाली विप्लव की चिनगारी,
भिक्षा-पात्र बढ़ाया जिसने, छिपा बगल में तेज कटारी।

जिसने कफन उढ़ाया दफना कर मानव के विश्वासों को,
जला रहा जो फाड़-फाड़ कर जग के उज्ज्वल इतिहासों को—
उसको आज बतादें हम भी, हम न मात्र मिट्टी के पुतले,
जो अपना है, उसको लेने अब मतवालों के दल निकले।

बरसे आग, उठें ज्वालाएँ, हमें नहीं उनका कुछ डर है,
कोटि-कोटि कण्ठों से मिल कर, उठता आज एक यह स्वर है—
"क्षय हो इस साम्राज्यवाद का, इस नौकर-शाही का क्षय हो !
भारत-माता की चिर जय हो ! जागरूक जनता की जय हो !"

गूँज रहा वह क्रान्ति-सदन था इसी भाँति जय-जयकारों से,
गूँज रहा था वह कर्मस्थल, नर-वीरों की हुंकारों से।
पर कैसे सम्भव था, शासन के न कान उसको सुन पाते?
कैसे सम्भव था, न दमन का दानव अपना चक्र चलाते?

क्रुद्ध प्रान्तपति ओडायर ने, जनरल डायर[1] को बुलवाया,
मानवता के हत्यारे ने जल्लादी आदेश सुनाया।
मृत्यु-दूत डायर आ धमका, ले गोरी-काली सेनाएँ,
लगे लपलपाने सैनिक-दल अपनी अग्नि-मुखी जिह्वाएँ।

था केवल संकीर्ण एक पथ, जो प्रवेश भी था—निर्गम था,
इसी द्वार से ही प्रवेश कर, मृत्यु-दूत पहुँचा निर्मम था।
द्वार रोक सैनिक दल सज्जित हुए एक ऊँचे टीले पर,
निर्दोषों का खून बहाने, पाया था अलभ्य यह अवसर।
गरज रहा था हंसराज तब, "क्षय हो इस साम्राज्य-वाद का!
क्षय हो इस बहरे शासन का, क्षय हो इस अन्धे प्रमाद का।"
तभी सनन्-सन् चलीं गोलियाँ इन दृढ़ नारों के उत्तर में,
बन्दूकों ने ताल मिलाया, जनता के आक्रोशी स्वर में।
धाँय! धाँय! बोलीं पिस्तौलें, हाय! हाय! मानव चिल्लाये,
गोली की अनवरत बाढ़ ने वहाँ शवों के ढेर लगाये।
इधर शस्त्र-धारी सवार थे, उधर सभी वे लोग निहत्थे,
लगे छातियाँ छलनी करने, लगे फोड़ने उनके मत्थे।

ये नृशंस, बर्बर अरि-सैनिक खुले आम कर खून रहे थे,
अंगारे बरसा, लोगों को होले जैसे भून रहे थे।
भेद नहीं था नर-नारी का, भेद न था बूढ़े जवान का,
गोली खा-खा मानव गिरते, कटता जैसे खेत धान का।

---

१. १३ अप्रेल १९१९ ई० को जनरल डायर के नेतृत्व में जलयानवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ।

मौत भूख निज मिटा रही थी, वह मानवता को खाती थी,
मनुज रक्त पीकर दानवता फुला रही अपनी छाती थी।
लो यह गोली लगी, वीर वह गिर धड़ाम धरती पर आया,
और एक के बाद दूसरे ने भी उस पथ को अपनाया।

हुई दना-दन्, चलीं गोलियाँ, जैसे वर्षा अर्राई हो,
जीवन के घर दुखद मौत की जैसे विकट बाढ़ आई हो।
शोणित के अगणित फव्वारे मानव-तन से फूट रहे थे,
प्यास बुझ रही दानव-दल की, वे अद्भुत सुख लूट रहे थे।

दीवाने दम तोड़ रहे थे, भू पर गिर छटा-पटा रहे थे,
धरती की मर्यादा रखने अपनी हस्ती मिटा रहे थे।
हाय ! हाय ! हो रही प्रति-ध्वनित, चीत्कार के स्वर उठते थे,
लाशों के अंबार लग रहे, लोहू के निर्झर उठते थे।

माताओं ने सुत खोए थे, बहिनों ने खोए थे भाई,
माताओं-बहनों को खाकर, दानवता थी नहीं अघाई।
जब गोलियाँ चुक गईं सब, हत्वारों ने संगीन सम्हाले,
माँ की छातीं से जो चिपटे, वे शिशु उन पर गये उछाले।

घोड़ों की टापों से कुचले गये पिता, बहिनें, मातायें,
खून चढ़ा था उन आँखों में नाच रहीं थीं नर-हत्यायें।
खुल कर नृत्य हुआ हिंसा का, और अहिंसा जी भर रोई,
मानवता पर लगे घाव को, कैसे भूल सकेगा कोई ?

सौ-पचास की गिनती ही क्या, ऐसे गये कई सौ मारे,
फिर भी चैन न मिला दनुज को, तृप्त न हो पाये हत्यारे।
शव सहस्रशः अगणित घायल नहीं वहाँ से गये उठाये,
वहाँ रात भर पहरा देकर, उनके प्राण गये तड़पाये।

जो घायल थे, पानी ! पानी ! चिल्ला कर दम तोड़ रहे थे,
वे पानी को तरस-तरस कर विकल प्राण निज छोड़ रहे थे।
किन्तु रक्त के इन प्यासों ने, दिया न उन्हें बूंद भर पानी,
ठण्डे हुए बुढ़ापे-बचपन, न्यौछावर हो गई जवानी।

जलयाँ-वाला-बाग-काण्ड यह
अमिट घाव बन गया हृदय का,
सदियों तक भर नहीं सकेगा
कोई मरहम इसे समय का।

खूनी मिट्टी का पुजारी

ध्यान-मग्न यह खड़ा हुआ जो, कौन व्रती अर्चन में रत है ?
वय से कोमल बालक दिखता, नयन निमीलित नत-मस्तक है।
जुड़े हुए कोमल कर-पल्लव, है भावों में डूबा-डूबा,
कौन साधना इसके मन में ? यह कैसा है ढंग अजूबा ?

क्यों तम-तमा गया मुख-मंडल ? सहसा यह परिवर्तन कैसा ?
भक्ति-भावना हुई तिरोहित, लक्षित रोष-प्रदर्शन कैसा ?
फड़क उठे क्यों मौन अधर-पुट ? क्यों तन गईं भृकुटि-रेखायें ?
क्यों दाँतों से होठ काटता ? क्यों ये खिचने लगी शिराएँ ?

कर-पल्लव खुल गए, मुट्ठियाँ बाँध-बाँध क्यों पटक रहा है ?
क्यों मन के कोमल भावों को निर्ममता से झटक रहा है ?
जिसके हाथ जोड़ता था यह, क्यों अब उसको घूर रहा है ?
संकल्पों से, कौन, विकल्पों को कर चकनाचूर रहा है ?

इष्ट-देव है कौन, कर रहा जो इन भावों का परिचालन ?
कौन शक्ति वह, करता है यह जिसके आदेशों का पालन ?
क्या है कोई मूर्ति सामने ? या कि चित्र के करता दर्शन ?
अभी-अभी तो था प्रशांत उर, यह सहसा कैसा उद्वेलन ?

यहाँ चित्र भी टँगा नहीं है, नहीं मूर्ति भी कोई लक्षित,
फिर यह लाल-लाल-सा क्या है, करता जिसको भाव-समर्पित ?
कौन बालिका चुपके-चुपके ताक रही इसकी गति-विधियाँ ?
झाँक रही यह क्यों लुक-छिप कर इस विद्रोही उर की निधियाँ ?

ये हैं भाई-बहिन, अरे ! देखो यह जोड़ी क्या सुन्दर है,
कम न किसी से कोई इनमें, एक-दूसरे से बढ़कर है।
भगतसिंह यह, अमरकौर वह, छोटी है दो वर्ष उमर में,
किन्तु वीर भाई जैसी ही लिये भावना है अंतर में।

देख रही यह चुपके-चुपके, भैया करता किसका अर्चन,
क्यों मुख-मुद्रा क्रोधवंत है, क्यों उद्वेलित है इसका मन।
और उसे कुछ पता नहीं है, वह तो भावों में बहता है,
मन ही मन बड़-बड़ा रहा कुछ, जाने किससे क्या कहता है।

अरे ! काट ली उँगली इसने, यह कैसा इसका पागलपन ?
किस पर खून छिड़कता है यह ? दौड़ पड़ी अब बहिन विकल मन।
"अरे अरे ! यह क्या कर डाला ? भैया ! यह क्या पागलपन है ?
उँगली स्वयं काट ली अपनी, मन में कौन विकट उलझन है ?

खड़ी-खड़ी मैं देख रही थी, अभी-अभी जो तुम करते थे,
कभी क्रुद्ध निश्वास छोड़ते, गहरी कभी आह भरते थे।
आराधन का यह कैसा ढंग ? यह पूजा की कैसी विधि है ?
छिपा रखी है जो हम सबसे, ऐसी कौन तुम्हारी निधि है ?

है आराध्य कौन ? क्या वह जो तुमने मुझसे छिपा लिया है ?
समझ नहीं पाती, तुमने यह क्या विचित्र व्यवहार किया है।
करते थे तुम जिसके दर्शन, उसके दर्शन मुझे कराओ,
मैं तो बहिन तुम्हारी ही हूँ, मत मुझसे कुछ भेद छिपाओ।

देखूं कौन देवता है वह जिस पर तुमने खून चढ़ाया,
तुम्हें प्रेरणा देकर किसने दीवाना इस तरह बनाया।
यदि विश्वास नहीं है मुझ पर, यदि न भेद तुम मुझे बताते,
पापा से सब कुछ कह दूंगी, अभी-अभी वे होंगे आते।"

"अरे ! अरे चुप-चुप ! पापा को इसकी खबर नहीं लग पायें,
यदि ऐसा हो गया, महल सब गिर जायेंगे बने-बनाये।
तुझ से भला छिपा ही क्या है, सब कुछ तुझे बताये देता,
नहीं देवता, वह देवी है, दर्शन तुझे कराये देता।

ले पट खोल दिए हैं मैंने, करले इसके जी भर दर्शन,
यह मेरी मन की देवी है, यह मेरी आराध्य चिरन्तन।"
"भैया मैं तो समझ न पाती, यह क्या जो तुम दिखा रहे हो,
सीधी बात नहीं कहते क्यों, क्यों पहेलियाँ बुझा रहे हो ?

मुझको तो यह शीशी दिखती, और सामने यह अलमारी,
साफ-साफ बतलाओ मुझको, इनमें देवी कौन तुम्हारी ?
और बताओ, शीशी में यह भरा हुआ क्या लाल-लाल है ?
यही तुम्हारी देवी है यदि, तो फिर सचमुच ही कमाल है।"

'बहिन ! हँसी की बात नहीं है, इसमें मिट्टी भरी वतन की,
यह मिट्टी ही देवी मेरी, यह श्रद्धा है मेरे मन की।
लाल-लाल है, क्योंकि शहीदों के शोणित से सनी हुई है,
यह आराध्य चिरन्तन मेरे भावुक मन को बनी हुई।"

मुर्दे बोल उठे

"अच्छा भैया ! लो मैं भी इस मिट्टी को प्रणाम करती हूँ,
किन्तु खून का क्या रहस्य है ? सब कुछ कहो, न मैं डरती हूँ।
"बहन सुना ही होगा तूने हुआ काण्ड जो जलयाँ वाला,
किस निर्ममता से भारत का रक्त वहाँ पर गया उछाला।

कैसे यहाँ विदेशी शासन खुल कर नंगा होकर नाचा,
भारत के मुँह पर यह कैसा रौलट बिल का पड़ा तमाचा।
अमृतसर में सभा कर रहे, चली निहत्थों पर क्या गोली,
निरपराध जनता से कैसे खेली गई रक्त की होली।

सामूहिक-वध हुआ किस तरह, गये किस तरह मस्तक फोड़े,
किस निर्ममता से लोगों पर वहाँ गये दौड़ाए घोड़े।
छेदे गये हृदय लोगों के कैसे, जब माँगी आजादी,
कैसे हम पर इस शासन ने किये वार अपने जल्लादी।

मिट्टी कैसे सनी रक्त से उस जलयाँ वाले उपवन की,
कैसे-कैसे व्यथा सुनाऊँ, बहन तुम्हें मैं अपने मन की।
अगले दिन लाहौरी जनता ने जब समाचार यह पाया,
लगा कि जैसे वज्र गिरा हो, लगा कि हो पर्वत अर्राया।

पागल-से हो रहे लोग थे, क्रोध किनारे तोड़ रहा था,
ध्वस्त बाँध हो रहा धैर्य का, मन मर्यादा छोड़ रहा था।
अमृतसर को दौड़ पड़े कुछ दीवाने लाहौर शहर से,
चुपके मैं भी साथ हो लिया एक बहाना करके घर से—

"माँ ! जा रहा गाँव पर हूँ मैं, लौट रात तक आऊँगा,
करना नहीं प्रतीक्षा मेरी, संभव है न आज खाऊँगा।"
यह कह साथ-साथ लोगों के, पहुँच गया मैं भी अमृतसर,
किन्तु पुलिस ने रोका बाहर, पहुँचे नहीं बाग के अन्दर।

क्या करता मैं, इस घटना से उर पर लगा घाव गहरा था,
अन्दर जाना बहुत कठिन था, बाहर गोरों का पहरा था।
सम्बन्धी शहीद लोगों के अनुमति ले अन्दर जाते थे,
देख-देख कर छिन्न-भिन्न शव अपने-अपनों के लाते थे।

युक्ति लगा सम्मिलित हो गया, मैं भी जा कर ऐसे दल में,
अपनी सूझ-बूझ से अन्दर जाने में हो गया सफल मैं।
बहिन बताऊँ कैसे तुझको, जो कुछ देखा अन्दर जाकर,
मुझको लगा कि अब गिरता हूँ–अब गिरता हूँ मैं गश खाकर।

पहली बार वहाँ जीवन में, देखे थे मैंने इतने शव,
पहली बार वहाँ जीवन में, देखा था आहों का अर्णव।
चारों ओर पड़े शव ही शव, वहाँ दृष्टि-गोचर होते थे,
धाड़ मार कर प्रिय-जन पुरजन उनको देख-देख रोते थे।

कोई शव पर गिर-गिर पड़ता, कोई मस्तक फोड़ रहा था,
कोई खड़ा-खड़ा प्रस्तर-वत्, दीर्घ उँसासें छोड़ रहा था।
चिथड़े-चिथड़े हुए कई शव, कई गोलियाँ लग जाने से,
लोगों को लग नहीं रहे थे, वे निज जाने-पहचाने से।

पड़ा हुआ था कोई औंधा, अपने हाथ-पैर फैलाए,
पड़ा हुआ था कोई सीधा, बिखरे बाल और मुँह बाए।
किसी-किसी की गर्दन भू पर एक ओर को लटक गई थी,
खा गोली की चोट, खोपड़ी किसी-किसी की चटक गई थी।

बँधी मुट्ठियाँ किसी-किसी की, हाथ किसी के खुले हुए थे,
बदला लेने की मुद्रा में दिखते कोई तुले हुए थे।
मिट्टी और खून से लथ-पथ पड़े हुए थे कुछ अध-नंगे,
लगता था जैसे सोए हों थक कर होली के हुड़दंगे।

क्रोधित आँखें किसी-किसी की, वहाँ खुली की खुली रह गईं,
पुतली में अंकित पिशाच-लीलाएँ मन की व्यथा कह गईं।
कहती थीं वे आँखें—"हम थे निरपराध, हम को क्यों मारा ?
हमें मार कर ठण्डी छाती कर लेगा कैसे हत्यारा ?"

कहती थीं वे आँखें—"जो जीवित हैं वे इसका बदला लें,
इस उद्दाम निरंकुश शासन को शासन का ठीक सबक दें।"
कहती थीं वे आँखें—"हिंसक नहीं प्रार्थना से मानेंगे,
नर-भक्षी भेड़िए अहिंसा की वाणी क्या पहचानेंगे।

ये तो तब मानेंगे, जब इनकी गर्दन नापी जायेगी,
ये तो तब मानेंगे—इनको भूख हमारी जब खायेगी,
कहती थीं वे आँखें—"इनसे संधि-वार्ता सब निष्फल है,
उत्तर दें मुँह-तोड़ इन्हें हम, यही समस्या का अब हल है।"

खुली-खुली आँखें कहती थीं--"समझो, सुनो, देखने वालो !
यह संघर्ष न रुकने पाये, ओ आजादी के मतवालो !
जब तक इस बर्बर शासन का गर्व न मिट्टी में मिल जाये—
जब तक अपनी पुण्य-भूमि पर अपना केतु नहीं फहराये—

तब तक प्राण होमते जाएँ महा-यज्ञ में भारत-वासी,
सूली के फूलों के, फाँसी के झूलों के हों अभ्यासी।
इन बलिदानों से फिर अपने उपवन में बहार आयेगी,
प्राणों की उन्मुक्त कोकिला फिर अपने स्वर लहरायेगी।

लो, हम तो चल दिये किन्तु यह याद रखें सब जीने वाले,
मुर्दों से बदतर होते हैं अपमानों को पीने वाले।"
सुना बहिन! मरने वालों की आँखों ने सन्देश दिया यह,
करने का या मरने का ही आँखों ने उपदेश दिया यह।

आगे तुम्हें बताऊँ अब क्या उनकी दशा हुए जो घायल,
देख-देख कर उनकी गति को, प्राण हो उठे मेरे पागल।
हाहाकार मचा था भीषण, घायल पड़े कराह रहे थे,
पीड़ा से छटपटा-छटपटा, मौत स्वयं ही चाह रहे थे।

कोई हाय! हाय! चिल्लाते, कोई छाती कूट रहे थे,
पानी! पानी! रटते-रटते प्राण किसी के छूट रहे थे।
कोई घायल माँ मृत बच्चे को छाती से थी चिपटाये,
बिलख रहा कोई घायल शिशु, मृत माँ उसको क्या समझाये?

हाय राम! की हाय राम! की कहीं उठ रहीं करुण पुकारें,
क्रोध और प्रतिशोध-प्रज्ज्वलित सुन पड़तीं अगणित फुंकारें।
किसी-किसी के घायल तन से, रिस-रिस कर था रक्त बह रहा,
करुण-कथा अत्याचारों की बह-कह कर था रक्त कह रहा।

गिर-गिर पड़ता था कोई निज उठने के असफल प्रयास में,
कोई-कोई छाती के बल सरक रहा था वहीं पास में।
ऐसा दृश्य कभी जीवन में मैंने देखा-सुना नहीं था,
पहली बार वहाँ जो देखा, वैसा देखा नहीं कहीं था।

बहिन! वहाँ जो मैंने देखा, सम्भव नहीं सभी कह पाऊँ,
मन में आया क्यों न किसी की गोली खा मैं भी सो जाऊँ?"
"भैया! तुम यह क्या कहते हो, ऐसी अशुभ बात मत बोलो,
अभी बहुत कुछ करना तुमको, जहर निराशा का मत घोलो।"

"बहिन मुझे कुछ अशुभ नहीं अब, मृत्यु खेल लगता जीवन का,
कुछ विचित्र हो गया हाल है इस घटना से मेरे मन का।
और वहाँ जो मरे, किसी के होंगे वे भी तो प्रिय भाई,
किन्तु हो गया जो होना था, उनने बड़ी वीर-गति पाई।

मैंने तो संकल्प कर लिया वहाँ तभी, मरना तो है ही,
पिंजड़ा छोड़ प्राण के पंछी को प्रयाण करना तो है ही—
भूल न पायें जिसको सदियाँ, मैं ऐसी ही मौत मरूँगा।
अपने शोणित से धरती की आजादी की माँग भरूँगा।

मेरी मौत यहाँ जीवन की फुलवारी-सी खिल जायेगी,
अगर मरूँगा मैं, तो इस शासन की जड़ भी हिल जायेगी।
बाल-कल्पना नहीं बहिन यह, यह मेरा संकल्प अटल है,
है भविष्य मेरी मुट्ठी में, मुझ पर विश्वासों का बल है।

उन्हीं शवों के बीच बैठ कर, मैंने जीवन का व्रत ठाना,
वहाँ मृत्यु के अंधकार में, मैंने अपना पथ पहचाना।
जो संकल्प किया है मैंने, यह मिट्टी दे रही गवाही,
इससे पूछो, यह कह देगी, मैंने मौत कौन-सी चाही।

यह मिट्टी है जो कि शहीदों के शोणित से सनी हुई है,
यह मिट्टी, मेरे जीवन के लिये प्रेरणा बनी हुई है।
बहिन, वहाँ से लौटा मैं तो, बहुत बड़ी निधि ले आया हूँ,
जो यह दिखती रक्त-रंजिता, पावन मिट्टी भर लाया हूँ।

नित्य-नियम से तब से मैं इस मिट्टी की पूजा करता हूँ,
संकल्पों में नया खून मैं इसके दर्शन से भरता हूँ।
इस मिट्टी पर अर्चन-क्रम में, नित्य सुमन अर्पित करता हूँ,
सुमन न मिलते, रक्त-बिन्दु मिस श्रद्धा-कण अर्पित करता हूँ।

यह मिट्टी जो अमर शहीदों के शोणित से हैं अभिसिंचित,
इस पर प्राण निछावर करते मन न तनिक भी होता चिंतित।
यह रहस्य है जो अन्तर में मैंने अब तक पाल रखा था,
जग की दूषित, घृणित वायु से मैंने इसे सम्हाल रखा था।

यह रहस्य प्रिय और गुह्य-तम मैंने आज तुम्हें बतलाया,
मैंने अपने संकल्पों का आज साक्षी तुम्हें बनाया।
तुम मुझको विश्वास अमर दो, इसे नहीं तुम प्रकट करोगी,
जब तक हो संकल्प न पूरा, भेद किसी से नहीं कहोगी।"

"भैया ! तुम कितने महान हो, है संकल्प महान तुम्हारा,
जग को युग-युग वन्दनीय हो, यह पावन अभियान तुम्हारा।
यह रहस्य होगा रहस्य ही, मैं तुमको विश्वास दिलाती,
अपने पूज्य वीर भाई पर, मैं श्रद्धा-सह बलि-बलि जाती।

तुमने अपने संकल्पों का आज साक्षी मुझे बनाया,
तुमने अपने अरमानों का है रहस्य मुझको वतलाया।
जो मुझ पर विश्वास तुम्हारा, उसकी रक्षा सदा करूंगी,
यह विश्वास करो तुम भैया, मैं दुनियाँ से नहीं डरूंगी।

विश्वासों की रक्षा करना, यह मानव का बड़ा धर्म है,
उर के शाश्वत सम्बन्धों का यह रहस्य चिर-सत्य मर्म है।
विश्वासों की रक्षा से, उर के सम्बन्ध मधुर होते हैं।
प्रिय विश्वास हमारे उर में श्रद्धा के अंकुर होते हैं।

मेरा नाम अमर है, तुम पर श्रद्धा मेरी अमर रहेगी,
संकल्पों की साध, भावना की धारा में नहीं बहेगी।
किन्तु साक्षी होना केवल, यह मुझको स्वीकार नहीं है,
सुख-दुख में साझी होने का क्या मुझको अधिकार नहीं है?

यह विश्वास मुझे दो तुम भी, तुम मुझ पर विश्वास रखोगे,
बलिदानों का अवसर आये, तुम मुझको भी अवसर दोगे ।
"अच्छा ! अच्छा ! अब चुप कर, आने दे बेला बलिदानों की,
जब धरती पर धूप खिलेगी मेरे संचित अरमानों की ।"

सर्ग तेरह

पंजाब में दमन का दौर-दौरा

कर्तव्य भूल जाता अपना सत्ता-मद में सत्ताधारी,
सेवा का सब्ज-बाग दिखला, शोषण करता अत्याचारी।
प्रभुता के मद में दमन-चक्र चलता है अहरह द्रुति-गति से,
इसका उपचार क्रान्ति केवल, वह नहीं मानता सन्मति से।

जब-जब मानव की धरती पर उन्मद आसुरी प्रहार हुए,
प्रभु-सत्ता के जन-सत्ता पर जब-जब हैं अत्याचार हुए।
तब-तब भीषण विस्फोट हुए, विप्लवी उठी तब-तब आँधी,
उन्मुक्त हुआ तब-तब जीवन, अत्याचारों की गति बाँधी।

जब-जब जन-बल को ललकारा पशुता के प्रबल प्रहारों ने,
जब-जब बिनाश का रास रचा, दानवी - सबल संहारों ने -
तब-तब चेतना सुप्त मन की भड़की बाहर ज्वाला बन कर,
दानवता ध्वस्त हुई तब-तब, जब मानव खड़ा हुआ तन कर।

गत्यावरोध हो, भले, किन्तु जन-बल न झुका कुण्ठित होकर,
साम्राज्य चाटते रहे धूल, जन-पद पर भू-लुण्ठित हो कर।
जब-जब युग ने करवट बदली, जब-जब पीड़ित जनता जागी,
काले शासन की काल-निशा है पीठ दिखा तब-तब भागी।

प्रतिरोध हुआ तब-तब उतना, जब-जब है जितना दमन हुआ,
स्वातन्त्र्य-भावना भड़की जब, उसका न दमन से शमन हुआ।
अन्तर की क्रान्ति-भावनाएँ उन्मत्त हुई जब लहरा कर,
है क्षुधा मिटी उनकी तब तब दुर्द्धर्ष दस्यु-दल को खाकर।

ऐसा ही दुर्दमनीय अहं बढ़ गया फिरंगी शासन का,
जब भाव भेड़ियों के मन में जागा शोणित के प्राशन का।
जनता का रक्त-पान करने वे दुर्मति रक्त-पिपासु बढ़े,
मानवता के निर्वसन हेतु, दानवता के जिज्ञासु बढ़े।

वैसे समस्त भारत में ही था दमन स्वयं साकार हुआ,
इस समय किन्तु पंजाब प्रान्त इसका था अधिक शिकार हुआ।
सिंहों को वश में करने की शासन ने मन में ठानी थी,
अन्धेर देर करता कैसे, जब यौवन पर मनमानी थी।

जलयान बाग की नर-हत्या से शासन को सन्तोष न था,
प्राबल्य राज-हठ का था यह, बालक का भोला रोष न था।
गोलियाँ खा चुकी थी जनता, अब मार भयंकर खाती थी,
पशु-बल से पोषित प्रभु-सत्ता प्रतिशोध भाव अपनाती थी।

लोहू की धारा वही जहाँ, कुछ दिवस पूर्व अमृतसर में,
काले कानून दिखाते थे अपना प्रभाव अब घर-घर में।
चौराहों पर सम्मानित-जन निर्वसन कराये जाते थे,
करके कतार में खड़ा उन्हें, कोड़े बरसाए जाते थे।

लोगों को त्रस्त किया जाता, कर बन्द कभी बिजली पानी,
सुरसा जैसी बढ़ती जाती दुर्मद शासन की शैतानी।
थे रेल-यात्रा में तृतीय श्रेणी के डिब्बे बन्द हुए,
जनता का आवागमन ठप्प करने के कई प्रबन्ध हुए।

जन-पथ पर दो-से अधिक जनों का साथ-साथ चलना निषिद्ध,
करते थे बैठ चोंच पैनी, शासन के भूखे क्रुद्ध गिद्ध।
रक्षण का था दायित्व, अतः शासन आश्वासन देता था,
सम्मान और संपत्ति सभी वह लोगों से ले लेता था।

आतिथ्य-भावना से उदार शासन के कारागार बने,
जन-शोणित का शोषण करते थे नये-नये हथियार बने।
अभिनीत न्याय के रंग-मंच पर होते थे नाटक दुखान्त,
हिंसा का ताण्डव-नृत्य देख होता शासन का हृदय शान्त।

अत्याचारों की स्पर्द्धा में 'डायर' एकाकी नाम न था,
थे दैत्य और भी, दमन-चक्र से मिलता जिन्हें विराम न था।
दुर्दिन की चक्की चलती थी, जनता अनुदिन पिसती जाती,
बढ़ती जाती दुर्भाग्य-रेख, सौभाग्य-रेख घिसती जाती।

लाहौर 'जॉनसन' से पीड़ित, शेखूपुर में था बॉसवर्थ',
निर्दोष कसूर इलाके में कर रहा 'डोबटन' था अनर्थ।
गुजराँवाला में रावण के दर्शन पाये लोकायन ने,
भीषण प्रचण्डता दिखलाई दुर्मति 'कर्नल ओब्रायन' ने।

आतंक भयावह इन सब का, जनता के मन पर छाया था,
दानवी नीति में बढ़-चढ़ कर इन सब ने नाम कमाया था।
निर्वसन पेट के बल चलने लोगों को बाध्य किया जाता,
था हनन आत्मा का करके, अनुदिन अपमान पिया जाता।

थे विवश किये जाते काले, करने सलाम नित गोरों को,
गृह-स्वामी साहूकार, विवश होते थे झुकने चोरों को।
लोगों को लटकाने, निर्मित थे फाँसी-घर चौराहों पर,
शासन का गर्व नृत्य करता पीड़ित जनता की आहों पर,

लोहे के पिंजड़े निर्मित कर, लोगों को ठूँस दिया जाता,
रख कर ये पिंजड़े दर्शनार्थ अपमानित उन्हें किया जाता।
तड़पाये जाते थे तन-मन, दे-दे लोगों को पीड़ाएँ,
जन जीवन था खिलवाड़ बना, बढ़ रहीं आसुरी क्रीड़ाएँ।

शासनादेश था—युवक-छात्र प्रतिदिन थानों में जाते थे,
थे विवश, उपस्थिति चार बार वे अंकित नित्य कराते थे।
जलती हो धरती, आसमान चाहे अंगारे बरसाये,
शासन दृढ़ था, अनुशासन में किंचित न शिथिलता आ पाये।

लोगों से छीन लिये उनके-अपने, शासन ने वाहन थे,
नित नई-नई धाराओं में करते वे नित अवगाहन थे।
प्रतिरोध भावना असंतोष यदि जनता कहीं दिखाती थी,
तो शासन को यह सह्य न था, झट खाल खींचली जाती थी।

इतना सब कुछ होने पर भी प्रतिरोध-भावना रुकी नहीं,
इन भीषण अत्याचारों के सम्मुख भी जनता झुकी नहीं।
घूमा तेजी से दमन-चक्र पर विचलित हुए न दीवाने,
शासन से लोहा लेने को प्रस्तुत थे वे सीना ताने।

पंजाब प्रान्त की दशा देख, सब में जाग्रति की लहर उठी,
पीड़ित जनता की रोष-ध्वजा कोने-कोने से फहर उठी।
जन-जीवन का विक्षुब्ध-सिंधु था भीषणता से लहराया,
प्राणों में उग्र-चेतना का था जैसे प्रबल-ज्वार आया।

सुन पड़ी तभी गर्जना विकट शेरे-पंजाब लाजपत की,
पीड़ित पंजाबी प्राणों से ध्वनि आने लगी बगावत की।
संगठन मंत्र उच्चरित हुआ, दृढ़ जन-बल का आह्वान हुआ,
पंचनद भूमि पर राष्ट्रीय नेताओं का सम्मान हुआ।

ले नये विचारों की आँधी युग अग्र-दूत गांधी आये,
नेहरू श्री मोतीलाल उग्र भावों में संयम भर लाये।
हुंकारें सुनाई पड़ीं वहाँ, युवकों के हृदय जवाहर की,
जनता ने पाई स्नेह छाँह थी दीन-बन्धु[१] के अन्तर की।

भारत की संस्कृति के प्रतीक श्री मालवीय जी महामना,
जब दर्शन देने पहुँचे तो था लोगों में उत्साह घना।
राजर्षि पधारे टंडन जी, लोगों ने शुभ दर्शन पाये,
सब नेताओं ने अग्नि-वाण अपनी वाणी से बरसाये।

उतप्त देश की रग-रग में नवजीवन का संचार हुआ,
हर वीर देश की आजादी-हित मर मिटने तैयार हुआ।
इस महादेश के प्राणों में उत्सर्ग भावना लहराई,
युग ने पाया नेतृत्व नया, जनता ने नई दिशा पाई।

---

१. दीनबन्धु एण्ड्रूज।
पंजाब की पीड़ित जनता के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिये एक-एक दो-दो करके कई नेता वहाँ गये थे।

कलकत्ता की राष्ट्रीय-सभा में गूँजा एक नया नारा,
जन-बल पाकर युग के मोहन ने दुर्योधन को ललकारा।
था प्रबल आत्मबल का आयुध, पशु-बल के सम्मुख गाँधी का,
था विकट सामना शासन को करना नव-युग की आँधी का।

यह नया अस्त्र था असहयोग, युग ने था जिसको अपनाया,
था वज्र-शक्ति का यह प्रहार, था जिससे शासन थर्राया।
था जनता को आदेश मिला, नौकर-शाही का त्याग करें,
भावना स्वदेशी अपनायें, इस धरती से अनुराग करें।

वस्तुएँ विदेशी जितनी भी, हम उनका नहीं प्रयोग करें,
जो यहाँ देश में निर्मित हों, केवल उनका उपयोग करें।
सम्मान और पदवियाँ सभी जो शासन ने दी हैं, छोड़ें,
अभिशप्त दासता के पथ से, हम दृढ़-प्रतिज्ञ हो मुँह मोड़ें।

वे सभी संस्थाएँ छोड़ें, जिन पर शासन की छाया है,
भारत के जन-बल को घातक यह प्रबल आसुरी माया है।
जो अहंकार से ऊँचा है, वह मस्तक हमें झुकाना है,
आगया समय, निज मातृ-भूमि का ऋण अब हमें चुकाना है :

जीवन के संचित पुण्यों को इस धरती पर अर्पित करने,
सन्नद्ध देश के प्राण रहें, निज स्वतंत्रता अर्जित करने।
भारत के सोए सिंह उठें, अँगड़ाई ले गर्जना करें,
उज्ज्वल भविष्य की वे अपने संकल्पों से सर्जना करें।

शासन की आँख में किरकिरी

गर्जना विकट दीवानों की शासन के लिये चुनौती थी,
सहमत न छोड़ने भारत को, जैसे यह भूमि बपौती थी।
जन-जाग्रति का उत्तर देने, शासन ने बदले रंग नये,
प्रसरित अगणित आदेश नये, आदेशों के थे ढंग नये।

थी छात्र-वर्ग पर कुछ विशेष शासन-सत्ता की कोप-दृष्टि,
ये युवक लोक-जीवन में नित थे विप्लव की कर रहे सृष्टि।
स्वच्छन्द वायु में जीवन की वे साँस ले रहे थे खुल कर,
चेतना फूंकते नित्य नई वे जन-जीवन में मिल-जुल कर।

इसलिये उन्हें अपने आड़े हाथों शासन ने शीघ्र लिया,
अनिवार्य रूप से पालन हित उन सब को यह आदेश दिया—
"अँग्रेजी झण्डे के आगे झुक कर तुम उसे सलाम करो,
अध्ययन हो न हो, किन्तु नित्य तुम यह आवश्यक काम करो।

यह झण्डा जिसके शासन में सूरज भी होता अस्त नहीं,
यह फहराने का आदी है, झुकने का है अभ्यस्त नहीं।
इसलिये करें सब छात्र वृन्द यूनियन जैक का अभिवादन,
होगा दृढ़ता से दण्डनीय शासनादेश का उल्लंघन।"

"आदेश नहीं यह शासन का, घावों पर छिड़का गया नमक,
अँग्रेजी झण्डे को सलाम करना हमको क्यों आवश्यक?
आदेश नहीं यह शासन का, अपमानजनक यह गाली है,
इस शासन के नंगेपन ने भारत की लाज उछाली है।

हम किस धरती के बेटे हैं, इसका भी तनिक विचार करें,
क्यों चिन्ता हमें दण्ड की हो, आदेशों का प्रतिकार करें।
अंग्रेजी झण्डे के आगे यह मस्तक अपना झुके नहीं,
कर्तव्य भावना का प्रवाह यह जीवन रहते चुके नहीं।"

ऐसी उद्दण्ड भावना का कर रहा एक बालक प्रसरण,
झुकने न किसी को देगा वह, यह ठान रखा था उसने प्रण।
मुर्दों में प्राण फूँकता था कर मुखरित ओजस्वी वाणी,
राष्ट्रीय भावना में डूबा, भावना लिये जन-कल्याणी।

यह बाल-शिरोमणि भगतसिंह झुकने न किसी को देता था,
था विद्यालय का प्राण बना, वह छात्र-संघ का नेता था।
सारे साथी तत्पर रहते उसके संकेतों पर चलने,
पानी में कूद डूब मरने, हँस कर ज्वालाओं में जलने।

शासन की उन्मद आँखों को, यह बालक था किरकिरी बना,
वह क्रान्ति-भावना फूँक-फूंक रहता सदैव निर्भीक-मना।
कर रहा अवज्ञा बालक था, पर गया पिता को बुलवाया,
परिणाम बुरा बतला-बतला, अफसर ने उनको धमकाया।

पर ज्ञात न था अफसर को वे किस साँचे में थे ढले हुए,
थे बाप और बेटे दोनों जैसे लपटों में पले हुए।
कह दिया—"अवज्ञा बालक की क्यों मुझे दण्ड का कारण हो,
बन सके अगर—दो दण्ड उसे, उस पर ही क्रोध-निवारण हो।

पर ध्यान रहे आपत्ति न ले शासन सर पर बैठे-ठाले,
वह जान-बूझ कर बर्रों के छत्तों में हाथ नहीं डाले।
यदि भड़क गये वे तो उनको मुश्किल होगा वश में करना,
उठ गये पाँव, सीखे न कभी फिर वे उनको पीछे धरना।"

सर्ग चौदह

गांधी की आँधी

भारत के सौभाग्य-गगन पर घिरे मेघ जब काले,
घोर निराशा के तम ने जब अपने डेरे डाले—
उठी एक तब प्रबल आत्म-बल की हहरा कर आँधी,
युग ने उसे पुकारा कह कर जन-अधिनायक गांधी।

गांधी के झण्डे के नीचे जन-समूह घिर आया,
जनता ने दानव से लड़ने नया अस्त्र था पाया।
युग-नायक ने कहा—"हरा सकते हैं हम पशु-बल को,
दृढ़ करना होगा हमको अपने ही अन्तस्तल को।

यह दृढ़ता पाई जाती है सत्य-आचरण द्वारा,
सचराचर के लिए प्रेम का ही हम करें पसारा।
रहे अहिंसा-भाव हमारे मन में, कर्म-वचन में,
सत्य अहिंसा और प्रेम ही प्रेरक हो जीवन में।

सत्य स्वयं ईश्वर है जिसके हों अभीष्ट प्रिय-दर्शन,
सत्य ध्येय हो इस जीवन का, है यह तत्व चिरन्तन।
ईश्वरत्व है सत्य, सत्य ही उर का अलंकरण है,
आत्म-यज्ञ का सत्य शाश्वत पावन पुरश्चरण है।

और अहिंसा—दया दृष्टि का है यह पुण्य-प्रकाशन,
जी न दुखायें किसी जीव का, करें सदा हित-चिन्तन।
वीरों का है धर्म अहिंसा, यह पर्याय न भय का,
सह-जीवन का दृष्टि-कोण यह, तप है परम सदय का।

प्रेम पुण्य आलोक हृदय का प्रेम साँस संधृति की,
प्रेम आत्मा की छाया है, यह प्रेरणा सुगति की।
प्रेम पूर्ण व्यवहार शत्रु को भी है मित्र बनाता,
विश्वासों की नींव प्रेम है, यह आनन्द-प्रदाता।

अतः चाहते यदि हम पाना फिर अपनी आजादी,
यह सिद्धान्त हमें पालन करना होगा बुनियादी।
सत्य-अहिंसा और प्रेम से शत्रु-विजय हो सकती,
नीति यही जो चिन्ह कलुष के पल भर में धो सकती।

यह त्रिगुणायक शक्ति हाथ में ले अरि को ललकारें,
उसे शस्त्र से नहीं, प्रेम के आघातों से मारें।
निश्चित विजय हमारी होगी, सत्याग्रह के द्वारा,
दुनिया को आदर्श बनेगा यह संग्राम हमारा।

असहयोग, उपवास आदि हैं सत्याग्रह के सैनिक,
धर्म-युद्ध में यही कार्य-क्रम होगा अपना दैनिक।
असहयोग में नहीं भावना होगी अरि की क्षति की,
राह बदलनी होगी हमको उसके मन की गति की।

साधन है उपवास आत्म-पीड़न से उर-शोधन का,
साधन है उपवास हमारे उर के उद्बोधन का।
इन सब का परिणाम शत्रु के भावों का परिवर्तन,
इन सब का परिणाम हमारे लिये विजय का अर्जन।

पद, सेवा, सम्मान आदि का बहिष्कार करना है,
सभी विदेशी उपकरणों को नमस्कार करना है।
डटे रहें हम दृढ़ निश्चय से असहयोग के पथ पर,
डटे रहें हम दृढ़ निश्चय से कर संगठन परस्पर।

दो दिन में ही परदेशी के बिस्तर बँध जायेंगे,
बिना बहाये खून वांच्छित फल हम सब पायेंगे।
विजय आत्म-बल की अपनी यह होगी उस पशु-बल पर,
निश्चित विजय सत्य की होगी उस मायावी छल पर।"

तो यह थी आवाज लगाई तब उस सत्य-व्रती ने,
प्रेम और मानवता के उस साधक महायती ने।
यह आवाज लगाई उसने गाँव-गाँव में जाकर,
लोगों में चेतना फूंक दी, घर-घर अलख जगाकर।

यह आवाज सुनी लोगों ने, एक नया बल पाया,
नई शक्ति यह मिली, परीक्षण को अब मन ललचाया।
सोचा सबने, मुक्ति देश की ही है ध्येय हमारा,
यदि मिलती हो, क्यों न उसे हम लें सत्याग्रह द्वारा।

इसी भाव से भेद-भाव को भुला सभी आ धमके,
सत्य अहिंसा और प्रेम के अस्त्र-शस्त्र थे चमके।
छिड़ा देश-व्यापी आन्दोलन असहयोग का भारी,
प्रस्तुत थे सर्वस्व दान-हित सभी आत्म-बल-धारी।

फेंक दिये तमगे उतार सबने नौकर-शाही के,
प्रस्तुत सभी हो गये चलने पीछे उस राही के।
असहयोग के साथ सभी ने बहिष्कार अपनाया,
छोड़-छोड़ पदवियाँ और पद, सबने रोष जताया।

उठी चेतना की जो लहरें, फैल गईं घर-घर में,
त्याग-भावना समा गई थी, जन-जन के अन्तर में।
जाने कैसा सम्मोहन था उस योगी के स्वर में,
विद्यालय निज छोड़, छात्र भी कूदे मुक्ति-समर में।

'असहयोग' में योग दे रहा पूरा बाल-जगत था,
शान्त-क्रान्ति के महा-समर में कूदा वीर भगत था।
तड़प रहे थे प्राण, देश को बन्धन मुक्त कराने,
तड़प रहे थे प्राण, देश में सौख्य-सुधा बरसाने।

देखा, मुक्ति-दूत बन गांधी देता है आश्वासन—
"वह दिन दूर नहीं, जब होगा यहाँ हमारा शासन।
छिड़े तीव्र आन्दोलन, माँ के बन्धन कट सकते हैं,
दुर्दिन के घन, छिन्न-भिन्न हो पल में हट सकते हैं।"

यूनियन जैक की सलामी

अन्धे को क्या और चाहिए, बस केवल दो आँखें,
वीर भगत के हृदय-सुमन की, सभी खिल उठी, पाँखें।
असहयोग की आग तीव्र हो, उसने भी यह चाहा,
देख परिस्थिति इस प्रयत्न को उसने स्वयं सराहा।

लगा स्वयं वह आन्दोलन को अधिकाधिक भड़काने,
आतुर था भारत-माता के वह बन्धन तड़काने।
इसीलिए वह कूद पड़ा था नूतन क्रान्ति समर में,
नेता का उद्घोष सुन पड़ा उसके प्रेरक स्वर में।

उस दिन बाल-सखा-दल को था उसने स्वयं बुलाया,
कुछ विशेष मन्तव्य हृदय का उन सब को समझाया।
निश्चित हुआ, करेंगे बालक राजाज्ञा का पालन,
सभी करेंगे मिल अँग्रेजी झण्डे का अभिवादन।

अनुशासित हो पहुँच गया वह विद्यालय का दल था,
जिसने सुना, सभी के मन में जागा कौतूहल था।
भगतसिंह यूनियन जैक को आज सलामी देगा,
दयानन्द विद्यालय का कैसे सम्मान बचेगा ?

नहीं सहज विश्वास हो रहा था इस पर जन-मत को,
सभी आन का हठी समझते थे वे बाल-भगत को।
किन्तु आज उसका निश्चय सुन सबको अति विस्मय था,
जो सुनता, धक् से रह जाता उसका व्यग्र हृदय था।

"एक क्रान्तिकारी के बेटे में कैसा परिवर्तन ?
क्या आतंकित हुए लोग ये, या कुछ बड़ा प्रलोभन ?
यह बालक जिसके चाचा द्वय निकले विप्लवकारी,
सुन दहाड़ जिनकी काँपे थे शासन-सत्ताधारी।

पूज्य पिता भी जिस बालक के विप्लव-पथ पर चलते,
जिनके उर में देश-भक्ति के दीप निरन्तर जलते।
उनका बालक यों कुल की मर्यादा छोड़ रहा है,
वह बालक अपनी विचार-धारा क्यों मोड़ रहा है ?"

किन्तु न इन बातों की चिन्ता थी बालक के मन में,
उसे मुक्ति की किरण दिखाई देती थी बन्धन में।
अपने बाल-सखा-दल का कर स्वयं सफल संचालन,
ले पहुँचा वह उन्हें, जहाँ आयोजित था अभिवादन।

नियत समय पर हुआ सलामी देने का आयोजन,
एक फिरंगी अफसर करता था इसका संयोजन।
पंक्ति-बद्ध हो खड़ा हुआ था विद्यालय का यह दल,
बाहर पूरी शान्ति, हृदय में मची हुई थी हलचल।

'सावधान !' का पाते ही आदेश हुए सब तत्पर,
झण्डे की कर रहा सलामी खड़ा फिरंगी अफसर।
कर उसका अनुसरण छात्र-दल को सलाम करना था,
श्रद्धा-सह अँग्रेजी झण्डे को प्रणाम करना था।

किन्तु हुआ क्या ? पीछे से सुन पड़ा किसी का दृढ़ स्वर,
सावधान हो खड़ा होगया यह दल पीछे मुड़कर।
छोटा एक तिरंगा झण्डा लेकर खड़ा भगत था,
दल उसका दे रहा सलामी होकर श्रद्धा नत था।

देख-देख यह दृश्य, फिरंगी अफसर क्या झल्लाया,
गला फाड़ कर बड़े क्रोध से 'डैम फूल' चिल्लाया।
तितर-बितर हो किन्तु वीर-दल हुआ उड़न-छू अब था,
काण्ड किया, सब रफू हो गये, वहाँ ठहरना कब था?

इधर-उधर मिल गये शीघ्र वे जाकर जन-सागर में,
रहा चीखता गोरा अफसर खड़ा क्रोध के ज्वर में।
विद्यालय को छोड़, मिले सब आकर सेवा-दल में,
देश-भक्ति का ज्वार उमड़ता लेकर अन्तस्तल में।

भगतसिंह को पाकर सेवा-दल ने यौवन पाया,
वह यौवन जिसने समाज में नव-जीवन लहराया।
जन-मानस में देश-भक्ति की उठने लगीं तरंगें,
उठ-उठ छूने लगीं गगन को मन की प्रबल उमंगें।

गाँधी का वह सहयोगी, था असहयोग भड़काता,
अपनी सिंह-गर्जना से शासन का दिल धड़काता।
करते थे सब लोग काम, पर वह कमाल करता था,
बड़े-बड़ों की सूझ-बूझ को वह निढाल करता था।

थकने का क्या काम, काम करने की ठान रखी थी,
लेता सबसे काम, सभी की नस पहचान रखी थी।
घड़ी-दो-घड़ी में ही सब से वह घुल-मिल जाता था,
काम न कोई कर पाये जो, वह कर दिखलाता था।

मिलता रहता था सब ही से, जाता था घर-घर में,
घर कर लेता था क्षण भर में वह सब के अंतर में।
थे समाज के जन सब उसके दादा, ताऊ, चाचा,
वह था कौन, न जो हो उसके संकेतों पर नाचा?

गृह-वधुएँ, गृहिणियाँ—सभी उसकी बहिनें माताएँ,
स्नेहाशीष लुटातीं अपना उस पर कुल-ललनाएँ।
आँखों के पथ से आ उर में बस कर रह जाता था।
मन से मन की बात, बिना बोले ही कह जाता था।

जो व्रत ठान रखा था, उसको पूरा निभा रहा था।
नेता के सब सपने सच्चे करके दिखा रहा था।
गांधी जी का लक्ष्य पूर्ण कर रहा, पूर्ण निस्पृह था,
एक कोटि जन-धन का भारत में करना संग्रह था।

धन-संग्रह के साथ-साथ वह मन-संग्रह भी करता,
लोकमान्य श्री वीर तिलक की वह स्वराज्य-निधि भरता।
भरता था उत्साह उरों में वह अविचल उत्साही,
मुक्त-कण्ठ से जनता ने थी उसकी नीति सराही।

नहीं एक लाहौर, घूमता चौ-तरफा गाँवों में,
जैसे बँधा शनिश्चर रहता हो उसके पाँवों में।
मंत्र संगठन का, समाज में सिद्ध किया करता था,
होता दैनिक लक्ष्य पूर्ण, तब चैन लिया करता था।

लिया नहीं था। अर्थ औपचारिक उसने सेवा का,
अनासक्ति का योग लक्ष्य था, लक्ष्य न था मेवा का।
देख तमाशा रहा नहीं वह तट पर खड़ा-खड़ा था,
रोम-रोम के द्वार खोल वह रण में कूद पड़ा था।

सर्ग पन्द्रह

रूप की नगरी बम्बई में आक्रोश की लपटें

यह कौन महा-नगरी रचना-वैभव की ?
नगरी है या तस्वीर रूप-आसव की ?
जीवित, ज्वलंत, जाग्रत सुन्दर सपने-सी
सर्जना भव्यतम यह श्रम-रत-मानव की।

सुनिए जनाब ! बम्बई इसे कहते हैं,
नगरी यह, जिसमें धन-कुबेर रहते हैं,
गर्जना यहाँ करती हैं प्रबल तरंगें
मन की उमंग में लोग यहाँ बहते हैं।

जीवन-सागर-सी यह सागर के तट पर,
लगती है पनिहारिन-सी यह पन-घट पर,
जी इस पर ललचाया करता है ऐसे
मँडराया करते मन जैसे घूँघट पर।

खारे जल में भी यह मिठास भर देती,
साँसों में यह मादक सुवास भर देती,
पीने वालों की तृषा नहीं बुझती, यह
दो घूंट पिला कर अमिट प्यास भर देती।

सुन्दरता में इसका कोई क्या सानी?
है इन्द्र-पुरी भरती इसके घर पानी।
नारियाँ नहीं, हैं यहाँ रानियाँ रहतीं
यह नगरी जैसे स्वयं रूप की रानी।

नजरों का रहता यहाँ रूप पर पहरा,
असहाय रूप भोला-भाला जो ठहरा,
जिसको देखो, उसका मन रँगा हुआ है
है यहाँ प्यार का रंग बहुत ही गहरा।

तिरते रहते हैं स्वप्न यहाँ नजरों में,
करते सैलानी सैर यहाँ बजरों में,
केवल न फूल ही गुंथे हुए रहते हैं
लोगों के मन भी गुंथ जाते गजरों में।

लगते संध्या को यहाँ रूप के मेले,
सजनियाँ और साजन आते अलबेले,
इस मेले में चलता है दिल का सिक्का
जिस पर यह हो, वह जो चाहे सो ले-ले।

जिसको देखो, वह कलाकार दिखता है,
आँखों में अल्हड़-सा खुमार दिखता है,
जब लोग झाँकते दिल के आईने में
तो वहाँ किसी का उन्हें प्यार दिखता है।

रस की गगरी, यह नगरी दीवानों की,
अपनी मस्ती में डूबे मस्तानों की,
तस्वीर लेखनी क्या उतार पायेगी
इसके सपनों की, इसके अरमानों की।

पर जीवन में केवल न प्यार ही संबल,
संघर्षों की भी इसमें भीषण हल-चल,
मनुहार-प्यार ही इसके रूप नहीं हैं
है लिये घृणा भी जीवन का यह अंचल।

है यहाँ घृणा करता मानव-मानव को,
ढोता समाज है अर्थ-नीति के शव को,
मधु के बदले जब जहर घुल गया है तो
क्या यहाँ बैठकर चाटे मनुज विभव को ?

मानव के उर में असुर पला करते हैं,
मन में विध्वंसक स्वप्न ढला करते हैं,
जिनके बल पर हमने ऊँचाई पाई
हम चलते तो उनको कुचला करते हैं।

ऊँचे ऊँचे ये जो अति भव्य भवन हैं,
अपनी ऊँचाई से छू रहे गगन हैं,
श्रम की समाधि इनको कहना अनुचित है
ये महल नहीं, श्रमिकों पर पड़े कफन हैं।

मानव-मानव में ये कैसी दीवारें ?
जय-ध्वनियों में ये कैसी हाहाकारें ?
क्यों मान-चित्र बन गया नर्क का तब-तब
जब-जब चाहा धरती पर स्वर्ग उतारें।

किसने समाज में प्रखर हलाहल घोला ?
सपनों पर किसने रखा आग का गोला ?
यह कौन स्वांग रच रहा देवताओं का
यह छिपा रहा है कौन दनुज का चोला ?

क्या शासन है इस सब का उत्तरदायी ?
क्या घृणा-पाप का बना वही व्यवसायी ?
क्यों ध्वंस नहीं हो जाता है शासन का ?
क्यों कोई जीवित रहे यहाँ अन्यायी ?

आवरण धवल, आचरण किन्तु यह काला,
यह मनुज-रक्त पी रहा दैत्य मतवाला,
वीणा की मोहक तान छेड़ कर इसने
निज जाल कुरंगों के ऊपर है डाला।

यह घड़ा पाप का हमें फोड़ना होगा,
आग्नेय-बाण अब हमें छोड़ना होगा,
अधिकार-वाद का किला खड़ा छाती पर
करके प्रहार यह किला तोड़ना होगा।

भारत-भू पर क्यों फले विदेशी शासन ?
क्यों सिंहों पर हो स्यारों का अनुशासन ?
संगीन हमारे हृदय वेध डालें क्यों
जब हम अपने भावों का करें प्रकाशन।

व्यापारी बन कर आये चोर-उचक्के,
सम्मान बेच गृहपति खायें क्यों धक्के,
क्यों वीर-पूत अपमान सहें चुप रह कर ?
क्यों नहीं छुड़ाते मिल कर इनके छक्के ?

फिरंगी युवराज का बहिष्कार

लो सुनो शासनादेश आज आया है,
गौराङ्ग महाप्रभुओं ने फरमाया है,
लन्दन से शाही अतिथि पधार रहे हैं
इस दलित देश ने शुभ अवसर पाया है।

युवराज बहादुर[1] भारत में आयेंगे,
दर्शन देने वे यहाँ-वहाँ जायेंगे,
उनके स्वागत के लिए सभी दिल खोलें
वे कृपा दृष्टि निज आकर बरसायेंगे।

हो स्वागत उनका जयध्वनि के नारों से,
हो स्वागत उनका शुभ बन्दनवारों से,
बरसायें उन पर लोग फूल बरसायें
सब लोग उन्हें लादें सुरभित हारों से।

कल-कण्ठ गीत उनके स्वागत के गायें,
निज पलक-पाँवड़े पथ पर लोग बिछायें
यदि 'पलंग-पीठ तज' धरें पाँव वे भू पर
भारत वासी उनके तलुए सहलायें।

---

१. प्रिंस आॅफ वेल्स १७ नवम्बर १६२१ को भारत आए थे। उनके आगमन का भारत के कई स्थानों पर बहिष्कार किया गया और विरोध में कई प्रदर्शन हुए।

यह समाचार पहुँचा भारत के घर-घर,
हो गये लोग अगवानी के हित तत्पर,
युवराज बहादुर का अपूर्व स्वागत हो
आश्चर्य चकित होकर देखे दुनिया भर।

इस असहयोग के युग में उनका स्वागत ?
क्या न्यायी हो अन्यायी को श्रद्धा-नत ?
क्या रहा-सहा सम्मान न पुँछ जायेगा ?
क्या नहीं जमाना देगा हमको लानत ?

इन भावों से थे भड़क उठे दीवाने,
पिंजड़ों के बन्दी सिंह लगे गुर्राने,
शासनादेश की ठेस लगी जब दिल में
वे लौह-सींखचों को सब लगे चबाने।

बम्बई महानगरी में पहला स्वागत,
लो, लन्दन से आये शाही अभ्यागत,
लोगों के मन में लगी कोंधने बिजली
अगवानी के हित घृणा हो गई जाग्रत।

अत्याचारों की मार पड़ रही जब हो,
शासन के मन में घृणा सड़ रही जब हो,
तब कहते वे, हम हँसें और मुस्कायें
आँखों पर लोहू-धार चढ़ रही जब हो।

काले-गोरे का जब बढ़ भेद रहा हो,।
जब व्यंग्यों से कोई उर छेद रहा हो,
हम बढ़ कर उसको कैसे गले लगायें
जो अपमानों से दर्द कुरेद रहा हो।

ये भाव सभी के लगे उरों में जलने,
ज्वालाएँ फैला दीं प्रतिशोध-अनल ने,
जा डटे वीर सब लिए सत्य का आग्रह
आक्रोश-घोष के गोले लगे उगलने—

"युवराज फिरंगी ! जाओ ! वापिस जाओ !
निज घृणा-विदूरित मुख न हमें दिखलाओ !
पुण्यों से सिंचित इस पावन धरती पर
कुत्सित कलंक के घन बन कर मत छाओ !

वापिस जाओ तुम इस भारत की भू से,
झुलसाओ मत तुम इसे द्वेष की लू से,
तुम मुस्कानों का जाल बिछाते हो, पर
दुर्गन्ध घृणा की है आ रही लहू से।

अपना मायावी जाल न यहाँ बिछाओ।
विद्वेष-गरल की धार न यहाँ बहाओ !
कुछ व्यक्ति नहीं, यह भारत बोल रहा है
युवराज बहादुर ! जाओ ! वापिस जाओ ?"

जो गूंज उठे थे स्वागत को, ये स्वर थे,
जलते मशाल-से, लोगों के अंतर थे,
मन जिसका काला, उसके स्वागत के हित
फहराते काले झण्डे भी फर-फर थे।

'वापिस जाओ' के स्वर से ध्वनित गगन था,
वापिस जाओ ! कह रहा यही जन-जन था,
वापिस जाओ ! वापिस जाओ ! के स्वर का
सब दिशा और विदिशाओं में गर्जन था।

युवराज बहादुर चिन्तित थे सुन-सुन कर,
पछताते थे वे अपना सिर धुन-धुन कर,
जो घुमड़ रहा था क्रोध अतिथि पर, उसके
बरसाते थे सब लोग फूल चुन-चुन कर।

गलियों-सड़कों-चौराहों पर ये नारे,
लोगों ने क्रोधित हो-हो कर उच्चारे,
रोके न रुके, दीवाने ऐसे भड़के
होते उपाय शासन के निष्फल सारे।

नगरी में थी विक्षुब्ध रोष की छाया,
जन-सागर ने था भीषण ज्वार उठाया,
जो चन्द्र-किरण-सा रूप सुशीतल लगता
उसने था अपना प्रखर रूप दिखलाया।

वह रूप-नागरी-नगरी उबल रही थी,
जन-मन भावों की दुर्गा मचल रही थी,
जो असन्तोष की आग हृदय में धधकी
वह आग अतिथि पर जनता उगल रही थी।

कुछ भाड़े के टट्टू जय बोल रहे थे,
पर, देश-भक्त स्वर में रिस घोल रहे थे,
कुछ लाल पगड़ियाँ वाले किरचें लेकर
आतंक जमाने अपना, डोल रहे थे।

संकेत मिल गया, अब सैनिक-दल छूटे,
भोली चिड़ियों पर प्रबल बाज थे टूटे,
बरसी थीं अंधा-धुंध लाठियाँ उन पर
लोगों के सर लाठी खा-खा कर फूटे।

पर फिर भी माने नहीं तनिक मतवाले,
दिखलाते थे बढ़-बढ़ कर झण्डे काले,
शासन के पण्डों के निर्मम डण्डे भी
लोगों के मुँह पर डाल न पाये ताले।

फिर वही 'लौट जाओ' की ध्वनि घहराई,
धरती से नभ तक थी ध्वनि यही समाई,
शासन ने जितना-जितना दमन प्रचारा,
जनता उतनी-उतनी अपनी पर आई।

अब थे बन्दूकों ने अपने मुँह खोले,
भुन रहे लोग थे, जैसे भुनते होले,
वे सत्य व्रती थे डटे आन पर अपनी
गोली-वर्षा से उनके हृदय न डोले।

गोली खाकर कुछ वीर भूमि पर सोए,
खुश होते थे गौरांग दूध के धोए (?)
जो मरे—मरे वे अपनी धरती के हित
थे व्यर्थ उन्होंने अपने प्राण न खोए।

यह दमन, बम्बई तक न रहा सीमित था,
इस क्षय से पूरा भारत ही पीड़ित था,
सुख-चैन लोग पाते तो कैसे पाते?
जब दमन फिरंगी के मन में जीवित था।

युवराज जहाँ भी गये वहाँ स्वागत यह,
अपमान हो रहा था, उनको यह दुस्सह,
भारत के प्राणों को नासूर बने वे
पीड़ा कचोटती थी लोगों को रह-रह।

वे गये जहाँ, हड़तालों का ही क्रम था,
लोगों के मन में घृणा-भाव क्या कम था?
विद्वेष जाग बैठा था जन-मानस में
उपचार नहीं उसका निर्मम उपशम था।

जल उठी विदेशी वस्त्रों की थी होली,
कानून भंग करती वीरों की टोली,
मन की उमंग को रोक नहीं पाती थी
लाठी की वर्षा, बन्दूकों की गोली।

शासन का रुख जनता को अखर रहा था,
जन-आन्दोलन प्रतिपल हो प्रखर रहा था,
आक्रोश समाहित था जो जन-जीवन में
इस आन्दोलन द्वारा हो मुखर रहा था।

लाल पगड़ी वालों की होली

सत्याग्रह के नेता की सुन कर बोली,
जनता थी उसके पीछे-पीछे हो ली,
प्रस्ताव वारदोली[1] में पारित करके
गांधी जी ने थी नई गाँठ अब खोली।

जन-नायक ने थी यह आवाज लगाई,
"जेलों से हो लोगों की शीघ्र रिहाई,
जो अर्थ-दण्ड का चक्र चल रहा भीषण
जनता को जाये उससे मुक्ति दिलाई।

कृषकों पर लादे गये भूमि कर रोको,
दयनीय दशा उनकी तो तनिक विलोको,
टोको न उन्हें चल रहे शांति-पथ पर जो
जो उन्हें त्रस्त कर रहे उन्हीं को टोको।

सीखो मानवता अन्य सभ्य देशों से,
दो मुक्ति मनुज को दानवीय क्लेशों से,
मत यों निरीह जनता का गला दबाओ
अपने इन निर्मम हिंसक आदेशों से।

---

१. वारदोली = उत्तर प्रदेश का एक ताल्लुका जहाँ गांधी जी ने अहिंसक-आन्दोलन की योजना बनाई थी।

होकर तटस्थ कुछ चर्चा करो अमन की,
यह नीति छोड़ हिंसा की और दमन की,
पतझड़ के अंधड़ बन कर यों मत हड़पो
शोभा-श्री भारत के इस भव्य चमन की।

वार्ता आज हम मानवता के नाते,
हैं सन्धि हेतु तुमसे इस भाँति चलाते,
अन्यथा अहिंसक आन्दोलन के पथ पर
बढ़ जायेंगे नर-सिंह सभी गुर्राते।"

सत्परामर्श यह शासन ने ठुकराया,
औषधि-निदान रोगी को नहीं सुहाया,
थे लक्षण होने लगे प्रकट अब क्षय के
होती विकार से ग्रस्त नित्य थी काया।

हो गया अवश्यम्भावी था सत्याग्रह,
था सह्य शांति का नहीं किसी को विग्रह,
बढ़ चली अहिंसा आज प्रबल हिंसा का
करने अपने सदुपायों से दृढ़ निग्रह।

जनता आतुर थी, करती वह क्यों देरी ?
चौरीचौरा[1] में बजी युद्ध की भेरी,
छिड़ गया युद्ध सत्याग्रह का था भारी
जन-जाग्रति अहरह लगा रही थी फेरी।

---

१. चौरीचौरा = उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के निकट एक गाँव जहाँ शान्त आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया और परिणामस्वरूप कई पुलिस वाले जीवित जला दिये गये। यह घटना ५ फरवरी १९२२ ई० को हुई थी।

चल-समारोह सज गया शीघ्र तूफानी,
आ जुड़े सहस्रों वीर विकट-बलिदानी,
थे गरज उठे नर-वीर रोष खा-खाकर
"हम नहीं सहेंगे शासन की मनमानी।"

थी डूब रही जनता जय-जयकारों में,
संकल्प-भावना हुई ध्वनित नारों में,
दिशि-विदिशाओं में जय-ध्वनि गूँज रही थी
चौरी-चौरा की गलियों बाजारों में।

था एक तिरंगा भी नभ में फहराता,
दल उसको लेकर चलता था इठलाता,
जय-ध्वनि आती यदि एक कण्ठ से उठकर
वह नारा था पूरा समुदाय लगाता।

जय की ध्वनियों से थर्रा रहा गगन था,
थर्राता जय-ध्वनि से शासन का मन था,
छाती पर उसकी कोई मूँग दले यों
अत्याचारी को कब यह कृत्य सहन था ?

आ समारोह को घेरा सैनिक-दल ने,
लोगों को ललकारा हिंसा के बल ने,
निर्दोष-निहत्थे लोगों के सर पर अब
लो, लगीं लाठियाँ निर्ममता से चलने।

यह चोट न थी केवल लोगों के तन पर,
थी असहनीय यह चोट सभी के मन पर,
भावना तिरोहित व्यक्ति-व्यक्ति की अब थी
अब क्रुद्ध भीड़ जनता की बढ़ी उफनकर।

ललकार उठा नर-नाहर एक गरजकर—
हिंसक प्रवृत्ति का देना होगा उत्तर,
हमको मरना कुत्तों की मौत नहीं है
लाठी का बदला लेंगे, देकर पत्थर।

बदला लेना उनका, जिनके सर फूटे,
हम पर ये हत्यारे कराल हो टूटे,
ये लहू हमारा बहा रहे हैं जैसे
वैसी ही धारा इनके सर से छूटे।"

गर्जना वीर की सुनकर सब हुंकारे,
सब ही ने अपने कोप-धनुष टंकारे,
फन-फना उठे क्रोधांध वीर-भट अगणित
आहत होकर थे काल-व्याल फुंकारे।

हिंसा ने था प्रति-हिंसा को भड़काया,
उन्मत्त भीड़ में ज्वार क्रोध का आया,
चेतना ज्ञान की थी मर चुकी सभी की,
अवचेतन से उठकर दानव गुर्राया।

बदला लेने का भाव बना संक्रामक,
हिंसा का वह लघु रूप होगया व्यापक,
जो भीड़ अभी अनुशासित थी—संयत थी
वह एक लक्ष्य के लिये बनी आक्रामक।

था एक लक्ष्य बस बदला—केवल बदला,
बदला लेने को था सब का मन मचला,
जिसने हमको मारा, हम उसको मारें
बस यही कदम हो हम सबका अब अगला।

बस फिर क्या था, सब झपट पड़े ले पत्थर,
आकुल थे सब देने हिंसा का उत्तर,
जो पन्थ उन्हें वर्जित था नेता द्वारा
बढ़ गई भीड़ थी हिंसा के उस पथ पर ।

आपे के बाहर हुए सभी दीवाने,
फिर प्रलय-मेघ से लगे धरा पर छाने,
थीं बरस चुकीं लाठियाँ सरों पर उनके
वे क्रोधवन्त हो लगे उपल बरसाने ।

जब देखा, ये नरसिंह क्षुब्ध हो जागे,
दुम दबा लाल पगड़ी वाले सब भागे,
बढ़ रही भीड़ थी उनके पीछे-पीछे
वे प्राण बचा कर भाग रहे थे आगे ।

जा छिपे पुलिस थाने में सभी लपक कर,
अब घेर लिया जा उन्हें भीड़ ने सत्वर,
अब पटाक्षेप था उन सबके जीवन का
थी मौत लगी मँडराने उनके सर पर ।

उस क्रुद्ध भीड़ ने झट से आग लगा दी,
यह चिता जीवितों की उसने धधका दी,
हँस रही मौत थी देख-देख कर ज्वाला
खुश होती थी लख जीवन की बरबादी ।

जल उठी लाल पगड़ी वालों की होली,
प्रमुदित थी लख कर मतवालों की टोली,
उनके सर पर थी हुई मौत की वर्षा
जो बरसाया करते थे लाठी-गोली ।

जल मरे, एक अफसर—इक्कीस सिपाही,
थी कितनी भीषण–कितनी करुण तबाही,
इतनों को खाकर भूख मिटी हिंसा की
थी मिली मौत को जीवन-बलि मनचाही।

जन-नायक ने जब समाचार यह पाया,
उसके मन पर दुख का पर्वत अर्राया,
हिंसा थी यह उसके जीवन-दर्शन की
गांधी के मन ने भारी धक्का खाया।

हिंसा का यह खुलकर हुड़-दंग हुआ था,
क्या लाल-लाल आँखों का रंग हुआ था,
हो विवश, सोचता था वह मौन मनस्वी
यह त्याग-तपस्या का व्रत-भंग हुआ था।

आदेश मिला—"यह बन्द करो सत्याग्रह,
यह सत्याग्रह हो गया आज हत्याग्रह,
सिद्धान्त जल उठे हिंसा की ज्वाला में
यह पतन होगई मेरे मन को दुस्सह।

मन में हिंसा के भाव न पलने दूंगा,
इस पथ पर कोई चले, न चलने दूंगा,
जो उगा अहिंसा-सत्य-प्रेम का सूरज
जीवन रहते मैं उसे न ढलने दूंगा।

जो जीवन की बलि ले, बलिदान नहीं है,
सत्पथ की, लोगों को पहचान नहीं है,
आत्मोत्सर्ग बलिदानों की परिभाषा
क्यों सत्य-व्रती को इसका ज्ञान नहीं है ?

क्यों हुई अहिंसा है हिंसा से शोषित ?
क्यों हुई भावना असुर-वृत्ति से पोषित ?
करना होगा हमको इसका प्रायश्चित
मैं यह आन्दोलन बन्द कर रहा घोषित ।

इतिहास के आँसू

चल रहा यान जब हो पूरी द्रुत-गति से,
हों चक्र प्रवर्तित प्रबल वेग की अति से,
चर-मरा उठेंगे उसके सब कल-पुर्जे
यदि उसे रोक दें हम सहसा दृढ़ यति से।

जो बैठे उसमें, सब झटके खायेंगे,
सब एक-दूसरे से ही टकरायेंगे,
जो सम्हलेंगे, मुश्किल से ही सम्हलेंगे
जो सम्हल न पाये, बड़ी चोट खायेंगे।

ऐसा ही सहसा हुआ स्तब्ध आन्दोलन,
जब प्राप्त कर रहा था वह अपना यौवन,
यौवन की गति को मोड़ा तो जा सकता
है किन्तु दमन में विकृति का आवाहन।

आन्दोलन का अवरोध सभी को खटका,
लोगों के मन को लगा तीव्र यह झटका,
यह लगा, चढ़ा कर आसमान पर जैसे
धक्का देकर हो गया भूमि पर पटका।

हो गये सभी के अंजर-पंजर ढीले,
भुना-भुना उठे मन ही मन सभी हठीले,
जन-आन्दोलन का स्थगन देख यह सहसा
सब के सब होते लाल और थे पीले।

यद्यपि जन-नायक जनता में अति प्रिय थे,
उनके प्रति श्रद्धा-भाव सभी सक्रिय थे,
आदेश-वचन इस समय लगे कटु उनके
जो लगते पहले सब को मधुर अमिय थे।

प्रतिक्रिया विकट थी जन-जीवन में व्यापी,
असफलता सबने आदेशों से नापी,
यह कौन कहे, थी भूल हुई नेता से
या क्रिया-शील जनता ही थी अपलापी।

उत्साह-भावना हुई सभी की खंडित,
अपराध एक का, राष्ट्र हुआ था दंडित,
चर्चा सुन पड़ती, भूल हिमालय जैसी
कर बैठा है यह राजनीति का पंडित।

जन-आन्दोलन भी तो रूप एक है रण का,
रण में होता है मूल्य बहुत हर क्षण का,
क्षण भर भी रण में दृष्टि कहीं यदि चूकी
जाता है सपना टूट विजय के प्रण का।

रण-राजनीति में होती क्षम्य कुटिलता,
है चक्र-व्यूह-सी इसमें विकट जटिलता,
होते हैं कितने दाव-पेच आवश्यक
तब कठिनाई से मिलती कहीं सफलता।

है भूल सदा ही भारत करता आया,
है सदा जीत ने उसकी पलटा खाया,
मुँह के बल औंधा गिरा सदा वह रण में
थोथे आदर्शों को जिसने अपनाया।

आदर्श नहीं पाले जाते बन्धन में,
है कभी कुटिलता भी आवश्यक मन में,
जीवन दाता घन में चपला रहती है
है लपट छिपी रहती सुरभित चन्दन में,

हैं इतिहासों के पृष्ठ बोलते दिखते,
अगणित रहस्य वे हमें खोलते दिखते,
आदर्श-वादिता के कारण योद्धा भी
औंधे मुँह गिर कर व्रण टटोलते दिखते।

रण में यद्यपि आवश्यक होता बल है,
पर आवश्यक भी कभी शत्रु से छल है,
जो छल-बल से कर सके युद्ध संचालन
रण-नीति विशारद समझो वही सफल है।

इतिहास साक्षी इसकी हमको देता,
जय और पराजय का निर्णायक नेता,
यदि चूक गया वह, लिखी पराजय निश्चित
यदि सम्हल गया तो विजय वरण कर लेता।

है महँगी हमको पड़ी भूल दुखदाई,
ऐसे ही हमने पराधीनता पाई,
इतिहास कह रहा चीख-चीख कर, हमने
सन सतावन् में यही भूल दुहराई।

यदि स्वामि-भक्ति का ढोंग न भारत करता,
स्वातंत्र्य-समर में बिना मौत क्यों मरता ?
इतिहास और ही कुछ होता अपना, यदि
रण में दिखलाता पूर्ण राष्ट्र तत्परता।

ले आदर्शों की आड़ छिपे कुछ कायर
भारत ने पाये थे डायर[1] ओडायर[2],
दिल्ली कलकत्ता और बम्बई नत थे
हावी थे उन पर लन्दन-लंकाशायर[3] ।

बन गया भूल का कारण चौरी-चौरा,
ऐसी अगणित भूलों का मिलता ब्यौरा,
रण के थोथे आदर्शों के पालन में
गौरी के हाथों मारा गया पिथौरा ।

जो भी बोला, यह बोला—भूल हुई है,
यह सत्याग्रह है, कब यह छुई-मुई है,
इसके प्रवाह में जो पड़ता, बहता है
जो उड़े फूंक से, यह वह नहीं रुई है ।

यदि लोगों का उत्साह नहीं चुक जाता,
यदि आन्दोलन का वेग नहीं रुक जाता,
तो अँग्रेजी साम्राज्यवाद का झण्डा
यह किसे ज्ञात शायद तब ही झुक जाता ।

---

१. डायर=जनरल डायर जो जलयान-वाला बाग के हत्या-काण्ड का मुख्य अधिकारी था ।

२. ओडायर=पंजाब का तत्कालीन गवर्नर जिसने जलयान-वाला बाग में गोली चलाने का आदेश दिया था ।

३. लंदन लंकाशायर=इंग्लैण्ड के दो प्रसिद्ध नगर ।

पर भूल हो गई वह, हमको रोना था,
इतिहास और ही कुछ अपना होना था,
अभिशापों से उर्वरा-भूमि पर अपनी
दुख-दर्द करुण हमको अपना बोना था।

अंकित हैं अपने आँसू इतिहासों पर,
हम गर्व करें क्यों उनके अभ्यासों पर,
जड़ता की जड़ हमको उखाड़नी होगी
जो जमी हुई है भारत की साँसों पर।

ले आदर्शों की आड़ छिपे कुछ कायर
भारत ने पाये थे डायर[1] ओडायर[2],
दिल्ली कलकत्ता और बम्बई नत थे
हावी थे उन पर लन्दन-लंकाशायर[3]।

बन गया भूल का कारण चौरी-चौरा,
ऐसी अगणित भूलों का मिलता ब्यौरा,
रण के थोथे आदर्शों के पालन में
गौरी के हाथों मारा गया पिथौरा।

जो भी बोला, यह बोला—भूल हुई है,
यह सत्याग्रह है, कब यह छुई-मुई है,
इसके प्रवाह में जो पड़ता, बहता है
जो उड़े फूंक से, यह वह नहीं रुई है।

यदि लोगों का उत्साह नहीं चुक जाता,
यदि आन्दोलन का वेग नहीं रुक जाता,
तो अँग्रेजी साम्राज्यवाद का झण्डा
यह किसे ज्ञात शायद तब ही झुक जाता।

---

१. डायर = जनरल डायर जो जलयान-वाला बाग के हत्या-काण्ड का मुख्य अधिकारी था।

२. ओडायर = पंजाब का तत्कालीन गवर्नर जिसने जलयान-वाला बाग में गोली चलाने का आदेश दिया था।

३. लंदन लंकाशायर = इंग्लैण्ड के दो प्रसिद्ध नगर।

पर भूल हो गई वह, हमको रोना था,
इतिहास और ही कुछ अपना होना था,
अभिशापों से उर्वरा-भूमि पर अपनी
दुख-दर्द करुण हमको अपना बोना था।

अंकित हैं अपने आँसू इतिहासों पर,
हम गर्व करें क्यों उनके अभ्यासों पर,
जड़ता की जड़ हमको उखाड़नी होगी
जो जमी हुई है भारत की साँसों पर।

अंगारों का उद्घोष

ज्वाला न उठी थी केवल सागर-तट से,
जागा था सारा देश अनल-आहट से,
गंगा-यमुना का पानी खौल उठा था
अब झड़ते थे अंगारे वंशीवट से।

जो हुआ अंकुरित रोष अशेष हृदय में,
वह प्रतिभासित होता था नील-निलय में,
थी उसी रोष की, फूलों में अरुणाभा
वह लक्षित होता था कोमल किसलय में।

उस ज्वाला से हर अंतर झुलस रहा था,
उससे भारत का घर-घर झुलस रहा था,
उत्तप्त कण्ठ हो रहे उसी के तप से
कोमल-कण्ठों का मृदु-स्वर झुलस रहा था।

इस ज्वाला पर यह डाल दिया क्यों पानी ?
जब लपटों में गति आई थी तूफानी,
अब तो इसकी लौ और भभक उट्ठी है
है झुलस रही इससे घर की ही छानी।

हत-बुद्धि हो गये स्वयं-सेवकों के दल,
उर से उद्वेलित असंतोष की हल-चल,
प्रतिक्रिया बहु-मुखी देती है दिखलाई
भावों की गति हो गई और भी चंचल।

हो गये भंग सब आजादी के सपने,
ढह गये महल सब मंसूबों के अपने,
जो ज्वालाओं में हँस कर कूद पड़े थे
वे लगे आत्म-ज्वाला से सभी तड़पने।

कुछ वे थे जिनकी बुझी नहीं थी ज्वाला,
पथ नया उन्होंने अपने लिये निकाला,
"हम क्रान्ति शस्त्र के बल पर करके भीषण
पा ही लेंगे आजादी की जयमाला।

यद्यपि इस शासन का पंजा भारी है,
आतंकित इससे दुनिया ही सारी है,
पर जिसके उर में भट्टी धधक रही हो
क्या डरपा सकती उसको चिनगारी है?

हम जूझेंगे इस महा-शक्ति से डट कर,
अपना कर भीषण क्रान्ति शान्ति से हटकर,
अपने पागल प्राणों का जोर लगा कर
दिखला देंगे यह सत्ता शीघ्र पलट कर।

हम युद्ध गुरिल्ला कर छापे मारेंगे,
हम असफलता से हृदय नहीं हारेंगे,
अपनी धरती का पाप उतारेंगे हम
गोली से हम पापी को भी तारेंगे।

हम बलि-पंथी बन कर बलिदान करेंगे,
धरती की मिट्टी का सम्मान करेंगे,
हम प्रबल रक्त का परिचय जग को देने
उत्सर्गों के पथ पर प्रस्थान करेंगे।

पीड़ा असह्य हो उठी हमें बन्धन की,
है बीत चुकी अब घड़ी करुण-क्रन्दन की,
हो सावधान अत्याचारी ! अब तुझको
ये उठीं जलाने हैं लपटें चन्दन की।

शोणित में तूफानी उबाल आया है,
भूकंप भावना का कराल आया है,
तेरे विनाश की वेला आ पहुंची है
सर पर मँडराता हुआ काल आया है।

हम महानाश की लपटों पर नाचेंगे,
हम में कितनी है आग, इसे जाँचेंगे,
पढ़ चुके शान्ति के ग्रन्थ सामने तेरे
हो विवश आज खूनी भाषा बाँचेंगे।

डोले ! डोले ! यह धरणी डग-मग डोले,
बरसें ! बरसें ! इस आसमान से शोले
क्षय हो ! क्षय हो ! साम्राज्यवाद का क्षय हो !
सारी दुनिया अब भारत की जय बोले !"

श्रीगुरु-द्वारा आन्दोलन

लेखनी ! नाम फिर भगतसिंह का लिख तू,
उसके अरमानों की लिपि बन कर दिख तू,
कायरता का मस्तक-भेदन करने को
बन जा ज्वाला-मय सिद्ध अचूक विशिख तू ।

लिख बार-बार तू नाम सिंहनी-सुत का,
लिखती चल यश अवदात वीर विश्रुत का,
जिसकी महान अभिलाषाओं की गति लख
लज्जित होता था वेग प्रबल मारुत का ।

था दिया वेग जिसने जन-आन्दोलन को,
था दिया वेग जिसने पंजाब-पवन को,
तू वेग प्राप्त कर उसकी पावन-स्मृति से
तू मचल-मचल उठ उसके यश-लेखन को ।

जन-आन्दोलन रुक गया, उसे यह दुख था,
कर्तव्य-भावना से वह नहीं विमुख था,
इस धरती का दुख था उसका दुख अपना
इस धरती का सुख उसका अपना सुख था ।

पर वह विराम लेने था यहाँ न आया,
वह कर्तव्यों की प्रखर-ज्योति भर लाया,
जब इस पथ का अवरोध हुआ, तो उसने
अब एक नया कर्तव्य-पंथ अपनाया ।

कर्तव्य-क्षेत्र बन गये उसे गुरु-द्वारे,
सुन पड़ते थे उनमें सुधार के नारे,
थी प्रचुर सम्पदा उनमें बह कर आई
हो रहे महन्तों के थे वारे-न्यारे।

सम्पत्ति व्यक्तिगत वे उसको कहते थे,
ऐश्वर्य-भावना में डूबे रहते थे,
आती थी लक्ष्मी अगणित धाराओं से
वे भी अगणित धाराओं में बहते थे।

पर इसे सहन करते कैसे दीवाने ?
वे लगे महन्तों-सन्तों को समझाने,
सम्पति सभी अपने समाज की है यह
इस पर कोई अपना अधिकार न माने।

समझाने से पर वे कुछ समझ न पाये,
उस धन पर उनने अपने दाँत गड़ाये,
बिल्लियाँ लड़ें क्यों ? बन्दर न्याय करेगा
ले न्याय-तुला, अब बन्दर राजा आये।

वह न्याय-दान को शासन तुला हुआ था,
उस मन्दिर का दरवाजा खुला हुआ था,
पर तौल रहा जो न्याय, कहें क्या उसकी
रग-रग में भीषण विष जो घुला हुआ था।

थी भेद-नीति की उनकी चाल पुरानी,
सम्पत्ति देख मुँह में भर आया पानी,
वे पक्ष महन्तों का ही लेकर बोले
उनने सुधार की नब्ज नहीं पहचानी।

अब भड़क उठे, जितने सुधारवादी थे,
वे नहीं अनय सह लेने के आदी थे,
कर्तव्य-ज्योति से उनके उर ज्योतित थे
सिद्धान्त सत्य सब उनके बुनियादी थे।

छिड़ गया अतः यह गुरु-द्वारा आन्दोलन,
गुरु-द्वारों का था साथ दे रहा शासन,
उस ओर संगठित खड़ा अकाली-दल था
कर देने पूंजी का सामाजिक नियमन।

"गुरु-द्वारों का धन, यह समाज का धन है,
स्वामित्व व्यक्ति का इस पर नहीं सहन है,
क्यों नहीं समाजीकरण कोष का होता ?
क्यों व्यर्थ बीच में कूद रहा शासन है ?

हो देख-रेख इसकी पंचायत द्वारा,
यह धन समाज का माना जाये सारा,
यदि नहीं व्यवस्था में होता परिवर्तन
तो सत्याग्रह का है उद्घोष हमारा।

शासन क्यों पथ का रोड़ा हमें बना है ?
लम्बी कृपाण रखना क्यों हमें मना है ?
क्यों गुरु-द्वारों में घुसी हवा बारूदी ?
क्यों हम पर यह किरचों का जाल तना है ?

सरकार धर्म की बातों में क्यों बोले ?
होने दे वह, जो कुछ होना है हो ले,
हम वक्ष खोल कर डटे सत्य के पथ पर
शासन अपनी बन्दूकों के मुंह खोले।"

गर्जना-घोष यह सुना अकाली दल का,
मच गया धर्म-शासन में तीव्र तहलका,
आई समाज की साँसों में भी द्रुत गति
बाजार गर्म था अब फिर चहल-पहल का ।

था भगतसिंह भी कूद पड़ा इस रण में,
था भेद न उसको जीवन और मरण में,
कर रहा विजय का वरण अकाली दल को
विश्वास अडिग दिखता था उसके प्रण में ।

रख लिये केश[1] पगड़ी भी बाँधी काली,
युवकों के दल की उसने डोर सम्हाली,
सत्याग्रह ने यह नया सूरमा पाया
उज्ज्वल-चरित्र, संकल्पवान, बलशाली ।

गुरु-द्वारा आन्दोलन में यौवन आया,
उत्साह नया था सब लोगों ने पाया,
था पूँजी की कर रहा वकालत शासन
छाई थी उस पर उसकी काली छाया ।

---

१. सरदार भगतसिंह सिक्ख होते हुए भी बचपन में केश-धारण नहीं करता था क्योंकि उसका पूरा परिवार आर्य-समाजी विचार-धारा अपनाये था और रूढ़ियों में उनका विश्वास नहीं था ।

भगतसिंह ने केश उस समय कटाये थे जब दिल्ली में क्रान्तिकारियों की केन्द्रीय समिति ने यह निर्णय किया था कि कोई भी क्रान्तिकारी ऐसे चिन्ह धारण नहीं करेगा जिससे उसका धर्म पहचाना जा सके । लोगों की यह धारणा निर्मूल है कि उसने सांडर्स का वध करके, न पहचाने जाने के लिये केश कटाये थे ।

'ननकाना साहब काण्ड'[१] हो गया भारी,
सरकार फिरंगी बनी वहाँ हत्यारी,
निर्दोष-निहत्थे सिक्खों के जत्थों पर
शासन ने की थी भीषण गोला-बारी।

थे गये वहाँ जीवित इन्सान जलाये,
थे मृत्यु-दण्ड जाने कितनों ने पाये,
पर फिर भी विचलित हुए नहीं दीवाने
उनके मन में हिंसा के भाव न आये।

जेलों में ठूँसे गये, मार भी खाई,
पर नहीं दया की माँगी कभी दुहाई,
पा नहीं सके निर्मम शासन के डण्डे
उनकी सहिष्णुता की अकूत गहराई।

---

१. ननकाना साहब = सिक्खों का प्रसिद्ध गुरु-द्वारा जहाँ सत्याग्रही अकालियों को जीवित जलाया गया था और उन पर भीषण गोली-वर्षा की गई थी।

श्रीगुरु का बाग हत्याकांड

ननकाना साहब नहीं एक रण-थल था,
सब जगह दमन का घूमा चक्र प्रबल था,
था इधर दानवी बल अस्त्रों-शस्त्रों का
उस ओर आत्म-बल वीरों का अविचल था।

अब गुरु का बाग[1] बना रण-थल वीरों को,
वे हिला रहे शासन की प्राचीरों को,
कैसी विडम्बना ! बन्दर बन्दूकों से
थे फोड़ रहे इन तेजवान हीरों को।

था आयोजित सह-भोज, वीर-दल आये,
वे इंधन को कुछ वृक्ष काट कर लाये,
"ये वृक्ष हमारे हैं, इनको क्यों काटा ?"
तेवर महन्त जी ने बदले, गुर्राये।

यह बात सेवकों की न समझ में आई,
"सम्पत्ति सभी गुरु-द्वारों की है भाई !"
कुछ कहा-सुनी हो गई, बात बढ़ बैठी
बातों-बातों में ही छिड़ गई लड़ाई।

---

१. श्रीगुरु का बाग = अमृतसर के निकट सिक्खों का एक प्रसिद्ध गुरु-द्वारा जहाँ अकालियों ने अहिंसक आन्दोलन छेड़ा था और महन्तों की ओर से शासन ने इन सत्याग्रही वीरों पर पाशविक अत्याचार किये थे।

सिक्खों के जत्थे लगे बाग में जाने,
शासन के पण्डे लगे उन्हें धमकाने,
वे सत्य-व्रती लेकर कुठार जाते थे
बढ़ जाते थे वृक्षों को काट गिराने।

था उन्हें रोकता शासन भी गोली से,
था प्यार हुआ उसको खूनी होली से,
अभ्यस्त हो गये थे वीरों के दल भी
उसके हथ-कण्डों से उसकी बोली से।

सत्याग्रह करते थे जत्थे के जत्थे,
अस्त्रों-शस्त्रों से थे भिड़ रहे निहत्थे,
सत्-श्री-अकाल! ये बोल-बोल बढ़ते थे
वे फोड़ रहे थे इन लोगों के मत्थे।

हो रहे धराशायी थे वे गिर-गिर कर,
पीछे न पाँव वे हटा रहे थे फिर कर।
वे जीवन के उस पार पहुँचते हठ-मठ
अपने ही लोहू की धारा में तिर कर।

जो मरे नहीं, उन सब को भूखों मारा,
बन गई कँटीले तारों की थी कारा[1],
बन्दूकों की गोलियाँ भले ही खा लें
था नहीं अन्न-दाने का उन्हें सहारा।

१. "एक घेरा डाल दिया गया था और कई दिन तक काँटेदार लोहे के तारों को भेद कर कोई अन्न का दाना भीतर न ले जा सका। जो ले गये उन्हें बुरी तरह पीटा गया।" —स्व० पं० मोतीलाल नेहरू

"अब तक मैंने जितने हृदय-विदारक और करुणा-जनक दृश्य देखे हैं, यह उनमें सबसे बढ़कर है।" —दीनबन्धु एण्ड्रूज

फिर भी उन सब में थी कैसी अलमस्ती,
फाके-मस्ती में भी न झुकी वह हस्ती,
उनमें दृढ़ता भी दृढ़ होकर आई थी
थी नहीं विचारों में भावुकता सस्ती।

प्रतिरोध हुआ भारी, पर वे अविचल थे,
प्राणों की पीड़ा से वे नहीं विकल थे,
सौ टंच स्वर्ण से तपे और निखरे थे
बलिदानों के बल पर वे हुए सफल थे।

थी विजय अन्ततोगत्वा उनने पाई,
शासन को झुकना पड़ा, मात थी खाई,
गुरु-द्वारों की हो गई व्यवस्था समुचित
पंचों के कर में पावन प्रभुता आई।

यह विजय मिली, सब के प्रयत्न द्वारा थी,
तप से निसृत यह गंगा की धारा थी,
मिल गई मुक्ति थी बन्दी विश्वासों को
संकुचित विचारों की टूटी कारा थी।

वीरों के हैं बलिदान न निष्फल जाते,
वे नये-नये अंकुर अगणित उपजाते,
ये अंकुर विकसित हो, बनते तरुवर हैं
शुभ विजय हर्ष के हैं जिनमें फल आते।

थी विजय सभी की, और सभी का श्रम था,
अपने नायक का हाथ न इसमें कम था,
वह इस धरती का भगतसिंह तो था ही
उसकी क्षमताओं में न शेष अब भ्रम था।

आन्दोलन में उसने भी धक्के खाये,
उपहार लाठियों के उसने भी पाये,
पर डटा आन पर रहा वीर वह अविचल
अपने उर में ज्वालाएँ कई छिपाये।

सर्ग सोलह

लाहौर का राष्ट्रीय कॉलेज

टूट चुके थे स्वप्न दासता सिंधु-तरण के,
असहयोग आन्दोलन द्वारा मुक्ति-वरण के।
निरुद्देश्य, निरुपाय, मुक्ति-सैनिक निष्क्रिय थे,
जीवन के ये सूने-सूने क्षण अप्रिय थे।

कर्म साधना ही मानव जीवन की गति है,
गति में यति अनुयोग, कर्म के लिये विरति है।
निष्क्रियता अभिशाप कर्म के पावन प्रण को,
निष्क्रियता है जहर, भूल के दुखते व्रण को।

जीवन में नैराश्य-भाव हमको पातक है,
जीवन का यह अंधकार सब को घातक है।
कर्म-हीनता है जीवन को पंगु बनाती,
यह समाज में नई समस्यायें उपजाती।

नई समस्याओं ने आ हमको भी घेरा,
दिखता था जीवन को कोई नहीं बसेरा।
निरुद्देश्य हो छात्र-वर्ग बन गया समस्या,
बन जाती अभिशाप भंग हो कठिन तपस्या।

गया बड़ों का ध्यान, समस्या का हल निकला,
बदले मन के भाव, हवाओं का रुख बदला।
नये महा-विद्यालय थे जनता ने खोले,
राष्ट्रीय भावों के जिनमें ढलते गोले।

राष्ट्रीय कॉलेज खुला लाहौर शहर में,
जाग उठा था सिंह लाजपत के अंतर में।
"क्यों शासन के ऊपर ही हम सब निर्भर हों ?
क्यों न स्वावलम्बन के पथ पर दृढ़-परिकर हों ?

इन युवकों को राष्ट्रीय शिक्षा हम देंगे,
कर्तव्यों की ज्योति जगा कर ही दम लेंगे।
शिक्षा में भी जहर घोलता यह शासन है,
और अधिक दृढ़ करता जाता यह बन्धन है।

विद्यालय बन गये दासता के यंत्रालय,
इनसे कैसे युवक प्राप्त कर सकें सदाशय ?
इनमें नौकर-शाही के पुर्जे ढलते हैं,
हम हैं जो इनके संकेतों पर चलते हैं।

आँख बन्द करके ही यदि हम चला करेंगे,
तो स्वदेश का फिर कैसे हम भला करेंगे ?
जड़ें संस्कृति की अपनी ये काट रहे हैं,
गहन ज्ञान-गरिमा की खाई पाट रहे हैं।

ये कैसी शिक्षा हम सब को दिला रहे हैं ?
अकर्मण्यता का विष हमको पिला रहे हैं।
निज जातीय गर्व-गौरव हम भूल रहे हैं,
हम सेमर के फूल देख कर फूल रहे हैं।

राष्ट्रीय-चेतना आज सोई जाती है,
मनस्ताप-वेदना आज बोई जाती है।
परंपराओं पर कुठार अनुदिन चलता है,
अपमानों के सांचे में जीवन ढलता है।

फूट-नीति के बीज आज बोए जाते हैं,
जाग्रति के सुविचार आज सोए जाते हैं,
धर्म, नीति, विश्वास, जड़ें सब की हिलती हैं,
इस शासन में ऐसी शिक्षायें मिलती हैं।

अतः आज संकल्प हमारा होगा पावन,
अपनी शिक्षा पर होगा सब का अपनापन।
राष्ट्रीय कॉलेज हमें यह नव-जीवन दे,
इस धरती पर मर-मिटने वाला दृढ़ मन दे।"

राष्ट्रीय कॉलेज देश-भक्तों का गढ़ था,
शिक्षा का उद्देश्य परम पावन था, दृढ़ था।
बहुत योग्य हाथों में इसका संचालन था,
स्वार्थ नहीं, केवल सेवा-व्रत का पालन था।

भाई परमानन्द व्यवस्थापन करते थे,
अर्पित उसको वे निज तन-मन-धन करते थे।
भाई परमानन्द प्राण उच्चादर्शों के,
सुपरिणाम जीवन के अगणित संघर्षों के।

विद्यालय की प्राण-प्रतिष्ठा करते थे वे,
जीवन में नित-नई प्रेरणा भरते थे वे।
विद्यालय को भाई परमानन्द मिले थे,
महाकाव्य को जैसे प्रेरक छन्द मिले थे।

और सूत्र थे जिन हाथों में अध्यापन के,
जो प्रेरक थे छात्र-जगत में अनुशासन के—
वे आचार्य प्रवर, जीवन थे विद्यालय के,
थे श्रीजुगल किशोर प्रेरणा उच्चाशय के।

आँग्ल देश से वे शिक्षा लेकर आये थे,
मुक्त-देश से मुक्ति-भावना भर लाये थे।
वही भावना छात्र-जगत में जगा रहे थे,
ज्योतित उर में मुक्ति भाव जगमगा रहे थे।

अंग पाठ्य-क्रम का न रहा केवल अध्यापन,
रुचिकर क्रिया-कलापों का होता था ज्ञापन।
शिक्षा में जीवन का होता था संयोजन,
भाषण, वाद-विवाद, गोष्ठियों का आयोजन।

और पूज्य गुरु-वर्ग ज्ञान-गरिमा-मंडित था,
पाठ्य-विषय का, हर अध्यापक ही पंडित था।
विद्यालय परिवार-भावना का प्रेरक था,
कर्म-साधना का वह सच्चा उपदेशक था।

पंच-पांडव

कहते हैं—कॉलेज बिना आता न ज्ञान है,
ज्ञान और विज्ञान सभी की यही खान है।
कुछ भी हो, इस जीवन में कितनी मस्ती है,
रंग-भूमि यह तो मस्तानों की बस्ती है।

जो अल्हड़ता इस जीवन में पाई जाती,
उसकी मीठी याद सदा जीवन में आती।
वह गप-शप कह-कहे हँसी के वे फव्वारे,
सभी समझते हैं अपने को फिल्मी तारे।

वह बनाव-शृंगार और व्यक्तित्व प्रदर्शन,
यह यौवन के मीठे सपनों का सम्मोहन।
वह जीवन स्वच्छन्द और वह ऊधम-बाजी,
जिसमें रमते-राम सभी रहते हैं राजी।

वह मीठी गुद-गुदी, प्रेम की छेड़-छाड़ वह,
वह स्नेहिल व्यवहार, मित्रता प्रिय प्रगाढ़ वह।
नित-नूतन मौलिक शरारतों की सरगर्मी,
शैतानी में एक-दूसरे के सह-धर्मी।

इस जीवन में सभी भाव ये पाये जाते,
इस जीवन में मधुर गीत ही गाये जाते।
ये सब बातें राष्ट्रीय इस विद्यालय में,
इसके क्रिया-कलाप डालते मन विस्मय में।

इधर देखिए! दिखते हैं जो ये मतवाले,
जीवन में स्वातन्त्र्य-भावना के रखवाले।
चेहरों से ही हैं मस्ती के भाव झलकते,
घण्टों बातें करें, नहीं किंचित भी थकते।

विद्यालय में है प्रसिद्ध इनकी यह टोली,
भावों में है साम्य और वय में हमजोली।
एक-दूसरे से बढ़ कर सब छँटे हुए हैं,
नये-नये हथकण्डे इनको रटे हुए हैं।

उत्सुक होंगे आप, जान-पहचान करा दूं,
परिचय के क्रम में इन सबका हाल बता दूं।
सुनिएगा! ये पंच-पाण्डव कहलाते हैं,
अच्छे-अच्छे इन लोगों से कतराते हैं।

इनसे मिलिए—ये जो काली पगड़ी वाले,
कन्धों पर खद्दर का मोटा कुर्ता डाले—
पैंट-पाजामा नहीं, बाँध लुंगी आये हैं,
कार्टून बन जाने को ये ललचाये हैं।

मन से मस्ती की फुहार क्या छूट रही है,
नई उमर इनकी, अगणित यश लूट रही है।
मन के मौजी, भगतसिंह ये कहलाते हैं,
इसी वेश में कभी-कभी कॉलिज आते हैं।

कूद चुके ये असहयोग सत्याग्रह रण में,
अविचलता पाई जाती है इनके प्रण में।
नाम कमाया है गुरु-द्वारा आन्दोलन में,
खेल चुके हैं कई खेल अपने जीवन में।

मित्र-मण्डली में ये सब के आकर्षण हैं,
संकल्पों की पूर्ति और ये अडिग चरण हैं।
पढ़ने में भी अच्छे, अच्छे लड़ने में भी,
दर्जा एक फाँद कर ऊपर चढ़ने में भी।

प्रिय लगता है इनको हँसना और हँसाना,
इनको आता है लोगों को मूर्ख बनाना।
कभी-कभी ये खुद ही बुद्धू बन जाते हैं,
इसी भाँति ये मित्रों का मन बहलाते हैं।

■ ■ ■

इनसे मिलिये—भगतसिंह के परम मित्र हैं,
मातृ-भक्ति के भाव लिये उर में पवित्र हैं।
चेहरे पर गम्भीर भाव इनके दिखते हैं,
केवल ये 'यशपाल' नाम अपना लिखते हैं।

दिखते हैं ये यद्यपि दुबले-पतले तन से,
उतने ही दृढ़ व्रती किन्तु ये अपने मन से।
अपनी वय से अधिक मनन-चिन्तन करते हैं,
अध्यवसायी बने स्वावलम्बन करते हैं।

मित्रों द्वारा कलाकार ये माने जाते,
मौलिक-लेखन में ये अपनी रुचि दिखलाते।
थोड़े दिन ये गुरु-कुल में भी रह आये हैं,
गंगा की धारा में सचमुच बह आये हैं।[1]

---

१. एक समय यशपाल अपनी माँ के साथ नाव में बैठ कर गंगा पार कर रहे थे। बीच में ही नाव डूब गई। कुशल तैराक होने के कारण यशपाल ने अपनी तथा माँ की भी जान बचाई।



विश्व-विख्यात कथाकार क्रान्तिदर्शी
यशपाल तब ऐसे थे ।

इनसे मिलिए, भगतसिंह के परम मित्र हैं,
मातृ-भक्ति के भाव लिये उर में पवित्र हैं।
चेहरे पर गंभीर भाव इनके दिखते हैं,
केवल ये 'यशपाल' नाम अपना लिखते हैं।

दिखते हैं यद्यपि ये दुबले-पतले तन से,
उतने ही दृढ़-व्रती किन्तु ये अपने मन से।
अपनी वय से अधिक मनन चिन्तन करते हैं,
अध्यवसायी बने स्वावलम्बन करते हैं।

कला और साहित्य अभी से इनको प्रिय हैं
अपने दल के सब कामों में ये सक्रिय हैं।
रँगे हुए हैं देश-भक्ति के पक्के रँग में,
है विचित्रता कुछ औरों से इनके ढँग में।

नई उमंगें मन में, इनकी नई उमर है,
दुनिया में क्या कहाँ हो रहा इन्हें खबर है।
सब साथी इनकी बातों में रुचि लेते हैं,
ये भी उनको परामर्श सच्चा देते हैं।

▪ ▪ ▪

अब इनसे मिलिए—साथी जयदेव गुप्त हैं,
जीत लिया है क्रोध, नहीं होते प्रकुप्त हैं।
ये मृदु-भाषी, मित-भाषी गुम-सुम रहते हैं,
जो भी कहते बात, बहुत अच्छी कहते हैं।

मित्रों को अतिशय उदार हैं, कोमल मन है,
सीधा-सादा और सरल इनका जीवन है।
रुचि लेते हैं पढ़ने-लिखने की बातों में,
किन्तु साथ भी देते घातों-प्रतिघातों में।

ये संवेदन-शील और मित्रों को स्नेहिल,
मातृ-भूमि की मुक्ति-भावना से उर फेनिल।
मित्रों का विश्वास प्राप्त ये किये हुए हैं,
सेवा का संकल्प हृदय में लिये हुए हैं।

▪ ▪ ▪

अब इन सज्जन से मिलिए—सुखदेव नाम है,
मित्रों को सुख देना, इनका यही काम है।
मित्र-मंडली में इनको भी सुख मिलता है,
मित्रों के दर्शन से इनका मन खिलता है।

हैं तन से बलिष्ट पर मन में भोलापन है,
बहुत खरा व्यवहार, आचरण भी पावन है।
सच्चे मित्र-भाव इनके मन में रहते हैं,
बुरी भले ही लगे, बात सच्ची कहते हैं।

चिढ़ते हैं ये आडम्बर के व्यवहारों से,
कुछ विशेष रुचि नहीं इन्हें लोकाचारों से।
जो मन में आ जाये ये उसको करते हैं,
ये मन-मौजी, नहीं किसी से भी डरते हैं।

इनके मन पर प्रबल झोंक रहती सवार है,
जोखिम के कामों को दिल रहता उधार है।
इनको अच्छा मान प्राप्त है अपने दल में,
कह देता तन, नहीं किसी से कम ये बल में।

• • •

अब देखिए इन्हें, दिखते जो भाव-प्रवण हैं,
इनसे मिलिए—ये साथी भगवतीचरण हैं।
ये वरिष्ठ हैं इन सबसे अनुभव में, वय में,
इनका आदर करते हैं सब विद्यालय में।

डूब चुके ये देश-भक्ति में गले-गले हैं,
ये दुष्टों को दुष्ट, भले के लिये भले हैं।
सोच-समझ कर सदा काम करने के आदी,
इनके मन के सभी भाव रहते फौलादी।

हैं गृहस्थ, पर इन्हें अध्ययन से अति रुचि है,
मित्रों के प्रति स्नेह-भावना भी अति शुचि है।
तन से, मन से, धन से सब की सेवा करते,
मित्र-मण्डली में रह कर स्वच्छन्द विचरते।

देश-मुक्ति का ये मन में व्रत ठान चुके हैं,
कर्तव्यों की दिव्य-ज्योति पहचान चुके हैं।
मन में दृढ़ता और कर्म में तत्परता है,
इनका भाषण सब लोगों का मन हरता है।

तो परिचित हो गये आप अब इनके दल से,
अब परिचित हो गये आप इनकी हल-चल से,
देश-मुक्ति की धुन ही इन सब पर सवार है,
मातृ-भूमि से इन्हें अनिर्वचनीय प्यार है।

हो स्वतन्त्र यह देश, इन्हें बस यही साध है,
इनके उर में देश-प्रेम अतिशय अगाध है।
जीवन की गति यही, यही इनका चिन्तन है,
खटक रहा इनको अपनी माँ का बन्धन है।

क्रांति-संगठन के सूत्रधार

छात्र-वृन्द क्यों क्रान्ति-साधना में कुछ कम हों ?
श्री विद्यालंकार जहाँ जयचन्द स्वयं हों।
ये गुरु हैं, विद्यालय में करते अध्यापन,
बड़े प्रेम से करते सब के मन पर शासन।

भारतीय इतिहास विषय के विशेषज्ञ हैं,
अध्यापन-पटु, कुशल प्रवक्ता और प्रज्ञ हैं।
नहीं लादते ये शिष्यों को ज्ञान-भार से,
समझाते हैं वत्सलता से और प्यार से।

तर्क और चिन्तन का उत्प्रेरण करते हैं,
सत्य-ज्ञान का ही वे अन्वेषण करते हैं।
कक्षा में अन्यान्य विषय भी चर्चित होते,
ज्ञान-सिंधु में सदा लगाये जाते गोते।

अध्यापन से भिन्न और भी जीवन-क्रम है,
राष्ट्रीयता का प्रसार भी नित्य-नियम है।
करते ये ही क्रान्ति-सूत्रों का संचालन,
निज कर्तव्यों का करके दृढ़ता से पालन।

ये सब की रुचियों के अच्छे अन्वेषक हैं,
क्रान्ति-पंथ के मँजे हुए ये निर्देशक हैं।
धीरे-धीरे सब के मन को परख चुके हैं,
पंच-पाण्डवों के प्रति ही ये अधिक झुके हैं।

साधा है संपर्क गुह्यतम एक-एक से,
करते ऐसे काम बड़े ही ये विवेक से।
भेद सभी के मन का ये गुप-चुप लेते हैं,
जो दिखता जिस योग्य मंत्र वैसा देते हैं।

आप जानते क्या, ये क्या इस समय कर रहे ?
भगतसिंह के कानों में गुरु-मंत्र भर रहे।
"बेटे तुमको परख चुका हूँ बहुत निकट से,
इसीलिये विश्वास जम गया तुम पर झट से।

है मुझको विश्वास काम तुम बड़ा करोगे,
तुम दोगे झकझोर, देश को खड़ा करोगे।
राष्ट्र-चेतना सब के प्राणों में फूँकोगे,
कर्तव्यों के पथ से तुम न तनिक चूकोगे।

साथ तुम्हारा, क्या यशपाल निभा सकता है ?
परखो उसको कितना गहरा जा सकता है।
करके देखो बात, खोज कर अच्छा अवसर,
देखो, क्या वह गोपनीय कामों को तत्पर।

हुई वार्ता जो अपनी, उल्लेख न करना,
रावी में नौका-विहार के लिये विचरना।
बातों-बातों में ही लेना तुम उसका मन,
बतलाना मुझको, कैसा क्या उसका चिन्तन।

इस बातों में गोपनीयता आवश्यक है,
बात उसी से करो जिसे सुनने का हक़ है।
मन का भेद मुखाकृति के भावों से जानो,
परखे बिना किसी को अपना मित्र न मानो।

नेता का आदेश पूर्ण हो,- तर्क नहीं हो,
ऐरों-गैरों से कोई संपर्क नहीं हो।
जो जितना अधिकारी, उससे उतना बोलो,
जाओ ! अपने परम मित्र का हृदय टटोलो।"

"गुरुवर ! आज्ञा शिरोधार्य, पर एक निवेदन,
कई बार ही परख चुका हूँ मैं उसका मन।
उसे साहसी-संकल्पी ही मैंने पाया,
इसी लिये तो उसको अपना मित्र बनाया।

कहा आपने, बात करूँगा उससे खुल कर,
लूंगा मन की थाह नित्य उससे मिल-जुल कर।
क्रान्ति-मंत्र जो दिया पूज्यवर ! मैं कृतज्ञ हूँ,
हो यदि कोई भूल, क्षम्य हो, अभी अज्ञ हूँ।

बहुत दिनों से घुमड़ रही थी बात हृदय में,
किन्तु अभी तक कर न सका था कुछ निश्चय मैं।
आज आपने जो इस भाँति मुझे अपनाया,
उपकृत हूँ मैं अगम-ज्ञान है मैंने पाया।

आज भ्रमित मन को जैसे आधार मिला है,
खोज रहा था जिसे, मुक्ति का द्वार मिला है।
अब कर्तव्य-पंथ आगे है, यह जीवन है,
जीवन ही कर्तव्य-पूर्ति का लघु-साधन है।

यदि धरती के हित जीवन उत्सर्ग कर सका,
जो मेरी कल्पना, अगर वह मौत मर सका—
तो गुरुवार ! हो ज्ञात, किया उपदेश ग्रहण है,
कर्त्तव्यों की पूर्ति आज से पावन प्रण है।"

"जीवन का उत्सर्ग न केवल वत्स मरण है,
यह जीवन ही कर्म-भूमि है, जीवन रण है।
जीवन की प्रत्येक साँस का सदुपयोग हो,
जीवित रहकर ही संकल्पों का नियोग हो।

मृत्यु सुनिश्चित, फिर उसका करना क्या चिन्तन ?
जीवन से ही करो, देश को गौरव-अर्जन।
जीवन का साफल्य, देश के उत्कर्षों में,
जाओ वत्स! तुम्हारी जय हो संघर्षों में।"

खूब गुजरेगी
जब
मिल बैठेंगे दीवाने दो

शान्त तपोवन-सा दिखता यह रावी का तट,
सुन पड़ती है चपल लहरियों की लघु आहट।
मृदुल समीरण जगा रहा है मृदु-संवेदन,
देख रहा है वह विमुग्ध लहरों का नर्तन।

लज्जा का आवरण, अरुणिमा सांध्य-गगन की,
प्यास और बढ़ती जाती है ढीठ पवन की।
पुलक स्पर्श से लहरों का आन्दोलित उर है,
मादकता प्रसरित है, वातावरण मधुर है।

रावी ही क्यों, स्वयं प्रकृति भी दिखती उर्मिल,
मन की मधुर भावनाएँ हैं स्नेहिल-फेनिल।
उर की सुषमा बाहर आकर बिखर रही है,
प्रकृति-वधू की आभा पल-पल निखर रही है।

धीरे-धीरे लो, अरुणाभा हुई तिरोहित,
मलिन कान्ति हो चली प्रकृति की व्रीड़ा लोहित।
अब घूमिल हो चला प्रकृति का निर्मल अंचल,
सरिता का भी ऊर्मि-जाल अब रहा न चंचल।

लो, हो चलीं दृष्टि-गोचर ये दो आकृतियाँ,
प्रकृति-पर्यवेक्षण को ये आ रहीं सुकृतियाँ।
दो मित्रों की आकृतियाँ ये यहाँ उदित हैं,
है गंभीर-भावना मुख पर, पर प्रमुदित हैं।

आये ये इस ओर यहाँ नौका-विहार को,
देख रहे ये रावी की उन्मुक्त-धार को।
तट से तरणी खोल, लगे लहरों में खेने,
पतवारों को लगे बाहुओं का बल देने।

दोनों ही हैं मौन, न कोई बोल रहा है,
मन्द समीरण और शान्त हो डोल रहा है।
लहरों पर तिर रही नाव है मंथर-मंथर,
सर-सर स्वर से मुखरित है सरिता का अंतर।

धीरे-धीरे चन्द्र क्षितिज से उदित हो रहा,
निशिकर यह, दिन में था जाने कहाँ सो रहा।
मौन भंग हो गया, ध्वनित लो अब यह स्वर है—
"क्यों भाई यशपाल ! चन्द्र को किसका डर है ?

देख रहे हो पीला-पीला इसका मुख है,
क्या इसको भी हम जैसा ही कोई दुख है ?"
भगतसिंह ने सुना, "दु:ख है इसको भारी,
इसको छूने की मानव करता तैयारी।

जो मानव कर रहा धरा को यहाँ कलंकित,
वही छुएगा, चन्द्र इसी से है आतंकित।
इस भय से ही उसका मुख है पीला-पीला,
मानव करने चला वहाँ भी दानव-लीला।"

"बड़े पते की बात कही है तुमने प्रियवर !
चन्द्र-लोक जाने को मानव दिखता तत्पर,
भेद-भाव के बीज वहाँ भी यह बोएगा,
चाँद बिचारा आठ-आठ आँसू रोएगा।

यह धरती की घृणा वहाँ भी ले जायेगा,
गोरे-काले का अंतर भी फैलायेगा।
धरती पर अत्याचारों से भरा नहीं मन,
इसीलिये बन रहा गगन अब उसका आँगन।

यहाँ मनुज की साँसों पर हावी है कंचन,
अपने प्रति ही मानव का यह विकट प्रवंचन।
करता शासन एक, दूसरा उससे शासित,
करता शोषण एक, दूसरा उससे तापित।"

बोल उठे यशपाल, "बात क्या ऐसी प्रियवर !
क्यों भावुक हो रहे आज, क्या इसका अवसर ?
संकल्पों के लिये भावना होती बाधक,
भावों में बह, मार्ग भूल जाता है साधक।

ठानें दृढ़ संकल्प, तजें हम सरल तरलता,
करें जटिल प्रण आज, रहे जो उर में जलता।
मातृ-भूमि के लिये करें हम जीवन-अर्पण,
करें धरा का आज शत्रु-शोणित से तर्पण।

क्या मेरा प्रस्ताव भगत ! तुमको रुचिकर है ?
सोचो, चिन्तन करो, तुम्हें इसका अवसर है।
अपने मन की बात प्रकट की मैंने तुम पर,
बहुत बड़ा दायित्व आज आया है हम पर।"

"छीनी है यशपाल बात तुमने यह मेरी,
होठों पर थी रुकी, हुई कहने में देरी।
पर यह तुमने कही, हुआ क्या इसमें अन्तर ?
हैं विचार भी एक, एक अपना अभ्यंतर।

तो यह मेरा वचन और संकल्प अटल है,
आज साक्षी रावी का यह पावन जल है।
मातृ-भूमि को अर्पित है उर की हर धड़कन,
मातृ-भूमि हित इन साँसों का होगा स्पन्दन।

मातृ-भूमि के लिये आज से जीवन होगा,
जीवन के हर क्षण में अब यह चिन्तन होगा।
जैसे भी बन सके, देश को मुक्त करेंगे,
मातृ-भूमि के लिये जियेंगे और मरेंगे।

दो दीवाने आज कर रहे हम यह प्रण हैं,
पराधीनता के दुखते अब उर में व्रण हैं।
अब स्वातंत्र्य-समर ही होगा लक्ष्य हमारा,
यह साम्राज्य-वाद ही होगा भक्ष्य हमारा।

लो यह मेरा हाथ, हाथ दो मुझको अपना,
व्रत है अपना एक, एक अब अपना सपना।
जो है अपना स्वप्न उसे हम सत्य करेंगे,
इस सपने में रँग नहीं, हम रक्त भरेंगे।

रहे साक्षी प्रण की, यह रावी की धारा,
हमें चाहिये भँवर, चाहिये नहीं किनारा।
तूफानों का वेग, रक्त में प्रवहमान हो,
प्राणों का उन्माद मुक्ति का नव-विहान हो।"

डाकू और लड़ाकू

छात्र-वृन्द ये बैठे-बैठे करते हैं कुछ गप-शप-बाजी,
सुना रहे हैं कोई-कोई खबरें लाकर बासी-ताजी।
कहा एक ने, "चर्चाएँ हैं, होती है गुप-चुप तैयारी,
भीषण क्रान्ति सुलगने को है, होने को है विप्लव भारी।

अपने इस विद्यालय में भी, गुप-चुप गुप-चुप क्रान्ति पल रही,
ऐसे कई हौसले वाले जिनके दिल में आग जल रही।"
कहा दूसरे ने, "मैंने भी इन बातों की भनक सुनी है,
कुछ लोगों ने राह क्रान्ति की, गांधी जी से अलग चुनी है।

अपने कोई प्रोफेसर जी, क्रान्ति अखाड़ा गोड़ रहे हैं,
धीरे-धीरे कुछ लोगों को, वे इस पथ पर मोड़ रहे हैं।
चर्चा है—गांधीजी के सब हथ-कण्डे हो गए पुराने,
इसीलिए तो नया-पंथ अब खोज रहे हैं कुछ दीवाने।

सीधी उँगली घी न निकलता, होती व्यर्थ सभी बक-झक है,
धूम-धड़ाके-बाजी करना इसीलिए अब आवश्यक है।
जो कुछ होता अच्छा ही है, हमें चाहिए चुप ही रहना,
बहने वालों को बहने दें, संभव नहीं हमें यदि बहना।

कुछ तो हो, इस विद्यालय का अच्छा नाम चमक जायेगा,
जो गुप-चुप हो रहा संगठन, सचमुच बहुत काम आयेगा।
आज देश को छात्र-वर्ग से कई अपेक्षित शुभ आशाएँ,
आज समय की यही माँग है, छात्र-वृन्द कुछ कर दिखलाएँ।"

हाँ, यह एक दूसरा दल है, सुनिए ! बातों का क्या क्रम है,
पंच-पाण्डव-दल दिखता है, तो क्या इसमें भी कुछ भ्रम है।
और कहाँ पाई जा सकती, यह अल्हड़ता—यह अलमस्ती,
और ढंग की इनकी दुनिया, और ढंग की इनकी हस्ती।

जिधर-जिधर यह चलती टोली, उधर-उधर अंधड़-सा चलता,
उथलापन किंचित न मिलेगा, है इनकी गम्भीर चपलता।
यदि अपनी पर आ जाएं तो नभ में भी थिगलिया लगा दें,
कुछ करने पर तुल जायें तो, तारे तोड़ धरा पर ला दें।

लड़कर और झगड़ कर इनसे बाजी कौन जीत पायेगा ?
जो कोई उलझेगा इनसे, वह उलटी मुँह की खायेगा।
जोर आजमा चुके कई दल, उलझ चुके हैं इनके दल से
किन्तु मात ही खाई सबने इनके ज्ञान, बुद्धि से, बल से।

ये इस समय यहाँ भी कैसे हू-हल्लड़ में रमे हूए हैं,
ये कितने स्वच्छन्द भाव से, इस प्राङ्गण में जमे हुए हैं।
भगतसिंह-जयदेव उलझते देते आपस में दिखलाई,
छीन रहा यह उससे पैसे, कुछ खाने की मन में आई।

किसी जेब में भी पैसे हों, वे सब हथियाए जाते हैं,
छीना झपटी करके पंचों द्वारा वे खाए जाते हैं।
मुँह माँगे मिल गया, मजा क्या ? छीन-झपट जब हम खाते हैं,
इसमें वह रस मिलता जिसको देख देवता ललचाते हैं।

भगतसिंह इस कठिन कला का विशेषज्ञ समझा जाता है,
समझो वस्तु इसी की है वह, जिस पर इसका मन आता है।
माखन-चोर रहे थे मोहन, यह भी उनसे क्या कुछ कम है,
मक्खन-घी जो कुछ मिल जाये, गटा-गट्ट सब इसे हजम है।

पहुँच छात्रावास गया तो, साथी चौकन्ने हो जाते,
घी या मक्खन जो कुछ भी हो, यत्न-पूर्वक उसे छिपाते।
भाई भी कम चंट नहीं है, यह सुराग पा ही जाता है,
चोरी-छिपे उजागर, उनका यह मक्खन खा ही जाता है।

मित्र कर रहा हो भोजन, तो बिना बुलाए आ जायेगा,
एक ग्रास में ही मक्खन पर हाथ साफ कर दिखलायेगा।
अगर दाल में घी तिरता हो, एक घूँट में पी जाएगा,
मित्र और घी दोनों के ही, बड़े प्रेम से गुण गायेगा।

पंडित राजाराम शास्त्री, जो अध्यक्ष पुस्तकालय के,
लंगर में छिप-छिप कर भोजन करते मारे इसके भय के।
किन्तु कभी लग गये हाथ तो उनका मक्खन चट कर जाता,
चिल्लाते ही रह जाते वे, यह करनी से बाज न आता।

स्नेहिल स्वर, कृत्रिम भय से वे चिल्लाते—"यह जट्टा आया,
अरे बचाओ! मेरा मक्खन छीन-झपट कर इसने खाया।"
पर जट्टे ने पूरी थाली पर अपना अधिकार जमाया,
थाम उसे ऊँचे हाथों में, पंडित जी को खूब दुँगाया।

इसीलिये तो मित्र गाँव से जब ताजा घी-मक्खन लाते,
तो इस डाकू और लड़ाकू को वे पहली भेंट चढ़ाते।
फिर यह उनको तंग न करता, रहते वे निश्चिन्त भाव से,
छोटे-मोटे डाकू भी चुप रहते हैं इसके प्रभाव से।

इसका दिल भी सब मित्रों को हरदम खुला हुआ रहता है,
जो कुछ हो, यह उन्हें लुटाने बिल्कुल तुला हुआ रहता है।
तो इस समय मित्र से उलझा, छीन रहा है उससे पैसे,
और मित्र जयदेव गुप्त भी पैसे देते ऐसे कैसे।

कहता जाता—"पैसों के प्रति वणिक-वृत्ति क्यों तुम में आई ?
चलो वहाँ तिल गुड़ खायेंगे पंच-पाण्डव भाई-भाई।"
कथन गुप्त का है—"मित्रों को हँस कर अपनी जान लुटा दूँ,
किन्तु बात यह कान खोलकर सुन ले, मैं तुझको समझा दूँ—

अगर छीन कर लेगा कोई, रुपया हो, पैसा या पाई,
उससे डट कर युद्ध करूँगा, वह हो शत्रु, मित्र या भाई।"
किन्तु युद्ध तक बात न पहुँची, पंचों ने दे डाला निर्णय,
'भगत न छीने, तुम्हीं खिला दो' मान गए यह बात पक्ष द्वय।

क्रान्ति का बुद्ध
भूखे वृद्ध को देखकर भभक उठा

फाटक के बाहर जा पहुंचे खुशी-खुशी सब तिल-गुड़ खाने,
हुई संधि सम्मानजनक थी, जा पहुँचे सब खुशी मनाने।
देखा एक वृद्ध बैठा है, बेच रहा है अपना गुड़-तिल,
अरे तौलने में भी इसको, देखो पड़ती कितनी मुश्किल।

बूढ़े हाथ काँपते थर-थर, तुला नहीं उनमें थम पाती
वृद्ध रक्त में जितनी गर्मी, वह ठण्डी होकर जम जाती।
ठिठुर गई उंगलियाँ सभी तो, फिर वह उनसे कैसे तोले ?
करता है असफल हो होकर फिर प्रयत्न वह हौले-हौले।

किन्तु उँगलियाँ काम न देतीं, उनमें थमती नहीं तराजू,
देख रहे सब मित्र हाल यह, वहाँ खड़े हो आजू-बाजू।
देख-देख कर दशा वृद्ध की, खड़े-खड़े सब खिन्न हो रहे,
जग-जीवन की विषम जटिलता देख-देख प्रक्लिन्न हो रहे।

भूल गया है भगतसिंह अब सब अलमस्ती अपने मन की,
देख रहा है दशा वृद्ध की गति समाज के इस जीवन की।
तन से वहाँ उपस्थित मन से वह भावों में डूब गया है;
तरुण तपस्वी इस समाज की गति-विधियों से ऊब गया है।

"यह समाज है जहाँ बुढ़ापे को यों भूखों मरना पड़ता,
युवक उड़ाते हैं गुलछर्रे, वृद्धों को श्रम करना पड़ता।
जो वृद्धावस्था जीवन भर चल कर लगती थकी-थकी-सी,
लगती है प्रत्येक साँस ही जिसकी बिलकुल पकी-पकी-सी।

जो विश्राम चाहती श्रम से, जिसका लक्ष्य मनन-चिन्तन है,
भूख-ज्वाल से भूल रही वह वृद्धावस्था अपनापन है।
जो दिन हैं आशीष लुटाने, सुख से बैठ भजन करने के,
उन्हीं दिनों को यहाँ पड़ रहे लाले आज पेट भरने के।

इस समाज में हाय! विषमता की कैसी विष वायु चल रही,
भूखों मरता यहाँ बुढ़ापा रो-रोकर है आयु ढल रही।
यह कैसा समाज है जिसमें एक बैठकर मौज उड़ाए,
और दूसरे को, जीवन ही अपने लिये भार बन जाये।

राग-रंग में एक डूब कर ढाले नित प्याले पर प्याले,
और दूसरे को नित-प्रति ही पड़ें पेट भरने के लाले।
सुख की छाया में सो-सोकर एक यहाँ देखे मृदु सपने,
जीवित रहे दूसरा केवल आहें भरने और तड़पने।

चोरों बटमारों का दल है कौन इसे कहता समाज है,
यहाँ नग्न हो रही सभ्यता, यह दुर्योधन का सुराज है।
यहाँ आचरण का—लज्जा का, होता नित ही अनावरण है,
जिसकी लाठी—भैंस उसी की, यही न्याय का निराकरण है।

खून चूस कर जो जीते हैं, चलते हैं वे सीना ताने,
श्रम के साधक जुटा न पाते यहाँ पेट भरने को दाने।
धन कुबेर कहलाते हैं जो, घड़ा पाप का वे भरते हैं,
धर्म-कर्म से डरने वाले, समझो वे भूखों मरते हैं।

यहाँ कलुष पर दान-शीलता का आवरण चढ़ाया जाता,
बलि-वेदी पर बड़े गर्व से सत्याचरण चढ़ाया जाता।
पता नहीं चलता ईश्वर का, पैसा ही भगवान बन गया,
नारायण बनने वाला नर, पैसा पा हैवान बन गया।

रौंद-रौंद चलता औरों को, नित्य गालियाँ खा जीता है,
मानव-में दानव आ बैठा, रक्त और आहें पीता है।
जब समाज की यह गति-विधि है, क्यों इस पर बिजलियाँ न गिरतीं ?
इसे लीलने प्रलय घटाएँ क्यों न आज आ-आ कर घिरतीं ?

क्यों लपटों की उग्र चेतना इसको नहीं निगल जाती है ?
क्यों विनाश की भूख उमड़ कर इसको आज नहीं खाती है ?
आहों की आँधी में उड़ यह क्यों न रसातल को जाता है ?
ध्वस्त नहीं होता समाज क्यों ? कौन पुण्य आड़े आता है ?

इस समाज में रहना है तो इसको हमें बदलना होगा,
जो हम पर फुफकार रहे फन, उनको हमें कुचलना होगा।
मानव-मानव में प्रस्थापित करनी होगी हमको समता,
प्रस्थापित करनी ही होगी, हमको श्रम की पावन क्षमता।

यदि ऐसा कर सके नहीं तो जीवन का क्या और प्रयोजन ?
क्रान्ति फूंकने का समाज में करना ही होगा आयोजन।"
"कब तक खड़े रहोगे भाई! क्या न यहाँ से है अब चलना ?"
कहा गुप्त ने भगतसिंह से—"मन में प्रबल कौन-सी छलना ?"

भंग मूर्छा हुई भगत की, वह विस्मृति से सुधि में आया,
गुड़-तिल वाला हाथ गुप्त ने, उसके सम्मुख प्रकट बढ़ाया।
बोला—"पहले झगड़ रहे थे, किन्तु नहीं अब क्यों खाते हो ?
किन भावों के सागर में तुम, डूब-डूब कर उतराते हो ?

उचित मूल्य दे दिया वृद्ध को, है यह सभी माल अब अपना,
इस पर हाथ साफ करना है, दिखलाओ कमाल अब अपना।
बीत रहा विश्रांति-प्रहर है, जागो ! अरे होश में आओ।
था प्रस्ताव तुम्हारा ही यह, प्रस्तुत है लो, गुड़-तिल खाओ !"

कहा भगत ने, "बढ़ा रहे जो तुम मेरे सम्मुख यह गुड़-तिल,
शिक्षा देता यह हम सबको, रहना होगा हमको हिल-मिल ।
पृथक-पृथक तिल का न मूल्य कुछ, वस्तु बहुत लघु है—नगण्य है,
पर, मिल कर ही मूल्यवान वह, बल केवल संगठन जन्य है ।

गुड़ के साथ संगठित होकर, तिल बनता सुन्दर पदार्थ है,
यही हाल है हम सबका भी मंत्र संगठन ही यथार्थ है ।
स्नेह-भाव में रहें संगठित, तो हम कुछ कर दिखलायेंगे,
तिल जैसे बिखरे-बिखरे रह, काम न तिल भर कर पायेंगे ।

यहाँ दीक्षा ली जो हमने धरती पर जीवनोत्सर्ग की,
इस धरती के लिए कल्पना की हमने जो अपर वर्ग की,
उसके लिए हमें जीवन की देनी होगी आहुति तिल-तिल,
उसके लिए संगठित होकर रहना होगा हमको हिल-मिल ।

बलिवेदी पर अपने कर से अपना शीष बढ़ाना होगा,
स्वतंत्रता के महा-यज्ञ में हमको रक्त चढ़ाना होगा ।
हमको अपनी साँस-साँस में भीषण क्रान्ति जगानी होगी,
इस समाज में प्राण फूँकने, हस्ती हमें मिटानी होगी ।

कठिन कर्म में अनुरत करना होगा जीवन के हर क्षण को,
जलता हुआ हमें जिह्वा पर रखना होगा अपने प्रण को ।
इस प्यासी धरती को जब हम निज प्राणों का आसव देंगे,
आजादी के पावन अंकुर तब इस मिट्टी में पनपेंगे ।

सर्ग सत्रह

राष्ट्रीय कॉलेज का स्नेह-सम्मेलन

यह राष्ट्रीय विद्यालय का प्रांगण है
जिसमें विशेष कुछ दिखती चहल-पहल है,
कुछ उत्सव का आयोजन-सा दिखता है
हर्षोन्माद की हर मुख पर हलचल है।

यह वार्षिकोत्सव का सुन्दर आयोजन
सम्मिलन स्नेह का है यह छात्र-जगत का,
सज्जित वितान के नीचे स्वागत होता
आगन्तुक विद्यालय के अभ्यागत का।

सज्जा में वैसे तड़क-भड़क कम ही है
जो वस्तु अधिक, वह दिखती यहाँ सुरुचि है,
सचमुच ही वातावरण स्नेह का दिखता
आ रही गंध हर अंतर से अति शुचि है।

इस ओर टँगा यह मान-चित्र भारत का
भारत-माता बन्दनी दिखाई देती,
चित्रित है मुख पर भाव-भंगिमा ऐसी
मानो विमुक्ति के लिये दुहाई देती।

संकल्पों के प्रज्ज्वलित भाव उर में ले
चित्रित दिखते हैं आस-पास दीवाने,
मुख-मुद्रा से आक्रोश प्रकट होता है
दिखते हैं वे सब अपने मुक्के ताने।

लगता है जैसे चीख-चीख कहते हों—
"माँ दूर नहीं हैं अब हम से वे घड़ियाँ,
जब कोटि-कोटि हम तेरे बेटे मिलकर
तड़कायेंगे बन्धन की ये हथकड़ियाँ,

यह पराधीनता की जो तेरी पीड़ा
माँ ! वह हम सब के मनमें कसक रही है,
यह भी कहदें, साम्राज्यवाद की गहरी
यह नींव आज प्रति-पल ही धसक रही है।

इस जीवन का हर क्षण भारी लगता है
कर्तव्य निमंत्रण देता आहुतियों का,
है नाच रहा अपना अतीत आँखों में
है ध्यान देश-गौरव की विभूतियों का।

देंगे हम अपने जीवन की आहुतियाँ
मस्तक देकर हम मुक्ति-पर्व लायेंगे,
जब तक जीवन में एक साँस भी होगी
ये कण्ठगीत तेरी जय के गायेंगे

यदि देख लिया यह चित्र, इधर भी मुड़िए!
इस ओर बनी यह क्या विचित्र झाँकी है,
यह झाँकी है उन बलिदानी वीरों की
जिनने स्वतंत्रता की कीमत आँकी है।

इस झाँकी के उपकरण बोलते दिखते
जलयान-बाग का दृश्य यहाँ चित्रित है,
यह छूट रहा-सा दिखता जो फव्वारा
यह लाल-लाल पानी है या शोणित है ?

चित्रित हैं ये दीवाने अमृतसर के
गोलियाँ दना-दन इन पर छूट रही हैं,
दुध-मुंहे लाल गोदी के खोकर देखो—
माताएँ अपनी छाती कूट रही हैं।

देखो, निरीह अबलाओं पर भी चलते
इन हत्यारों के भीषण बर्छी-भाले,
तन तो दिखता है इनका गोरा-उजला
पर बने हुए हैं ये सब विषधर काले।

यह धुंआ दिखाई देता जो उठता-सा
यह धुंआ नहीं, है मन का मैल विषैला,
जब समा नहीं पाया इनके अंतर में
यह इसीलिये तो बाहर आकर फैला।

इतिहास नाच उठता है इन आँखों में
यह दृश्य नहीं हम से देखा जाता है,
प्रतिशोध धधक उठता है हर अंतर में
तन में बन्दी शोणित उबाल खाता है।

यदि सचमुच ही शोणित उबाल खाता है
संकल्प करो, धरती के दिन बदलेंगे,
माँ की पुकार सुनकर हम उसके बेटे
अपने प्राणों की भेंट लिये निकलेंगे।

"हाँ दृढ़ है यह पावन संकल्प हमारा
माँ के आँसू हम को अभिशाप बनेंगे,
माँ का मन पीड़ा से विपन्न होगा, तो
हम को यौवन के सपने पाप बनेंगे।"

अब इधर देखिए! प्रमुख द्वार के सम्मुख
ये प्रमुख अतिथि आचार्य संग आते हैं,
सब छात्र-वृन्द हो खड़े विनत मुद्रा से
स्वागत को मन की श्रद्धा बिखराते हैं।

ये बोल उठे आचार्य महोदय, "मित्रो!
हम हैं प्रसन्न निज मुख्य अतिथि को पाकर,
पंजाब-केसरी वीर लाजपत ने है
कृतकृत्य किया हम सब लोगों को, आकर।

है राष्ट्रीय विद्यालय का कण-कण ही
लाला जी की अनुकंपा से अनुप्राणित,
फिर भी दर्शन की सहज लालसा होती
इसलिये उपस्थिति है सदैव प्रत्याशित।

परिचय दूँ गृहस्वामी का उसके घर में
स्वाभाविक है होना संकोच हृदय में,
फिर भी मेरा मन नहीं मानता कहते
हम हर्षित इनको पाकर विद्यालय में।

हर्षित सारा ही देश इन्हें पाकर है
पंजाब-केसरी लालाजी कहलाते,
इस देश-भक्त के अगणित गुण-गौरव हैं
अपने भारत के घर-घर गाये जाते।

इस वीर-पुत्र की सिंह-गर्जना सुनकर
इस शासन के संचालक थर्राते हैं,
यह मुक्त रहा तो जाने क्या कर डाले
इसलिये जेल वे इसको पहुँचाते हैं।

यह विकट गर्जना के गंभीर स्वरों से
जन-जन के उर में ज्वाला जगा रहा है,
अभिशप्त दासता की जड़ अंध-निशा को
बलिदान भाव ज्योतित कर भगा रहा है।

कृत-कृत्य हुए हैं निश्चित ही हम पाकर
अध्यक्ष रूप अपने इस मुख्य अतिथि को,
शुभ दर्शन से हम सब ही उत्प्रेरित हैं
गति और मिलेगी आज कर्म की गति को।

हैं आज तात्कालिक भाषण आयोजित
कुछ छात्र मंच पर आ-आकर बोलेंगे,
कुछ विषय लिख दिये गये बन्द पर्चों में
अध्यक्ष महोदय ये पर्चे खोलेंगे।

इसलिये कर रहा मैं यह नम्र निवेदन
अध्यक्ष महोदय गति दें भाषण-क्रम को,
उद्बोधन के हित कुछ दो शब्दों कहें वे
निज श्री मुख से कुछ निर्देशन दें हमको।''

स्नेहानुरोध-युत सुधा-सिक्त वाणी सुन
अब हुए मंच से उदित समोद अतिथिवर,
अब लगे स्वरों के अगणित रंग उभरने
उस ज्ञान और पौरुष के पुण्य क्षितिज पर।

गुरु-वन्दना

"गौरव-गरिमा-भूषित आचार्य-प्रवर हे !
सम्माननीय गुरु वर्ग ! उपस्थित सज्जन,
माताओ ! बहनो ! छात्र-वृन्द प्रिय मेरे
गौरव-शाली नागरिक बन्धु विद्वज्जन ।

सम्मान दिया जो आमंत्रित कर मुझको
इस हेतु आज मैं स्वयं हुआ उपकृत हूँ,
आचार्य-प्रवर, गुरु-वर्ग, सभी के सम्मुख
अति विनत-भावना से मैं श्रद्धानत हूँ ।

ये गुरु ही हैं, जो अपने छात्र-जनों को
जीवन-शिक्षा, शिक्षा-दर्शन देते हैं,
सब दे-देते हैं जो इन पर होता है
ये अपनों को सब अपनापन देते हैं ।

ये गुरु ही हैं ऋषि परंपरा के द्योतक
आलोक-पुंज ये उज्ज्वल आदर्शों के,
ये सूत्रधार हैं गतिमय राष्ट्र-प्रगति के
संचालक जन-जीवन के उत्कर्षों के ।

ये हैं वशिष्ठ जो नीति-रीति उपदेशक
मानवता के सच्चे गुण सिखलाते हैं,
हैं ये ही विश्वामित्र, धर्म-रक्षण को
जो सर्वनाश दुष्टों का करवाते हैं ।

ये हैं गुरु-सांदीपनि जो निज आश्रम में
मोहन को हैं गीता का कृष्ण बनाते,
जो हैं युग-युग के महा-पुरुष कहलाते
उनको महानता का ये पाठ पढ़ाते।

गुरु द्रोण इन्हीं में हैं अति कुशल धनुर्धर
जिन चरणों की रज लेते राज-कुँअर हैं,
इनके प्रसाद से महारथी बन-बन कर
वे सहज विजित कर लेते महा-समर हैं।

ये ज्ञान-गगन के प्रखर अंशुमाली हैं
अज्ञान-तिमिर का जो विनाश करते हैं,
सौरभ बिखराते हृदय पद्म खिल-खिल कर
ऐसा भी ये मंजुल प्रकाश करते हैं।

ये भरे-भरे स्वाती के सुन्दर घन हैं
जो कृपा-वारि शिष्यों पर बरसाते हैं,
उर की सीपी में शब्द-बिन्दु गिर-गिर कर
सुन्दर, सच्चे, प्रिय मोती बन जाते हैं।

ये गहरे गोता-खोर ज्ञान-सागर के
जो डूब-डूब कर अमित रत्न लाते हैं,
जिसको जैसे रुचिकर हों वैसे ले-ले
ये विविध रत्न ला तट पर बिखराते हैं।

ये हैं समाज के शुभ-चिन्तक प्रिय नेता
सब को जीवन की सच्ची राह दिखाते,
सच्चे अर्थों में कलाकार ये गुरु हैं
जीवन में भरना सुन्दर रंग, सिखाते।

बालोद्यान के रखवाले माली ये
बिरवों का ये शुभ-संवर्द्धन करते हैं,
खिलते हैं सुरभित सुमन स्नेह पा इनका
ये अर्पित उनके लिए सु-मन करते हैं।

ये केवल गुरु ही नहीं महाजन भी हैं
बहुमूल्य धरोहर जो समाज से लेते,
जो बाल-वृन्द आते 'कोरे कागद' से
ये लिखा-पढ़ा बहु-गुणी उन्हें कर देते।

गुरु बिना ज्ञान सच्चा न कभी आता है
गुरु इसीलिए जीवन में आवश्यक है,
गुरु को जिसने गोविन्द रूप माना है
गुरु जैसा ही वह वन्दनीय साधक है।

इस लिए वन्दना कर मैं इन गुरुजन की
कर रहा प्रकट अभिलाषा निज अन्तर की,
ये बाल-वृन्द पा वरद-हस्त इन सब का
श्री-वृद्धि देश की करें और निज घर की।

ये बनें देश को राम-कृष्ण गौतम से
ये महावीर बन अखिल विश्व में चमकें,
राणा प्रताप की आन-बान हो इनमें
ये वीर शिवा बन इतिहासों में दमकें।

ये मातृ-भूमि के प्रबल वीर सैनिक हों
मिट्टी पर मर-मिटने का इनका मन हो,
जो मित्र, उन्हें ये मक्खन से कोमल हों
जो शत्रु, वज्र-सा उनको इनका तन हो।

निकलें सपूत ये इस धरती-माता के
ये इसके उज्ज्वल यश के रखवाले हों,
ये एक साँस से वंशी में स्वर फूँकें
ये साँस दूसरी में ज्वाला पाले हों।

यदि सृजन-शील कर उठें ललक कर इनके
ये इस धरती पर सौ-सौ स्वर्ग बसा दें,
भुज-दण्ड प्रबल यदि शत्रु-नाश हित मचलें
विकराल काल बन कर ये प्रलय मचा दें।

जो घुमड़ रही थी बात हृदय में, कह दी
जो शेष कार्य-क्रम, उसका संचालन हो,
इस देश और विद्यालय के गौरव का
मानवता के आदर्शों का पालन हो।

इस ओर बन्द पर्चे हैं ये नामों के
इस ओर बन्द पर्चों में कई विषय हैं,
मैं देख रहा हूँ, छात्र हो रहे आतुर
उत्साह-तरंगित सब के व्यग्र हृदय हैं।

तो पहले ये दो पर्चे उठा रहा मैं
यह नाम उठा, भगवतीचरण जी आयें,
यह विषय 'युवक कर्तव्य' उन्होंने पाया
आकर युवकों को वे कर्तव्य बतायें।"।

तात्कालिक भाषण-प्रतियोगिता
भगवतीचरण : युवक-कर्त्तव्य

युवकोचित मुद्रा से वक्ता आ धमके
कर यथा उचित अभिनन्दन सबका बोले,
था सहज ओज उनके सन्तुलित स्वरों में
जो शब्द निकलते, लगते थे वे गोले।

"यौवन क्या है, यह लपटों का संगम है
सरगम है यह अन्तर के तूफानों का,
यौवन अरमानों का सर्वोच्च शिखर है
है पुण्य-पर्व यह यौवन बलिदानों का।

अंगारों का पथ ही यौवन का पथ है
हर बात असम्भव यौवन की मंजिल है,
काँटे यौवन के लिये फूल बनते हैं
हर मुश्किल को यौवन खुद ही मुश्किल है।

आँधियाँ प्रबल-तम यौवन की साँसें हैं
भू-कम्प धड़कनें हैं यौवन के दिल की,
घन-गर्जन अल्हड़ यौवन के ही स्वर हैं
है तड़ित दीप-माला इसकी महफिल की।

यह आसमान है चौड़ा वक्ष समय का
जो तना हुआ दिखता है हमें विजन में,
ये नहीं सितारे, तमगे टँके हुए हैं
जीते हैं जो इसने अपने यौवन में।

निकलें सपूत ये इस धरती-माता के
ये इसके उज्ज्वल यश के रखवाले हों,
ये एक साँस से वंशी में स्वर फूँकें
ये साँस दूसरी में ज्वाला पाले हों।

यदि सृजन-शील कर उठें ललक कर इनके
ये इस धरती पर सौ-सौ स्वर्ग बसा दें,
भुज-दण्ड प्रबल यदि शत्रु-नाश हित मचलें
विकराल काल बन कर ये प्रलय मचा दें।

जो घुमड़ रही थी बात हृदय में, कह दी
जो शेष कार्य-क्रम, उसका संचालन हो,
इस देश और विद्यालय के गौरव का
मानवता के आदर्शों का पालन हो।

इस ओर बन्द पर्चे हैं ये नामों के
इस ओर बन्द पर्चों में कई विषय हैं,
मैं देख रहा हूँ, छात्र हो रहे आतुर
उत्साह-तरंगित सब के व्यग्र हृदय हैं।

तो पहले ये दो पर्चे उठा रहा मैं
यह नाम उठा, भगवतीचरण जी आयें,
यह विषय 'युवक कर्तव्य' उन्होंने पाया
आकर युवकों को वे कर्तव्य बतायें।"।

तात्कालिक भाषण-प्रतियोगिता
भगवतीचरण : युवक-कर्त्तव्य

युवकोचित मुद्रा से वक्ता आ धमके
कर यथा उचित अभिनन्दन सबका बोले,
था सहज ओज उनके सन्तुलित स्वरों में
जो शब्द निकलते, लगते थे वे गोले।

"यौवन क्या है, यह लपटों का संगम है
सरगम है यह अन्तर के तूफानों का,
यौवन अरमानों का सर्वोच्च शिखर है
है पुण्य-पर्व यह यौवन बलिदानों का।

अंगारों का पथ ही यौवन का पथ है
हर बात असम्भव यौवन की मंजिल है,
काँटे यौवन के लिये फूल बनते हैं
हर मुश्किल को यौवन खुद ही मुश्किल है।

आँधियाँ प्रबल-तम यौवन की साँसें हैं
भू-कम्प धड़कनें हैं यौवन के दिल की,
घन-गर्जन अल्हड़ यौवन के ही स्वर हैं
है तड़ित दीप-माला इसकी महफिल की।

यह आसमान है चौड़ा वक्ष समय का
जो तना हुआ दिखता है हमें विजन में,
ये नहीं सितारे, तमगे टँके हुए हैं
जीते हैं जो इसने अपने यौवन में।

है मेरु-दण्ड यौवन मानव-जीवन का
युग के सपनों का है यह रंग सुनहला,
यौवन ने अपने संकल्पों के बल से
है रूप धरा का जब मनचाहा बदला।

हम जिन्हें युवक कहते अपनी भाषा में
वे हैं यौवन के अग्नि-दूत मतवाले,
हम उन्हें दहकते शोले भी कह सकते
कह सकते उनको लपटों के रखवाले।

हैं युवक, जिन्हें सागर उथले लगते हैं
बौने लगते जिनको अजेय पर्वत हैं,
जो अन्तरिक्ष का मान रौंद देते हैं
ये चाँद-सितारे जिनके आगे नत हैं।

क्या बात करें यौवन के दीवानों की
ज्वाला-मुखियों पर रास रचाते हैं वे,
देना पड़ता तो मस्तक दे देते हैं
मस्तक देकर सम्मान बचाते हैं वे।

जब हैं यौवन के हाथ सर्जना करते
ये नई सृष्टि धरती पर रच देते हैं,
जब तक सपनों में प्राण नहीं भर देते
ये हाथ चैन तब तक न तनिक लेते हैं।

जब ऐसा यौवन पाया है हमने, तो
हम चुनें आग के फूल मौत से खेलें,
यदि आसमान फट पड़े हमारे सर पर
हम अपने भुजदण्डों पर उसको झेलें।

यौवन की साँसों को धौंकनी बनाकर
हम कर्तव्यों की भट्टी को दहकायें,
अपने सपनों को हम साँचों में ढालें
दृढ़ संकल्पों से रगड़ उन्हें चमकायें।"

यह भाषण सुन बज उठीं तालियाँ तड़-तड़
यौवन के दीवाने उठ बाँसों उछले,
हर्षोन्माद की लहर सभा में छाई
सब के मुख से स्वर वाह ! वाह ! के निकले।

• • •

यशपाल : सामाजिक क्रांति

अध्यक्ष महोदय ने फिर पर्चे खोले
वक्ता का उनने पढ़कर नाम सुनाया,
वक्तृत्व हेतु सामाजिक-क्रान्ति विषय था
यशपाल महाशय को अब गया बुलाया।

यशपाल मञ्च पर वीर-दर्प से आये
थी क्रान्ति-भावना उर की उनके मुख पर,
क्यों है समाज के लिए क्रान्ति आवश्यक
था उन्हें मिला इसके चिन्तन का अवसर।

"क्या है समाज, पहले हम यही विचारें
इसके रचना-तत्वों का विश्लेषण हो,
फिर क्रान्ति और उसके प्रभाव का व्यापक
सापेक्ष्य भाव से सम्यक् अभिप्रेषण हो।

होता समाज केवल समुदाय नहीं है
यह नहीं व्यक्तियों का केवल अनुदल है,
सह-जीवन की चेतना प्रखर है इसमें
यह बुद्धि और भावना-युक्त जन-बल है।

यह है विराट अस्तित्व व्यक्ति सत्ता का
यह रूप आत्म-चेतनता का व्यापक है,
यह संश्लिष्ट सत्ता ज्वलन्त जीवन की
यह व्यष्टि-भावनाओं का उत्थापक है।

यह महासिंधु जन-मानस को लहरों का
हर लहर इसे कुछ अपनापन देती है,
यह मनोवृत्तियों का है रूप परिष्कृत
हर मनोवृत्ति इसको जीवन देती है।

यह शुद्ध संगठन है परार्थ भावों का
कल्याण-कोष यह सर्वमान्य है अपना,
है यह निदान-उपचार पाशविकता का
यह मानवता का सबसे सुन्दर सपना।

विश्वास, धर्म, संस्कृतियाँ, परम्पराएँ
पाता समाज है दृष्टि-दान इन सब से,
वह नया पंथ पाता है कर्तव्यों को
पाता जीवन को दिव्य-ज्ञान इन सबसे।

पर कभी-कभी विश्वास-धर्म की जड़ में
अहमन्य भाव के कीड़े लग जाते हैं,
पीते रहते हैं वे जीवन-रस इसका
इसके विकास की गति को वे खाते हैं।

इसकी आकृति में सहज विकृति आ जाती
है इस समाज की गति कुण्ठित हो जाती,
जो शक्ति शिखर का पथ-दर्शन करती है
वह शक्ति स्वयं ही भू-लुण्ठित हो जाती।

विकृति का चिर-उपचार क्रान्ति है केवल
है क्रान्ति तिक्त औषधि समाज के ज्वर की,
यह शल्य-चिकित्सा है समाज के व्रण की
है क्रान्ति स्वस्थ सद्गति समाज जर्जर की।

यह वह उबाल है जो समाज के दूषित
अहमन्य मनोभावों का कर उत्सारण,
प्रस्थापित कर समरसता और व्यवस्था
बनता जीवन के लिये शान्ति का कारण।

है क्रान्ति दहकती भट्टी, जिसकी ज्वाला
है जंग-मोरचा इस समाज का खाती,
कर भस्मसात् इसके विकार क्षण भर में
इस्पात बना कर फिर इसको चमकाती।

है क्रान्ति एक दावाग्नि प्रखरतम जिसमें
झंखाड़-झाड़ कुविचारों के जल जाते,
वह भस्म खाद बनती नूतन विरवों को
जो पनप-पनप नव-जीवन पा लहराते।

वस्तुतः क्रान्ति चिन्ता का विषय नहीं है
है क्रान्ति न हौआ, जिसे देख डर जायें,
जब भी समाज में इसका प्रादुर्भव हो
हम अपनी साँसों से इसको दहकायें।

आह्वान करें हम स्वतः क्रान्ति का अनुदिन
हम इसकी ज्वालाओं को आहुतियाँ दें,
हैं कलुष-खोट जितने, सब जला-गला कर
हम इस समाज के लिए नई कृतियाँ दें।"

भाषण समाप्त जब हुआ क्रान्ति-दर्शी का
थी तुमुल तालियों ने भी क्रान्ति मचाई,
'आह्वान करें हम स्वतः क्रान्ति का अनुदिन
गर्जना यही थी सभा भवन में छाई।

• • •

भगतसिंह : बलिदान

इस बार गये जब फिर दो पर्चे खोले
वक्ता-क्रम में अब भगतसिंह आ धमके,
बज उठीं तालियाँ पहले से ही तड़-तड़
जितने श्रोता, सबके मुख-मण्डल चमके।

'बलिदान' विषय था मिला बोलने उनको
यह विषय उन्हें अपने मन में अति भाया,
मुस्कान खेलती दिखलाई दी मुख पर
स्वर सभा-भवन में यह सगर्व लहराया—

"है एक बात का आज बहुत दुख मुझको
है एक भाव से आज विकल यह अन्तर,
भाषण के हित 'बलिदान' विषय पाया है
यदि करने मिलता, तो होता श्रेयस्कर।

फिर भी, मैं अपनी स्वल्प-बुद्धि से इसका
जैसा मैंने समझा, कर रहा विवेचन,
बलिदान—दान का सब से उज्ज्वल यश है
यह है दानी का प्रखर आत्म-उत्सर्जन।

इस महादान की महिमा है वेदों में
हैं पृष्ठ पुराणों के इससे अनुरंजित,
भावना-प्रकाशन की जितनी विधियाँ हैं
उन सब की तह में यही भाव अभिव्यंजित।

बलिदान—शब्द यह चार वर्ण का पावन
चारों वेदों का मूल-मंत्र सुन्दर है,
श्रुति, शास्त्र उपनिषद हैं इससे आलोकित
सागर अथाह इस गागर के अन्दर है।

बलिदान, विलोड़ित होता जब अंतर में
बलिदान हमारी जिह्वा पर जब आता,
बलिदान हुए जितने अब तक इस भू पर
यह उन सब की है हमको याद दिलाता।

बलिदान, शब्द इतिहास स्वयं विस्तृत है
जिसमें संचित इसकी गौरव-गाथाएँ,
बलि हुए किस तरह देश-धर्म पर अपने
बालक, जवान, बूढ़े, बहनें-माताएँ।

बलिदान हमारे अति-बल का द्योतक है
हम करते जिसका दान आन पर हँस कर,
बलिदान हमारे जीवन का परिचय है
देते जिसको, पाकर देने का अवसर।

बलिदान—रक्त का है प्रवाह यह अपना
संचार धमनियों में जिसका अविरल है,
बलिदान—एक कल्पना पुण्य-पावन है
बलिदान—मोक्ष का साधन एक प्रबल है।

बलिदान एक ऐसी मशाल है जिसको
हाथों में ले, हम वक्ष चीरते तम का,।
इस महादेश की गौरव-ग्रन्थावलि का
बलिदान—पृष्ठ है खुला हुआ, अनुक्रम का।

बलिदान एक उज्ज्वल दर्पण है जिसमें
हैं भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब दिखते,
बलिदान, एक सुन्दर लिपि है हम जिसमें
इस विशद राष्ट्र की कीर्ति-कहानी लिखते।

बलिदान—दान की है ज्वलंत परिभाषा
बलिदान—हमारे मानस का चिन्तन है,
बलिदान—प्रेरणा है हमको सद्गति की
यह जीवन का सर्वोपरि अभिनन्दन है।

सिद्धान्त, भावना, नीति, धर्म रक्षण को
वैसे सदैव हम बलि देते आये हैं,
पर वीर-प्रसवनी इस भारत की भू पर
मर मिटने के ही भाव अधिक भाये हैं।

जब-जब इस धरती पर संकट-घन छाए
हम उठे प्रभंजन बन कर उन्हें उड़ाने,
माँ की पुकार सुन उठ-उठ कर दौड़े हैं,
हम जीवन की बलि देकर उसे छुड़ाने।

इतिहास कह रहा चीख-चीख कर, हम हैं
जो आन-वान हित बन जाते पर्वाने,
हम लिये हथेली पर प्राणों को फिरते
इस धरती की आजादी के दीवाने।

बलिदान किये जितने, क्या उन्हें गिनायें
गिनना हो जिसको, गिन ले नभ के तारे,
न्यौछावर जितने लाल हुए धरती पर
वे चमक रहे हैं नभ में रत्न हमारे।

बलिदान-कसौटी आज पुनः प्रस्तुत है
हम को अपना पौरुष इस पर कसना है,
शोणित से लपटों का उर शीतल करना
अब नहीं किसी स्नेहिल उर में बसना है।

आजादी पर जब हैं संकट-घन छाए
बलिदानों का फिर हमें पंथ चुनना है,
अपमानों से जब प्राण-प्राण जलते हों
तो हमको मेघ-मल्हार नहीं सुनना है।

प्रज्ज्वलन शान्त तब होगा दग्ध हृदय का
जब रक्त-सिंधु में हम डूबें-उतरायें,
हम अपना, अपने अरि का रक्त बहा कर।
अपमानों की ज्वाला को शीघ्र बुझायें।

जिसने सम्मान छुआ है इस धरती का
उसके हाहाकारों के स्वर सुनना है,
जो आज सभ्य कहला कर भी नंगा है
परिधान कफ़न का उसके हित बुनना है।

भारत माँ के लाड़ले-सपूतों से है
इस दीवाने को बात यही फिर कहना,
यातना नर्क की सहना श्रेयस्कर है
पर श्रेयस्कर है नहीं दासता सहना।

जो कालिख है लग गई कीर्ति पर अपनी
हम सब शोणित से उस कालिख को धोएँ,
आजादी की उन्मुक्त फसल लहराने
हम बीज मस्तकों के धरती में बोएँ।

यदि है अभीष्ट हम को इस पावन भू पर
पुण्यों की फसलें फलें और वे फूलें,
तैयार रहें हम अपनी बलि देने को
फाँसी के फन्दों पर भी हंस कर झूलें।"

वक्तव्य पूर्ण होने पर सभा-भवन में
कर-तल-ध्वनि गूंजी, फिर सन्नाटा छाया,
अध्यक्ष महोदय ने वक्ता को देखा
मानो उस पर हो दृष्टि-स्नेह बरसाया।

. . .

सुखदेव :
यदि मैं इस महा-विद्यालय का प्राचार्य होता

इस वक्ता के पश्चात् और जो आये
सब नये-निराले अपने ढंग से बोले,
पर जो कुछ बोले, उर को छू देता था
श्रोता-समाज के कान सभी ने खोले।

सुखदेव मंच पर जब मस्ती से आये
बोले—"सब सुन लें कान लगा कर श्रोता,
है विषय मिला भाषण देने को मुझको—
'प्राचार्य अगर मैं इस कालिज का होता।'

तो सुनिएगा श्रीमान आप सचमुच ही
प्राचार्य अगर मैं इस कॉलिज का होता,
तो सब से पहले त्याग-पत्र दे पद से,
घर जा कर मैं अपना मुँह ढक कर सोता।

मैं त्याग-पत्र क्यों देता, यदि यह पूछें
तो सुनिए, मेरा यह विनम्र उत्तर है,
मैं हूँ अयोग्य सर्वथा बड़े इस पद के
मैं असफल हो जाता मुझ को यह डर है।

इसलिए छोड़ कर मोह बड़ी कुर्सी का
मैं अपना पल्ला झाड़ दूर ही रहता,
उपदेश सभी को देता पकड़-पकड़ कर
मैं फाड़-फाड़ कर गला, बात यह कहता—

छोड़ो कुर्सी का मोह, इसे सब छोड़ो
मत चिपको इससे, इसका खेल न खेलो,
बच्चों को है कुर्सी की झपट सुहाती
तुम कुर्सी के चस्के से छुट्टी ले-लो।

कुर्सी से जब तक चिपके हुए रहोगे
तुम काम नहीं कुछ अच्छे कर पाओगे,
जब यह जायेगी छूट, धूल फाँकोगे
गिर आसमान से धरती पर आओगे।

इसलिए छोड़ कर मोह किसी कुर्सी का
तुम काम भलाई के थोड़े से कर लो,
है मानवता का पात्र तुम्हारा खाली
जितना भी भर सकते हो, इसको भर लो ।

वक्तव्य हुआ मेरा समाप्त, जाता हूँ
आशा है, मेरी शिक्षा याद रखोगे,
है भला तुम्हारा ही इसमें, मेरा क्या
यदि मान गये, मीठे फल सदा चखोगे ।

कह दिया सहज ही, उचित लगा जो मुझको
कर्तव्य आपका, मानो या मत मानो,
फिर कहता हूँ, कुर्सी की दौड़ न दौड़ो
मानव हो कर मानवता को पहचानो ।"

वक्ता बैठे, तालियाँ तड़ा-तड़ बोलीं
थी गूंज समाई उनकी सभा-भवन में,
सुखदेव, बात यह बड़े पते की कह कर
थे समा गये श्रोता-समाज के मन में ।

. . .

झंडासिंह : राजनीति

ऊँचे-पूरे अब झण्डासिंह पधारे
अपने स्वभाव से वे सब को प्यारे थे,
कुछ बात और ही थी औरों से इनमें
औरों से इनके रंग-ढंग न्यारे थे ।

था 'राजनीति' पर उन्हें बोलना खुल कर
जो विषय नहीं प्रिय था, उसने पाया था,
जब हुये बोलने खड़े किसी पीड़ा से
इन वक्ता जी का अन्तर भर आया था।

बोले—"यह भी क्या रही उसी पर बोलूं
कक्षा में भी मैं हूँ जिससे कतराता,
आता इसका घण्टा, तो पहले से ही
मैं किसी बहाने भाग खड़ा हो जाता।

जो संविधान हैं, उनको रटते-रटते
मेरा दिमाग बिलकुल खाली हो जाता,
हो जाते हैं अन्यान्य विषय भी विस्मृत
बैठा का बैठा मैं खुद ही खो जाता।

क्यों 'राजनीति' का विषय मिला है मुझको
यह राजनीति में समझ नहीं पाता हूँ,
जब आया हूँ 'दो शब्द' आप से कह कर
फिर जाकर अपनी जगह बैठ जाता हूँ।

है नम्र-निवेदन सब से मेरा, बचना
जो राजनीति की हवा चल रही भाई !
है सन्निपात हो गया उसे, जिसने है
इस राजनीति की हवा तनिक भी खाई।

शहरों-गाँवों में, और आज घर-घर में
यह राजनीति की हवा खूब चलती है,
यह वह आँधी जो सब को प्यारी लगती
यह नहीं किसी को आज तनिक खलती है।

हैं लोग सभाओं और समितियों के हित
आकुल दिखते हैं सदस्यता पा जाने,
यह खूब युक्ति सोची है इस शासन ने
वह हमें बना कर मुर्गे, चला लड़ाने।

जब देखा उसने, हम सब भारत-वासी
प्रस्तुत हैं उससे लेने सीधी टक्कर,
इसलिए चाल उसने हम से खेली है
डाला हम पर यह राजनीति का चक्कर।

इस राजनीति की आँधी ऐसी आई
बच सका नहीं है इससे कोई कोना,
जो कुछ होना था, हुआ नहीं वह किंचित
हो गया और ही कुछ इससे अनहोना।

बन गई बिचारी नीति आज गूंगी है
जब से है सबने राजनीति अपनाई,
इस राजनीति में भेद-नीति है ऐसी
लड़ रहे आज आपस में भाई-भाई।

यह राजनीति की हवा चली तो देखो
क्या लगे चमकने कल्लू और मटल्लू,
बन गए निठल्लू भी अब ठल्लू जी हैं
दिख रहे सींकिया जी अब कैसे मल्लू।

हैं राजनीति की लोग रोटियाँ खाते
है राजनीति से आज जिन्दगी पलती,
अपने गंजे सर में क्या खुश हो-हो कर
है राजनीति का तेल छछूंदर मलती।

मिल गई गाँठ हल्दी की क्या छोटी-सी
है आज गिलहरी पंसारिन बन बैठी,
चिन्दी पाकर बन गई बजाजिन है वह
क्या अकड़ दिखा कर फिरती ऐंठी-ऐंठी।

बेचारी बिल्ली आज कर रही फाके
इस युग में हैं चूहे खा रहे मलाई,
इस राजनीति की हवा चली कुछ ऐसी,
है अकल बुद्धुओं की इसने चमकाई।

यह राजनीति है राज कर रही घर-घर
इसका जादू सब के मन पर चलता है,
है राजनीति इस युग का ऐसा साँचा
जिसमें सब लोगों का जीवन ढलता है।

इस राजनीति का नहीं अकल से नाता
इसका तो केवल बातों से नाता है,
जिसको आये बढ़-बढ कर बातें करना
वह राजनीति का पण्डित कहलाता है।

जिसको देखो, श्रद्धालु भक्त बन बैठा
पुजती है घर-घर राजनीति की देवी,
अपने भक्तों को देवी फल देती है
बाँटा करती यह उनको दूध-जलेबी।

है राजनीति शतरंज, खेलकर जिसको
प्यादे भी बढ़ कर बन जाते हैं फर्जी,
घर के चूहे भी आज शेर बन जाते
हो जाये कुछ यदि राजनीति की मर्जी।

जो सबको अच्छा मीठा दूध पिलाती
बन गई आजकल राजनीति वह गैया,
हैं बड़े-बड़े यह दूध चाव से पीते
पीते ने भी, जो कहलाते छुट-भैया।

जितने प्रकार के भी चुनाव हैं, वे सब
इस राजनीति के ही हैं खुले अखाड़े,
कुछ सीखे इसके दाव-पेच हैं जिसने
हैं बड़े-बड़े ही उसने मल्ल पछाड़े।

छोटे हों या ये बड़े, सभी करते हैं
खुश हो-होकर यह राजनीति की कसरत,
जिसको देखो, भस्मासुर बनता दिखता
वह पा करके जन-शंकर से वर जन-मत।

वर देकर जन-शंकर भी पछताते हैं
है आज उन्हीं के प्राणों पर बन आई,
भस्मासुर उनके पीछे पड़ा हुआ है
जन-शंकर रक्षा की दे रहे दुहाई।

यह राजनीति उस दुलहिन-सी लगती है
परिणय हित जिसका होता आज स्वयंवर,
हैं ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे जितने
वे इसे रिझाने सब चलते बन-ठन कर।

वह हुआ स्वयंवर में विजयी है, जिसने
पाई दुलहिन से है पद की वर-माला,
बन गया जमाई जबरन वह जनता का
वह बैठा-बैठा मौज उड़ाता लाला।

कैसे-कैसे हथकण्डे दिखलाते हैं
जो कहलाते हैं राजनीति के पण्डे,
भूखों मर कर यजमान सूखते जाते
ये पण्डे पड़ते जाते हैं मुस्तण्डे।

यदि आप मुझे अनुमति दें, तो मैं कह दूँ
आगई याद है मुझको एक कहानी,
विश्वास आपकी क्षमाशीलता पर है
इसलिये कर रहा मैं छोटी नादानी।

इस घटना के नायक हैं कोई नेता
है नाम फकीरा, उनकी पत्नी कमला,
दुर्भाग्य देखिए, नेताजी के घर ही
हो गया एक दिन राजनीति का हमला।

वे बाहर थे, घर एक मित्र आ धमके
उनने अपनी भाभी जी को भड़काया,
है राजनीति का चक्कर भैया जी पर
अपने चंगुल में उसने इन्हें फँसाया।

यदि कभी आपने देखा हो, घर में भी
वे राजनीति की बातें करतें होंगे,
उत्साहित देते होंगे कभी दिखाई
वे कभी-कभी आहें भी भरते होंगे।

है राजनीति का ही उन पर यह चक्कर
उसने ही भोले भैया को भरमाया,
हो सकता है वह कभी यहाँ भी आये
हैं आप सरल, क्या समझें उसकी माया।

जो सबको अच्छा मीठा दूध पिलाती
बन गई आजकल राजनीति वह गैया,
हैं बड़े-बड़े यह दूध चाव से पीते
पीते वे भी, जो कहलाते छुट-भैया।

जितने प्रकार के भी चुनाव हैं, वे सब
इस राजनीति के ही हैं खुले अखाड़े,
कुछ सीखे इसके दाव-पेच हैं जिसने
हैं बड़े-बड़े ही उसने मल्ल पछाड़े।

छोटे हों या ये बड़े, सभी करते हैं
खुश हो-होकर यह राजनीति की कसरत,
जिसको देखो, भस्मासुर बनता दिखता
वह पा करके जन-शंकर से वर जन-मत।

वर देकर जन-शंकर भी पछताते हैं
है आज उन्हीं के प्राणों पर बन आई,
भस्मासुर उनके पीछे पड़ा हुआ है
जन-शंकर रक्षा की दे रहे दुहाई।

यह राजनीति उस दुलहिन-सी लगती है
परिणय हित जिसका होता आज स्वयंवर,
हैं ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे जितने
वे इसे रिझाने सब चलते बन-ठन कर।

वह हुआ स्वयंवर में विजयी है, जिसने
पाई दुलहिन से है पद की वर-माला,
बन गया जमाई जबरन वह जनता का
वह बैठा-बैठा मौज उड़ाता लाला।

कैसे-कैसे हथकण्डे दिखलाते हैं
जो कहलाते हैं राजनीति के पण्डे,
भूखों मर कर यजमान सूखते जाते
ये पण्डे पड़ते जाते हैं मुस्तण्डे।

यदि आप मुझे अनुमति दें, तो मैं कह दूँ
आगई याद है मुझको एक कहानी,
विश्वास आपकी क्षमाशीलता पर है
इसलिये कर रहा मैं छोटी नादानी।

इस घटना के नायक हैं कोई नेता
है नाम फकीरा, उनकी पत्नी कमला,
दुर्भाग्य देखिए, नेताजी के घर ही
हो गया एक दिन राजनीति का हमला।

वे बाहर थे, घर एक मित्र आ धमके
उनने अपनी भाभी जी को भड़काया,
है राजनीति का चक्कर भैया जी पर
अपने चंगुल में उसने इन्हें फँसाया।

यदि कभी आपने देखा हो, घर में भी
वे राजनीति की बातें करतें होंगे,
उत्साहित देते होंगे कभी दिखाई
वे कभी-कभी आहें भी भरते होंगे।

है राजनीति का ही उन पर यह चक्कर
उसने ही भोले भैया को भरमाया,
हो सकता है वह कभी यहाँ भी आये
हैं आप सरल, क्या समझें उसकी माया।

यह सुलगा कर देवर जी हुए विदा थे
बातें सुन-सुन कर भाभी जी अब भड़कीं,
जब घर आये 'वे', तो उन पर चपला-सी
विकराल रूप धारण करके ये तड़कीं—

"है राजनीति यह बला कौन सी जिसने
अपने जादू के तुम पर डोरे डाले,
घर में तुम मुझसे कटे-कटे रहते हो
तुम उस चुड़ैल के लिये हुए मतवाले।

तुम कान खोल कर सुन लो, मैं कहती हूँ
यदि यहाँ कभी उसने आ शकल दिखाई,
तो टाँग तोड़ कर ही उसकी रख दूँगी
यदि कभी भूल कर वह मेरे घर आई।"

जाने कैसे क्या हुआ कि अगले दिन ही
हो गया उपस्थित क्या विचित्र-सा अवसर,
महिला-सेवा-दल की कोई देवी जी
जा पहुँचीं मिलने वे नेताजी के घर।

भाभी जी से वे स्नेह जता कर बोलीं
है नाम बड़ा, पर मुझे 'राज' कहते हैं,
क्यों नहीं आप आतीं मेरे घर भाभी !
भैया तो बहुधा ही आते रहते हैं।

यह 'राज' नाम सुनते ही गृहिणी भड़की
सोचा उसने यह 'राजनीति' ही आई,
चुन-चुन कर उसको क्या गालियाँ सुनाईं
इस तरह अतिथि की हुई वहाँ पहुनाई।

यह दृश्य देख वह उलटे पाँवों भागी
वह लौटी वैसी ही, जैसी थी आई,
जो किया गया सत्कार इस तरह उसका
वह 'राज' नहीं यह राज समझ कुछ पाई।

मैं इसीलिए कहता हूं सब से भाई!
यदि समझदार हो, राजनीति से बचना,
इस राजनीति का गोरख-धंधा अद्भुत
है बड़ी विकट इस राजनीति की रचना।

यदि तुम्हें आदमी रहना है तो सुनलो!
जितनी जल्दी हो, राजनीति को छोड़ो,
इस राजनीति डायन को मुँह न लगाओ
यह मिले अगर तो हाथ दूर से जोड़ो।

यदि सीख नहीं मानी मेरी, तो तुमको
सच कहता हूँ, वह दर-दर भटकायेगी,
जो अक्ल जमानत पर अपनी रखदी है
यह जब्त जमानत भी वह करवायेगी।"

भाषण दे झण्डासिंह मंच से लौटे
उपहार तालियों का उनने भी पाया,
मीठी कुनैन उनने लोगों को दी थी
था बड़ा तथ्य उनने हंस कर समझाया।

वक्तव्य नहीं यह उनका साधारण था
थे व्यंग्य-बाण तीखे लोगों पर छोड़े,
जो राजनीति की घास चले चरने थे
ये शब्द पड़ रहे उन पर जैसे कोड़े।

अब कार्य-समापन का आ गया समय था
अध्यक्ष उठे अब करने कुछ उद्‌बोधन,
इन युवकों की वक्तृत्व-कला को लखकर
दिखलाई देता था प्रसन्न उनका मन।

बोले "प्रसन्न हूं प्रगति यहाँ की लखकर
बोलना यहाँ सबको अच्छा आता है,
विद्यालय में इस तरह बोलकर वक्ता
जीवन में आगे बड़ा नाम पाता है।

गर्वित हूँ सुनकर यह विचार-धारा भी
जिस धरती के हैं लाल अनोखे ऐसे,
उस धरती पर दुख कब तक रह सकते हैं
दुर्दिन उस धरती पर टिक सकते कैसे ?

विश्वास मुझे, ये क्षात्र-वृन्द आगे चल
अपनी इस धरती पर शुभ दिन लायेंगे,
धरती की रक्षा को धरती के बेटे
हंसते-हँसते ये बलि होते जायेंगे।

विद्यालय का ये नाम करेंगे उज्ज्वल
इनमें महानता के वे सब अंकुर हैं,
मिल रहा उचित निर्देशन गुरुजन का भी
इनमें प्रमेय पौरुष के भाव प्रचुर हैं।

भगवान इन्हें उज्ज्वल भविष्य दे सबको
वह आसमान से ऊँचा इनको मन दे,
जो अनुकृति की प्रेरणा बने जगती को
इन वीर सपूतों को ऐसा जीवन दे।"

तूफान और यौवन

चाँद दूज का तुमने बढ़कर नभ में चढ़ते देखा होगा,
यौवन की मंजिल पर उसको आगे बढ़ते देखा होगा।
तुमने महासिंधु में भीषण ज्वार उफनते देखा होगा,
तुमने सागर की लहरों को पर्वत बनते देखा होगा।

वन-प्रान्तर में दावानल का तुमने नर्तन देखा होगा,
तुमने विकट ज्वाला-माला का क्रुद्ध प्रवर्तन देखा होगा।
तुमने मतवाले मेघों का यौवन-गर्जन देखा होगा,
तुमने उनका तड़ित छटा मिस वन्हि-विसर्जन देखा होगा।

तुमने धरती के आँगन में अंधड़ आते देखा होगा,
रौद्र-रूप धर तुमने उसको धूम मचाते देखा होगा।
भगतसिंह बन गया बगूला ऐसे ही प्रचण्ड यौवन का,
उसके संकल्पों में जाग्रत बल था अब उनपचास पवन का।

वह यौवन दे उठा चुनौती, सागर के भी तूफानों को,
वह यौवन दे उठा चुनौती, झंझा के दृढ़ अरमानों को।
उस यौवन के आगे पर्वत झुकने को तैयार हो गए,
उस यौवन के सहज भाव भी उद्दीपित अंगार हो गए।

उस यौवन की ज्वाला लख कर सहमी दावानल की ज्वाला,
उस यौवन पर हुई समर्पित प्रखर तेजयुत विद्युत-माला।
उस यौवन की प्रबल गर्जना सुनकर घन-गर्जन हत-प्रभ था,
उस यौवन की ऊँचाई के आगे नीचा लगता नभ था।

उस मतवाले का यौवन अब पौरुष के पथ पर चलता था,
जो उसने प्रण ठान रखा था, वह प्रतिपल उर में जलता था।
उसका प्रण था, अपनी धरती पर अपना झण्डा फहराना,
उसका प्रण था जन-जीवन में हर्ष-तरंगों का लहराना।

एक दिशा को ही उत्प्रेरित उसके संकल्पों की गति थी,
क्रान्ति-भावना की धारा में डूब रही उद्दंड प्रकृति थी।
फिर कैसे उनका मन हरता गहन अध्ययन विद्यालय का,
बाहर आने को आतुर था, जब भीषण तूफान हृदय का।

विद्यालय से गायब रहना अब उसके जीवन का क्रम था।
गोपनीय संगठन क्रान्ति का, यह उसका हो गया नियम था।
इन कामों में भगतसिंह का था सुखदेव बना सहयोगी,
गुप्त-क्रान्ति-कारी-दल का वह सिद्ध हो रहा सिद्ध नियोगी।

जाने कहाँ-कहाँ बैठे ये घण्टों चर्चा करते रहते,
दृढ़ संकल्पों के प्रवाह में खुशी-खुशी दोनों ही बहते।
पढ़ते ये साहित्य क्रान्ति का यहाँ-वहाँ से लाकर नित थे,
इन्हीं योजनाओं से इनके संकल्पी उर उद्भासित थे।

सारा का सारा दल इनका रहता सदा अध्ययन-रत था,
नहीं हवाई किले बनाते, कर्म-पूर्ति जीवन का व्रत था।
इन्हें फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से बहुत बड़ी प्रेरणा मिली थी,
जब कि निरंकुशता की पक्की, जन-सत्ता से नींव हिली थी।

इन्हें मैजिनी गैरिबॉलडी का अच्छा विस्तृत अध्ययन था,
इटली के स्वातंत्र्य-समर का किया जिन्होंने संचालन था।
कैसे डी-वैलरा प्रभावी हुआ आयरिश आन्दोलन में,
ये सब तथ्य ज्ञात थे इनको, गहराई थी ज्ञान-गहन में।

अच्छी तरह जानते थे ये, अमरीका की मुक्ति-कहानी,
मचल-मचल उठती थी इनकी मुक्ति हेतु उद्दण्ड जवानी।
एकीकृत किस भाँति जर्मनी हुआ, इन्हें इस पर गुमान था,
मुक्ति-पंथ का पथिक बन चुका इन सब का भी स्वाभिमान था।

इन्हें रूस की क्रांति प्रेरणा देती थी कुछ कर दिखलाने,
इनका मन आकुल था, अपनी धरती को आजाद कराने।
तुर्की में कमाल पाशा ने जो कर दिखलाया कमाल था,
उसकी सभी सफलताओं का ज्ञात सभी कुछ इन्हें हाल था।

हुए जहाँ भी जन-आन्दोलन, उन सब के इन पर प्रभाव थे,
परवशता, भुख-मरी, गरीबी, ये सब इनके लिये घाव थे।
खोज रहे थे सूत्र क्रान्ति के ये, उनका गठ-बन्धन करने,
प्रस्तुत ये हो रहे क्रान्ति के दंगल में सब लोग उतरने।

ये स्वदेश में होने वाली सब घटनाओं से अवगत थे,
तनिक कहीं भी विप्लव भड़के, ये उससे दिखते सहमत थे।
भड़क उठी विप्लव की आंधी ऐसी ही इनके प्रदेश में,
अंग्रेजों के सम्मुख आये क्रुद्ध अकाली काल-वेश में।

उठकर खड़ा हुआ बब्बर-दल
सवा लाख पर एक अकाली,
आग उगलने लगी क्रांति की
पुण्य-पंच-नद की हरियाली।

बब्बर-अकाली-आन्दोलन

अब असह्य हो उठा उन्हें था, इस धरती पर राज फिरंगी,
अब असह्य हो उठी उन्हें थी अँग्रेजों की नीति दुरंगी।
कसक रहे थे इनके उर में, जो-जो अत्याचार हुए थे,
इस धरती के दीवानों पर जो-जो क्रूर प्रहार हुए थे।

कैनेडा में भारतवासी कैसे दलित किये जाते थे,
अपमानों के घूँट अधिक अब इनसे नहीं पिये जाते थे।
कोमागातामारू[1] घटना बनी हृदय के लिये आग थी,
जल-वाहन पर हिन्द-रक्त से कैसे खेली गई फाग थी।

बज-बज गोली-कांड किस तरह भून चुका था वीर हमारे,
क्रूर कुशासन छीन चुका था कितने अपने देश दुलारे।
कैसे भूला जाता वह जो काण्ड हुआ जलयान बाग में,
जब फौजी कानून लगा, तो जैसे घी पड़ गया आग में।

---

१. 'कोमागातामारू' एक जापानी जहाज था जिसको कनाडा स्थित भारतीय सिक्खों ने किराये पर ले लिया था। उसके द्वारा भारत में पहुँचकर वे मुक्ति आन्दोलन छेड़ना चाहते थे। अँग्रेजों के संकेत पर इस जहाज को बीच के किसी बन्दरगाह पर ठहरने की आज्ञा नहीं मिली और सभी यात्री समुद्री राह में भूखों मरने लगे। बड़ी कठिनाई से यह जहाज २७ सितम्बर १९१४ को हुगली नदी के संगम पर पहुँचा। जिस समय कोमागातामारू जहाज कलकत्ता के 'बज-बज' बन्दरगाह पर पहुँचा तो सभी यात्रियों को जबरन पकड़ कर नजरबन्द करने के लिये स्पेशल ट्रेन से पंजाब भेजा जाने लगा। मुठभेड़ और गोली-काण्ड के परिणामस्वरूप १८ सिक्ख मारे गये। इस घटना के नेताओं में बाबा गुरुदत्तसिंह और सरदार भागसिंह प्रमुख थे।

'गुरु का बाग' और 'ननकाना साहब' की खूनी घटनाएँ,
थीं पर्याप्त रक्त खौलाने, कर देने उत्तप्त शिराएँ।
अतः अकाली बब्बर-दल ने फूँकी अब हिंसा की ज्वाला,
अर्पित करने लगे काल को प्रलय-वीर मुण्डों की माला।

किशनसिंह गड़गज्ज विदित थे इस बब्बर दल के प्रिय नेता,
उनके और कई साथी भी क्रान्ति-पंथ के बने प्रणेता।
शत्रु-पक्ष पर इन वीरों ने थे खुल-खुल कर किए धड़ाके,
लुटने लगे कोष शासन के, पड़ते थे अब उन पर डाके।

इनके पथ में जो भी आता, वही मौत के घाट उतरता,
घर का भेदी तो अवश्य ही इन लोगों के हाथ सुधरता।
जो इनके भेदिये बने, वे बन्दूकों के बने निशाने,
यह सुधार आन्दोलन[१] इनका, लगा चुका था कई ठिकाने।

---

१. सुधार आन्दोलन = क्रान्तिकारियों ने पुलिस के अफसरों तथा देश-द्रोहियों को सुधारने के लिये अपना दंड-विधान स्वयं तैयार किया था। इसके अनुसार वे क्रूर प्रशासकों तथा क्रान्ति-कारियों का भेद देने वाले देश-द्रोहियों को मौत के घाट उतारना पवित्र कर्तव्य समझते थे। दंड का विधान केवल मौत ही न था। अपराध कम होने की दशा में अपराधी की सम्पत्ति लेकर या नाक-कान काट कर भी छोड़ दिया जाता था। इसी सुधार-योजना के अन्तर्गत उदयसिंह हैयतपुर के दीवान को मार चुके थे तथा कर्मसिंह और उदयसिंह बड़बलपुर के हजारासिंह का भी वध कर चुके थे। धन्नासिंह तथा सन्तासिंह रानी थाने के जेलदार दिशन-सिंह को मार चुके थे। धन्नासिंह और बन्तासिंह धामिया ने पुलिस के खुशामदी बूटा को मारा था। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी वीर उदयसिंह का कथन था :—

"मैं दुश्मन को छोड़ सकता हूँ, किन्तु घर के भेदिये को नहीं छोड़ सकता।"

चार वीर घिर गये अचानक किन्तु एक दिन इनके दल के,
काट नहीं पाये वे बन्धन घर-भेदी के—अरि के छल के।
शत्रु-सैन्य ने तीन तरफ से इन वीरों पर घेरा डाला,
एक ओर से इनके पथ को रोक रहा था कोई नाला।'

पर पानी में कूद पड़े वे, खुल कर करने लगे दना-दन,
तीन ओर से उधर शत्रु की बन्दूकें करती थीं गर्जन।
लड़ते-लड़ते उदयसिंह जी वहीं गिर पड़े गोली खाकर,
गिरे महिन्दरसिंह वहीं फिर, अपरिमेय वीरता दिखा कर।

कर्मसिंह गोलियाँ दना-दन छोड़ रहे थे अब भी उठकर,
तीन तरफ वे वार कर रहे थे सेना पर पलट-पलट कर।
हुए धराशायी अब वे भी उस नाले के एक किनारे,
विशनसिंह रह गये अकेले, इधर-उधर सौ-सौ हत्यारे।

नरकुल की झाड़ी में वे भी दुबक गये अब गोली खाकर,
पर दो सैनिक लगे खोजने वहीं निकट झाड़ी के आकर।
किन्तु उछल कर विशनसिंह ने यह कैसा कमाल दिखलाया,
चमक गई तलवार, हाथ उनने अपना भरपूर जमाया।

ढेर हो गया एक वहीं पर और दूसरा सैनिक भागा,
घायल होकर पीठ दिखा कर, युद्ध-क्षेत्र था उसने त्यागा।
शत्रु सैन्य ने घेरा डाला अब फिर आगे बढ़ते-बढ़ते,
अब शहीद हो गया सिंह था, डटकर उनसे लड़ते-लड़ते।

---

१. यह 'बोमेली-युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० स्मिथ ने चार अकालियों को बोमेली में घेर लिया जो कपूरथला के निकट है। क्रान्ति-वीर चारों ओर से घिर गये। तीन ओर अँग्रेजी फौज थी और एक ओर चौंता साहब के गुरुद्वारे के समीप का नाला। चारों अकाली वीर अपरिमेय वीरता दिखाकर शहीद हो गये।

'बोमेली का युद्ध' वीरता का नूतन अध्याय बन गया,
बलिदानों का पर्व, मुक्ति का छोटा एक उपाय बन गया।
पर एकाकी पर्व न था यह, ऐसा पर्व और भी आया,
धन्नासिंह वीर ने अपना अद्भुत रण-कौशल दिखलाया।

जीत न पाया शत्रु उन्हें जब, समर-भूमि में अपने बल से,
पकड़ सिंह को लिया एक दिन धोखे से, मायावी छल से।
पर अरि-दल को पता नहीं था उसने किसको पकड़ रखा है,
पता नहीं था क्रुद्ध काल को जंजीरों से जकड़ रखा है।

पता नहीं था, छिपा रखा है उसने भीषण बम का गोला,
नहीं किसी ने देखा उसको, नहीं किसी ने उसे टटोला।
और वीर ने कस कर उसमें अपनी ही कुहनी दे मारी,
प्रबल धड़ाके से विनाश की, हुई वहाँ पर लीला भारी।

ढेर लग गया था लाशों का मरा नहीं वह वीर अकेला,
जीवन देकर लगा दिया था उसने वहाँ मौत का मेला।
वन्तासिंह धामिया भी थे इसी भाँति बलिदान हो गये,
श्री वर्यामसिंह रण-स्थल में सदा-सदा के लिये सो गये।

किन्तु वीरता दिखा गये जो, इतिहासों में अमर रहेगी,
आगे आने वाली सदियों की साँसों में अमर रहेगी।
और वीर जो शेष बच गये, कृष्ण-भवन के बने पुजारी,
न्यायालय के नाट्य-मंच पर थी अब फाँसी[1] की तैयारी।

---

१. आगे चलकर बब्बर-अकाली-आन्दोलन का निर्णय न्यायालय ने दिया। सर्वश्री धर्मसिंह, किशनसिंह गड़गज्ज, सन्तासिंह, नन्दसिंह, दलीपसिंह और कर्मसिंह (दूसरे) को २७ फरवरी १९२६ को ठीक होली के एक दिन पहले लाहौर के सेन्ट्रल जेल में एक साथ फाँसी दे दी गई। भगतसिंह उस समय कानपुर में छद्म नाम से 'प्रताप' के संपादन में सहयोगी था। इस हत्याकाण्ड पर उसने सम्पादकीय लेख प्रकाशित किया था।

रोष व्याप्त इस घटना-क्रम का नगर, ग्राम, घर, जन-जन में था,
विस्फोटक संचार जोश का भारत के जन-जीवन में था।
इन बलिदानों ने समाज के मन में उग्र चेतना भर दी,
इन बलिदानों ने अंग्रेजी शासन पर चिनगारी धर दी।

भगतसिंह अपने दल-बल सह
सक्रिय था कुछ कर दिखलाने,
सक्रिय था वह इन वीरों को
जैसे भी बन पड़े, छुड़ाने।

सर्ग अठारह

वट-धर्मी समाज

यह वट-वृक्ष विशाल, विजन में बाहु-जाल फैलाये,
जटा-जूट-धारी मुनि-सा यह दिखता ध्यान लगाये।
इसकी छाया में बैठे, दो युवक वार्ता-रत हैं,
गुप्त-मंत्रणा हेतु नगर से दूर यहाँ आगत हैं।

है चर्चा का विषय, "चाहिए हम को युवक निराले,
बलिदानी, साहसी, आन पर जो मर-मिटने वाले।
जो हों विश्वसनीय परम, दृढ़ अनुशासन के पालक,
विषम परिस्थिति में भी हों जो अडिग कार्य-संचालक।

अगर देश की धरती माँगे, रक्त उँडेल सकें जो,
जो काँटों पर चलें, आग की वर्षा झेल सकें जो।
अपने गुप्त संगठन को हैं, ऐसे युवक अपेक्षित,
देश-भक्ति की प्रबल भावनाओं से हों जो प्रेरित।"

उत्तर-प्रति-उत्तर द्वारा था विषय अभी यह चर्चित,
हुई वार्ताक्रम में भारी बाधा एक उपस्थित।
चिड़ियों ने कुहराम मचाया चें-चें-चें-चें करके,
गला फाड़ कर चीख रही थीं वे सब मारे डर के।

नीड़ ओर ही सरक रहा था, एक भयंकर विषधर,
व्यक्त कर रही थीं बच्चों की चिन्ता वे चिल्ला कर।
भगतसिंह को पल भर में ही बात समझ में आई,
बोला—"हे सुखदेव ! परीक्षा पर अपनी तरुणाई।

अपने रहते, यह चिड़ियों के बच्चों को खा जाये,
यौवन होगा व्यर्थ, न इनकी रक्षा यदि कर पाये।
है पिस्तौल नहीं, चढ़ कर मैं इसे गिराता भू पर,
तब तक तुम तैयार रहो, ले भारी-भारी पत्थर।"

रोक सके सुखदेव, पूर्व ही इसके वह जा लपका,
झटका दिया पूँछ में तगड़ा, विषधर भू पर टपका।
तत्पर था सुखदेव, दिये उसने कस-कस कर पत्थर,
ढेर हो गया विषधर अब पीडा से तड़प-तड़प कर।

प्रथम परीक्षा में दोनों ही बहुत खरे उतरे थे,
काल-व्याल से जूझ, काम साहस का कर गुजरे थे।
मृत भुजंग निकटस्थ वहीं पर अब भी पड़ा हुआ था,
भगतसिंह भावों में डूबा-डूबा खड़ा हुआ था।

"क्यों भाई क्या सोच रहे, क्या बात विचार रहे हो ?
भावों में डूबे-डूबे, क्या चित्र उतार रहे हो ?
तुम कर्मठ हो कठिन, किन्तु बहुधा भावुक हो जाते,
भाव समाधि लगाकर तुम हो मन ही मन खो जाते ।"

कहा भगत ने चौंक—"मित्र मैं हूं विचित्र उलझन में,
यह विशाल वट-वृक्ष देख, यह बात उठी है मन में ।
केवल होना बड़ा, बड़प्पन का पर्याय नहीं है,
अपना-अपना स्वार्थ, बड़ों का क्या व्यवसाय नहीं है ?

है विशाल यह वृक्ष, भुजाएँ है अपनी फैलाये,
किन्तु कोटरों में रहता यह भीषण जन्तु छिपाये ।
जितनी इसकी परिधि, जहाँ तक रहती इसकी छाया,
अपना दृढ़ एकाधिपत्य है इसने सदा जमाया ।

बड़े वृक्ष के नीचे छोटे पौधे पनप न पाते,
वे अपने समुचित विकास को तरस-तरस रह जाते ।
जो विशाल तरु, छोटे पौधों का जीवन-रस पीते,
ये रहते मृतप्राय, किन्तु वे बड़े-बड़े तरु जीते ।

ऐसी ही विचित्र कुछ अपने इस समाज की गति है,
बड़े पनपते, जो छोटे—उनके विकास पर यति है ।
अधिकारों की जड़ें जमाये वे बैठे रहते हैं,
शोषण की पीड़ा तो उनके आश्रित ही सहते हैं ।

कुविचारों के विषधर पलते, कथित बड़ों के मन में,
जाने कितने पाप पला करते उनके जीवन में ।
जो जितने हैं बड़े, बड़े वे उतने पाप कमाते,
खाते अन्न गरीब, गरीबों को ये खुद खा जाते ।

सब छोटे इस कथित बड़प्पन के शिकार होते हैं,
कहना भी अभिशाप, आँसुओं से पीड़ा धोते हैं।
भूख बड़ों की बड़ी, सदा रहते हैं वे मुंह बाए,
वड़े-बड़ों ने अब तक जाने कितने छोटे खाए।

राजनीति, साहित्य, धर्म में मठाधीशता चलती,
नये अंकुरों की गति उनको काँटे जैसी खलती।
गहरी जड़ें जमाकर रहते दूर-दूर तक छाये,
क्या मजाल है कोई छोटा आगे बढ़ने पाये।

उन्हें न छेड़ो, वे समाज के खम्भे बड़े-बड़े हैं,
कन्धों पर ले बोझ राष्ट्र का कैसे तने खड़े हैं।
जिन्दाबाद बड़प्पन उनका, देश भाड़ में जाये,
ठेकेदारी रहे सुरक्षित उस पर आँच न आये।

तथा-कथित जो बडे, न औरों को वे जीने देंगे,
जो रस वे पीते, औरों को तनिक न पीने देंगे।
पुचकारेंगे और शिकंजे में वे फिर कस लेंगे,
फुफकारेंगे विषधर जैसे, दाव लगा डस लेंगे।

प्रगति देश की, ये दिग्गज हैं बैठे हुए दबाये,
है माई का लाल कौन, जो आकर इन्हें हटाये।
ये वट-धर्मी, जब तक धक्के खाकर नहीं गिरेंगे,
निश्चित है, इस धरती के दिन, तब तक नहीं फिरेंगे।"

"ठीक कह रहे भगतसिंह तुम, मैं बिलकुल सहमत हूँ,
उनके इस अहमन्य खोखलेपन से भी अवगत हूँ।
कभी-कभी जब तुम भावों की धारा में बहते हो,
बड़े पते की बात मित्रवर! तब-तब तुम कहते हो।

बड़ी दूर की कौड़ी लाते तुम भावों में बह कर,
पर क्या होगा, व्यर्थ आत्म-पीड़ा यह अपनी सह कर।
जो बाहर का शत्रु, निबटना पहले उससे हमको,
कर ही देंगे हम विदीर्ण फिर अपने घर के तम को।

आधी छोड़ अगर पूरी को लेने हम धायेंगे,
वह जायेगी छूट, हाथ मलते हम रह जायेंगे।
पहले देश मुक्त कर लें हम, फिर इनसे निबटेंगे,
जब तक लक्ष्य न होगा पूरा, पथ से नहीं हटेंगे।"

"यद्यपि अधिक व्यावहारिक है प्रियवर! ज्ञान तुम्हारा,
किन्तु पलटनी ही होगी, हमको समाज की धारा।
जो जिस योग्य, उसे उतना सम्मान दिलाना होगा,
भूख गरीबी मिटा, भाग्य सब का चमकाना होगा।

न्याय कहाँ का? श्रम के साधक अपना स्वेद बहायें,
उनके जीवन के पुण्यों का लाभ दूसरे पायें।
सांसों के इस क्रय-विक्रय के क्षम्य नहीं व्यापारी,
कर्म-निष्ठ श्रम के साधक हों पूंजी के अधिकारी।

यह समता अपने समाज में हमको लानी होगी,
नये विचारों की जन-गङ्गा हमें बहानी होगी।
ठीक कहा तुमने, पहले है हमें मुक्ति आवश्यक,
फिर समाज में क्रान्ति-भावना जाग्रत करना व्यापक।

अतः मुक्ति के लिये, राष्ट्र हम अपना आज जगायें,
कर्म स्वयं करके, लोगों को हम कर्तव्य सिखायें।
जैसे भी बन सके, चेतना है समाज में भरना,
हम मिट जायें—क्या चिन्ता है? मुक्त देश को करना।"

इनका नाटक देखिए!

इधर देखिए ! दिखती यह जो बहुरुपियों की महफिल,
क्या पहचान सकेंगे इनको ? काम बहुत ही मुश्किल।
पोत रखे हैं चेहरे सबने विविध वेश कर धारण,
सबने स्वाँग रचाया, पूछो ! है इसका क्या कारण ?

भगतसिंह-यशपाल आदि का यही नाट्य-मण्डल है,
देश-भक्ति-भावना सभी के उर में बहुत प्रबल है।
प्रचलित नाटक ले, उनमें कुछ परिवर्तन करते हैं,
कलाकार यशपाल, कथा का संवर्द्धन करते हैं।

और नाट्य-निर्देशन के हैं भगतसिंह संचालक,
अभिनय में स्वाभाविकता के हैं वे बड़े उपासक।
श्री बलदेव और हुण्डू, गायन के निर्देशक हैं,
झन्डासिंह मनोरंजन के अच्छे उत्प्रेरक हैं।

करते सभी व्यवस्थापन हैं कुशल 'धर्म-अभिलाषी'
और कुशल अभिनय के भी वे रहते हैं प्रत्याशी।
ये नाटक के धुनी, बड़ा उत्साह सभी दिखलाते,
यहाँ-वहाँ से नाटक की सामग्री सभी जुटाते।

इससे दाढ़ी, उससे मूंछे माँग-माँग ले आते,
साड़ी-ब्लाउस पहन स्वयं ये महिला-स्वाँग रचाते।
'कृष्ण-विजय' नाटक की उस दिन थी अपूर्व तैयारी,
दर्शक बन कर उमड़ पड़ी थी जनता भी क्या भारी।

भगतसिंह थे कृष्ण, रुक्मिणी-हरण कर्म था उनका,
या कि देश के लिए मुक्ति का वरण मर्म था उनका।
श्री बल्देव रुक्मिणी का कर रहे सफल अभिनय थे,
गर्व-हर्ष-आश्चर्य-भाव से पूरित सभी हृदय थे।

देह बलिष्ट कसरती उसकी, पर अभिनय नारी का,
विकट हौसला ही था यह उस कुशल चमत्कारी का।
चेहरे की सुन्दरता से ही शायद हुआ चयन था,
और दूसरी बात—कण्ठ कोमल था, प्रिय गायन था।

पहलवान को नारी का अभिनय इसलिए मिला था,
यह विचित्रता देख, दर्शकों का मन-कमल खिला था।
साड़ी में लिपटा गोरा तन, मुख पर भाव लजीला,
ब्लाउस था बहु-मूल्य, रेशमी, पुष्पित और सजीला।

कृष्ण-विरह में नारी ढंग से करने दैन्य-प्रदर्शन—
नारी-कण्ठ बना, अंतर में भर रोमांचित कंपन—
विनय-याचना हित जब ऊपर दोनों हाथ उठाए—
उर को छूकर, व्यथा प्रकट करने के भाव दिखाए—

भुज-दण्डों के मांसल पुट्ठे उभर गेंद से आये,
तंग आस्तीनों पर उनने निज कमाल दिखलाये।
नारी-तन का ब्लाउस, कैसे सहता यह उत्पीड़न ?
चर्रा कर फट गया, और थी उधड़ गई सब सीवन।

और बहन– जिसका ब्लाउस था, कृत्य देख झल्लाई,
हाय ! हाय ! मेरा ब्लाउस ! कह वह भी अब चिल्लाई।
कैसा रंग जमा होगा तब, यह तो आप विचारें,
मुड़कर इधर देखिए, अब हम इनकी ओर निहारें—

यह शृंगार-सदन, इसमें ये अभी प्रसाधन-रत हैं,
एक-दूसरे से बढ़कर ये कलाकार उद्यत हैं।
विविध-वेश धारण करते ये देते हैं दिखलाई,
छील रहा है दाढ़ी देखो किसी-किसी की नाई।

घूम रहा कोई कच्छे में, देह पहलवानी है,
ऊपर है बनयान एक, तबियत क्या मस्तानी है।
जूड़ा बिखर रहा है इसका, वह उसको कसता है,
यह कितना गंभीर, जोर से वह कितना हँसता है।

अच्छे-अच्छे परिधानों की छीना-झपटी होती,
पैन्ट रहे झख मार, यहाँ पर रौब जमाती धोती।
गालों पर मल रहा सफेदी यह, वह मलता लाली,
यह चिल्लाता अरे! किसी ने मेरी मूँछ चुराली।

बार-बार सज्जा के क्रम में भी संतोष न मन को,
हर कोई है तूल दे रहा अपनी लघु उलझन को।
यह काजल की रेख न जमती, बार-बार बनती है,
इसकी नकली मूँछ लटकती, नहीं खड़ी तनती है।

लगा रहा छोटे चेहरे पर है यह लम्बी दाढ़ी,
शक्ल दिखाई देती, जैसे बंगाले की खाड़ी।
कोई कहता—"ओजी! ओ! तुम मेरी सज्जा कर दो!"
कोई कहता, "मूंछ बड़ी है, इसको तनिक कतर दो।"

कोई दर्पण के सम्मुख जा, रूप निहार रहा है
कोई उससे छेड़-छाड़ कर ताने मार रहा है—
"ओ जी! जँचते तो बस तुम हो, कोई रीझ न जाये,
बचना भाई! इनकी सज-धज बिजली नहीं गिराये।"

"इसका ठेका तो तुम पर, हैं नक्शे बड़े तुम्हारे,
कोई तनिक देख भी ले, यह भी कब भाग्य हमारे।"
"अच्छा जी ! तो इतनी गहरी लिये वेदना मन में,
सचमुच आज तुम्हीं चमकोगे, हम सब तो उलझन में!"

इसी तरह की छेड़-खानियाँ और कह-कहे भारी,
देखा, ऐसे की जाती है नाटक की तैयारी।
अब चलिए ! हम उधर मंच के आगे बैठें चलकर,
देखें, कलाकार दिखलाते अभिनय कैसा सुन्दर।

नाटक 'इन्कलाब' का अभिनय ये करके दिखलाते,
रंग-मंच पर, देखो ये हैं अभी सामने आते।
लो, यह पर्दा सरक रहा है, छल्ले करते खन-खन,
देखो अब प्रारम्भ हो गया इनका नाट्य-प्रदर्शन।

इन्क़लाब

[मंच पर दो युवक बातें करते दिखाई देते हैं। एक का नाम है विक्रम और दूसरे का विनोद । मंच पर प्राकृतिक वातावरण चित्रित है]

विनोद— प्रियवर! देखो यह प्रकृति आज सज-धज कर
कैसी दुलहिन-सी दिखलाई देती है,
कुंकुमी भोर की यह अरुणाभा देखो
लज्जा ही जैसे अँगड़ाई लेती है।
आगम वसन्त का—यौवन का आगम है
सुमनों के मिस यह यौवन ही मुकुलित है,
वातास नहीं, माधुर्य द्रवित है मनका
किसलय-दल क्यों? यह रोम-रोम पुलकित है।

विक्रम— इस प्रकृति-वधू के मिस तुमने तो प्रियवर!
चित्रित की है अपने ही मन की झाँकी,
माधुर्य तुम्हारे मन का प्रकट हुआ है
हर चितवन ही दिखती है तुमको बाँकी।
जिसको तुम लज्जा की अरुणाभा कहते
मुझको शोषित की वह फुहार-सी लगती,
ये किसलय अंगारे-से दहक रहे हैं
वातास-सुरभि मुझको बुखार-सी लगती।

विनोद— जीवन भी तुमको पतझड़-सा लगता है
मर गई रसिकता जाने कहाँ तुम्हारी,
इस तरुणाई में यह विरक्ति है कैसी ?
क्यों तुम्हें आग-सी लगती है फुलवारी ?

विक्रम— क्या नहीं जानते, अपनी स्वतंत्रता पर
है ग्रहण लगा, बन्दिनी आज माता है,
इसलिए आज जीवन सचमुच पत-झड़ है
अब तो वसन्त भी लपटें फैलाता है।
माता रोए, हम कैसे खुशी मनायें ?
क्यों नहीं हृदय में आग धधक उठती है ?
सम्मान आज आहत होकर भी चुप है
अरि पर क्यों विद्युत नहीं कड़क उठती है ?

[किसी के कराहने का स्वर सुनाई देता है। दोनों ध्यान से सुनते हैं]

विनोद— जाने प्रियवर ! यह कौन कराह रहा है
यह किसका करुणा-विगलित कातर स्वर है,

विक्रम— उस ओर वहाँ देखो, कोई आता है
वह थाम-थाम लेता दुख से अन्तर है।

[कराहने वाला निकट आता है। आकृति खुले हुए ग्रन्थ जैसी है। पृष्ठ फटे-फटे से हैं। कहीं-कहीं धब्बे भी लगे हैं।]

विक्रम— तुम कौन विजन में भ्रमित ? तुम्हें क्या दुख है ?
किस पीड़ा से तुम आज कराह रहे हो ?

विनोद— क्यों याचक-सी लगती है दृष्टि तुम्हारी ?
वह वस्तु कौन सी जो तुम चाह रहे हो ?

आहत— देखो ! देखो ! तुम मुझको पहचानो तो
मैं हूँ भारत का ही इतिहास तुम्हारा,
देखो मुझको, मैं कितना मर्माहत हूँ
फिर रहा आज मैं हूँ यों मारा-मारा।

विक्रम— अच्छा ! अच्छा ! तुम हो इतिहास हमारे
विनोद— यह तन क्यों क्षत-विक्षत है, यह बतलाओ !
विक्रम— वह दुष्ट कौन जिसने तुमको मारा है
विनोद— अपनी पीड़ा की हमको कथा सुनाओ।

इतिहास— क्या नहीं जानते, दस्यु यहाँ घुस आये
भाई-चारे का हमें भुलावा देकर,
उनने हमको याचक-सा बना दिया है
संपत्ति और सुख-शान्ति सभी कुछ लेकर।
मुझ पर क्या बीती, कैसे तुम्हें बताऊँ।
उलटा सीधा जाने क्या-क्या लिख मारा
लिख दिया कि भारत में असभ्य रहते हैं
इसलिये उन्हें शासन वरदान हमारा।
जाने कितनी-कितनी ऐसी ही बातें
लिखवादीं उनने झूठी और अनर्गल,
वे सभी घाव हैं अब मेरे इस तन पर
मेरे अशान्त मन में है भारी हलचल।

विनोद— यह बहुत बड़ा जो घाव दिख रहा तन पर
यह कैसे कब है लगा, हमें समझाओ,
विक्रम— उपचार करें हम कैसे इस पीड़ा का
इसका निदान, हे पूज्य ! हमें बतलाओ।

इतिहास— यह बहुत बड़ा जो घाव दिख रहा तन पर
यह लगा अठारह-सौ-सत्तावन सन् में,
जब मुक्ति-भावना परदेशी शासन से
जागी थी तुम जैसे वीरों के मन में।
भारत के लाखों बेटे जूझ मरे थे
संग्राम मुक्ति के लिये हुआ था खुल कर,
जो आग हृदय में थी अपने वीरों के
वह लावा बनती थी शोणित में घुल कर।
दुर्भाग्य ! मुक्ति फिर भी न हमें मिल पाई
थी बदी, दासता की ही काली छाया,

विक्रम— अच्छा यह तो बतलाओ उन लोगों ने
इस मुक्ति-समर का विवरण क्या लिखवाया ?

इतिहास— जो कुछ लिखवाया, वही घाव तो उर में
इसको केवल सैनिक-विद्रोह बताया,
यह लिखा, वीर अंग्रेजों ने साहस से
सैनिक-विप्लव को अच्छी तरह दबाया।
यह मेरे मुख पर उसने कालिख पोती
यह मेरे उर को दिया घाव घातक है,
संग्राम मुक्ति का छिड़े भयंकर अब फिर
केवल तब ही यह धुल सकता पातक है
विश्वास करूँ मैं क्या भारत के बेटे
कुछ करके मेरे उर का घाव भरेंगे ?

विक्रम और विनोद— हाँ ! हाँ ! हम हैं तुमको विश्वास दिलाते
जी-जान लगा कर हम यह कार्य करेंगे।

[भारतीय इतिहास का कराहते हुए प्रस्थान। विक्रम और विनोद एक दूसरे को साभिप्राय देखते हैं]

विक्रम— देखा तुमने, यह है इतिहास हमारा
यह मनोव्यथा से कितना मर्माहत है,
जो समय गया, वह हाथ नहीं आ सकता
निर्माण हमें करना अपना आगत है।

विनोद— सहमत हूं प्रियवर ! इस विचार-धारा से
निश्चय ही अब कुछ करके हमें दिखाना,
इतिहास नया निर्माण करें हम अपना
इसके घावों पर मरहम हमें लगाना।

[फिर किसी के कराहने का स्वर सुनाई पड़ता है। कराहने वाला व्यक्ति सामने आता है। व्यक्ति के परिधान पर पर्वत, मैदान, वन और सागर के दृश्य चित्रित दिखाई देते हैं।]

विक्रम— हो कौन बन्धुवर ! तुम, क्या पीड़ा तुमको ?
इस विकल वेदना का बोलो क्या कारण ?

विनोद— यह भी प्रियवर ! निर्देशित हम को कर दो
हम करें तुम्हारा कैसे कष्ट-निवारण।

आगन्तुक— परिचय क्या दूं, मैं बहुत दुखी हूँ भाई !
वैसे भारत का मैं भूगोल कहाता,
कर रहा विदेशी शासन मुझे कलंकित
अपमान अधिक अब मुझ से सहा न जाता

विक्रम— किस तरह कलंकित करते तुम्हें विदेशी ?
क्यों दी उनने तुमको यह गहन उदासी ?

भूगोल— वे कहते हैं—"आलसी निकम्मे होते
अपने स्वभाव से ही सब भारत-वासी।"

विनोद— यह झूठ सरासर है

विक्रम— असह्य भी हमको

विनोद— बोलो, वे इसका क्या कारण बतलाते ?

भूगोल— वे कहते—"भारत गर्म देश है इससे
भारत-वासी कुछ काम नहीं कर पाते।

विक्रम— सभ्यता सिखाई है किसने दुनिया को ?

विनोद— दुनिया वाले जब नंगे-भूखे रहते,

विक्रम— कितने कृतघ्न, ये कितने बड़े प्रवंचक

विनोद— ये हमें आलसी और निकम्मा कहते।

भूगोल— पीड़ा की इतनी ही तो परिधि नहीं है

विक्रम— किस तरह और वे तुमको पीड़ित करते ?

भूगोल— वे लोग कूप-मंडूक बताते हमको
वे कहते, हम हैं सिंधु-तरण से डरते।

विक्रम— किस तरह सिद्ध करते यह दोषारोपण ?

विनोद— हम लोग कूप-मंडूक रहे कब-कब हैं ?

भूगोल— कहते—भारत का तट कम कटा-फटा है
इसलिये नहीं अच्छे नाविक हम सब हैं।

विक्रम— सदियों पहले जलयान बनाये किसने ?

विनोद— व्यापार विदेशों में किसने फैलाया ?

विक्रम— सभ्यता-चिह्न मिलते किसके दुनिया में ?

विनोद— सागर-मंथन कर किसने नाम कमाया ?

भूगोल— वे भूल गये ये बातें सब, पर अब तो
दोषारोपण कर मुझे कलंकित करते,
सब पंख नोच इस सोने की चिड़िया के
वे सिंधु-पार के अपने घर को भरते।

मेरी विकृति या अंग-भंग के हित वे
जाने कितनी योजना बनाया करते,
मैं बहुत दुखी हो गया, बचाओ मुझको
वे पीड़ा दे, मुझको तड़पाया करते।

विक्रम और विनोद—यह पीड़ा नहीं तुम्हारी, हम सब की भी
हरना है यह पीड़ा, जी-जान लगा कर,
इन दस्यु-दलों को है खदेड़ना हम को
अब हम को दम लेना है इन्हें भगा कर।

[भूगोल का प्रस्थान। दोनों उसे जाते हुए देखते हैं। विक्रम दीर्घ निश्वास छोड़ता है।]

विक्रम— है पराधीनता ही जड़ सभी दुखों की

विनोद— अपने कुठार से हम यह जड़ काटेंगे,

विक्रम— जिसने इस धरती का अपमान किया है
वे लोग धूल इस धरती की चाटेंगे।

[इसी समय किसी नारी कंठ का करुण-स्वर सुनाई देता है। धीरे-धीरे एक आकृति स्पष्ट होती है। एक नारी कराहती हुई सामने आती है। विक्रम और विनोद उसके पास पहुँचते हैं।]

विक्रम— हो देवि! कौन तुम तुमको क्या पीड़ा है?
किस मनोव्यथा से यहाँ विजन में फिरतीं?

विनोद— कृश-काय, क्षीण-आभा तुम व्याकुल दिखतीं
चलती हो तुम, तो चलतीं उठती-गिरतीं।

नारी— मैं वही संस्कृति हूँ अपने भारत की
जिसकी घुट्टी पीकर तुम लोग पले हो,
तुमने मेरे आदर्शों को अपनाया
मेरे संकेतों पर तुम लोग चले हो।

विक्रम— निश्चय ही हम उपकृत हैं देवि तुम्हारे
विनोद— तुम पर विपत्ति आ गई कौन-सी भारी ?
विक्रम— है देवि तुम्हें पीड़ा पहुँचाई किसने ?
है कौन अधम वह पामर अत्याचारी ?

संस्कृति— ये परदेशी ही जड़ें काटते मेरी
ये तुले हुए हैं मेरे चिन्ह मिटाने,
अपनी संस्कृति ये मुझ पर थोप रहे हैं
दृढ़-परिकर, मेरे घर से मुझे भगाने।
ये अपनी भाषा, धर्म, मान्यताएँ सब
हैं लाद रहे हम पर निज परम्परायें,
इस चकाचौंध में हम भी भूल रहे सब
फिर अपनी पीड़ा जाकर किसे सुनायें।

विक्रम— यह मान लिया, पर देवि ! आज तुम भी तो
हम लोगों के द्वारा पूजी जाती हो,
हैं अभी बहुत से कट्टर भक्त तुम्हारे
इस पीड़ा से क्यों इतनी घबराती हो ?

संस्कृति— तुम सोचो यदि गति यही रही, क्या होगा ?
मैं धीरे-धीरे मिटती ही जाऊँगी,
यदि इसकी गति को रोक न पाया तुमने
तुम बतलाओ, मैं कैसे बच पाऊँगी ?
सौहार्द्र-स्नेह लोगों में कहाँ रहा अब
अपनाते थोथी सभी औपचारिकता,
अब लोग रीझते हैं नकली फूलों पर
अपना सोना देकर बटोरते सिकता।

मर-मिटने की भावना कहाँ धरती पर
उत्सर्गों की अब दिखती कहाँ ललक है,
है छिपी वचन की दृढ़ता कहाँ न जाने
आत्मीय-भाव की दिखती कहाँ पुलक है ?
भाई, भाई का खून चूसने आकुल
माधुर्य कहाँ अब कौटुम्बिक जीवन में ?
लज्जा तो जैसे उठ ही गई यहाँ से
आ बसी नग्नता अब सब के तन-मन में।
मैं इसीलिये कह रही, बचाओ मुझको
सुन कर पुकार भी लोग न मुझे बचाते,
परदेशी मुझ पर विकृति लाद रहे हैं
धीरे-धीरे वे मुझको खड़ा पचाते।

विक्रम— हे देवि ! न व्याकुल हो तुम, हम जीवित हैं
भारत से तुमको विदा न होने देंगे,

विनोद— जो जड़ें तुम्हारी काट रहा, हम उसको
अपनी संस्कृति का बीज न बोने देंगे।

विक्रम और विनोद—संकल्प हमारा दृढ़ है, जड़ें तुम्हारी
हम अपने पावन शोणित से सींचेंगे,
हमने पुकार सुन ली है देवि ! तुम्हारी
हम विमुख न होंगे, आँख नहीं मीचेंगे।

[धीरे-धीरे मंच से संस्कृति ओझल होती है दोनों मित्र फिर विचार-मग्न हो जाते हैं।]

विक्रम— प्रियवर ! देखो किस तरह हमारे सर पर
दुर्दिन के अगणित घन आकर मँडराये,
ये हम हैं, जो निश्चेष्ट मौन बैठे हैं
सब कुछ सहने को प्रस्तुत शीष झुकाये।

विनोद—

यह है अपने यौवन को खुली चुनौती
हम उठें और उठ कर इसको स्वीकारें,
लद रहा भार जो अपनी इन साँसों पर
हम झटका देकर अब यह भार उतारें।

[इसी समय अंधड़ के वेग का आभास होता है। वृक्ष झुक-झुक पड़ते हैं। पत्तियाँ हवा में उड़ती हैं। साँय! साँय!] की ध्वनि सुनाई देती है। किसी का गर्जना-घोष भी सुनाई पड़ता है।)

घोष—

संकल्प तुम्हारा दृढ़ हो, मुझे बुलाओ
आह्वान तुम्हारा सुन कर मैं आऊँगा,
खा रहा संस्कृति है जो आज तुम्हारी
मैं आया तो उसको ही खा जाऊँगा।

विक्रम—

तुम मत्त प्रभंजन जैसे कौन अगोचर?
आह्वान कर रहे हम, तुम सम्मुख आओ!

विनोद—

तुम बनो हमारे मित्र और सहयोगी
आओ! आकर अपने कमाल दिखलाओ!

[झंझा के वेग से कोई अत्यन्त पराक्रमी व्यक्ति लाल परिधान धारण किए हुए मंच पर आ धमकता है।]

घोष—

लो, आया मैं, आगया, तजो सब चिन्ता
पर्वत भी हों, अब पथ से हट जायेंगे,
सौभाग्य-सूर्य को ढँके हुए जो घन हैं
काई से वे क्षण भर में फट जायेंगे।
मैं आया हूँ, अब उथल-पुथल होगी ही
जो रूठ गये हैं शुभ दिन, पुनः फिरेंगे,
उन्मादी के वे मादक स्वप्न-कँगूरे
अब टूट-टूट चरणों पर सभी गिरेंगे।

विक्रम— तुम वीर-पुरुष हो कौन ? नाम बतलाओ !

विनोद— किस महाबली के सम्मुख हम, परिचय दो,

विक्रम— हम चले जूझने हैं अपने रिपु-दल से

विनोद— तुम बनो मित्र, संगर में हमें विजय दो।

घोष— पूछा है मेरा नाम, बताता हूँ मैं,
सुन लो, मुझको सब इन्क़लाब कहते हैं,
जब-जब होते हैं अत्याचार भयंकर
तो लोग मुझे, उनका जवाब कहते हैं।

मैं अहंकार खाता, अन्याय पचाता
जो शोषक, मैं उनका शोणित पीता हूँ,
मैं दमन-चक्र पर अपना चक्र चलाता
मैं हाय ! हाय ! के स्वर सुनकर जीता हूँ।

रहता हूँ मैं दलितों के कातर स्वर में
जब अधिक दमन होता, मैं फट पड़ता हूँ,
जो निर्दोषों का दमन किया करते हैं
मैं उन लोगों की छाती पर चढ़ता हूँ।

मैं खुश होकर ज्वाला का सरगम सुनता
लपटों के शिखरों पर नाचा करता हूँ,
जो सर्वनाश निकला होता दम्भी का
मैं अट्टहास कर वह बाँचा करता हूँ।

जो अहंकार से इठलाया करते हैं
मैं एक-एक कर वे मस्तक चुनता हूँ,
जो महल बनाया करते मजलूमों का
मैं उन लोगों के लिये कफन बुनता हूँ।

मेरी लिपि के शोले अक्षर बनते हैं
बिजली चमका कर सतर खींचता हूँ मैं,
हाहाकारों का जाप किया करता मैं
शोणित से अपने मन्त्र सींचता हूँ मैं।

इतिहास बदल जाते मेरी हुंकृति से
जुल्मों के सब अरमान निकल जाते हैं,
मेरी प्रचण्डता की परछाँई तक से
अन्यायों के हौसले पिघल जाते हैं।

सुन लिया, दे दिया मैंने अपना परिचय
फिर सुन लो, मैं हूँ इन्कलाब कहलाता,
दुर्भाग्य-निशा का हृदय चीर देता मैं
मैं हूँ दुर्दिन में आफताब कहलाता।

पीड़ित भारत-वासियो ! मुझे अपनाओ
मैं इन्कलाब हूँ, इन्कलाब लाऊँगा,
जो धीरे-धीरे तुम्हें हजम करते हैं
मैं उन्हें समूचा खड़ा निगल जाऊँगा।

ओ यौवन के दीवानो ! ओ मतवालो !
तुम मेरे हो, मेरे उर से लग जाओ !
इस धरती के दिन हमें बदलने होंगे
तुम इन्कलाब की आग आज धधकाओ।

[विक्रम और विनोद दोनों इन्कलाब नाम-धारी व्यक्ति के हृदय से लगते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति मंच से अदृश्य हो जाता है।]

विक्रम और विनोद—हम आग इन्कलाबी अब धधकायेंगे
अपनी साँसों में इन्कलाब घोलेंगे,
जय बोलेंगे अपनी धरती माता की
हम इन्कलाब की जय मिलकर बोलेंगे।

[विक्रम और विनोद मिलकर 'इन्कलाब ! जिन्दाबाद !' के नारे लगाते हैं। नाटक के दर्शक भी प्रभावित होकर नारे लगाने में योग देते हैं।]

पात्र-परिचय

क्या देख लिया तुमने इनका यह नाटक ?
ये कुशल खिलाड़ी, उद्दीपित तारे हैं,
ये इन्कलाब की आग चले भड़काने
ये इन्कलाब के खुद ही अंगारे हैं।

जब ऐसे-ऐसे युवक साथ हैं अपने
कब तक धरती का संकट दूर न होगा ?
जो पनप रहा अन्याय खून पी-पी कर
वह पापी कब तक चकनाचूर न होगा ?

कर्तव्य-निष्ठ ये युवक हठीले अपने
अपने समाज में जीवन-ज्योति जगाते,
जब अवसर मिलता, ये ऐसे ही नाटक
अपने घर-बाहर सभी जगह दिखलाते।

भूमिका निभाई थी नाटक में जिनने
था किया मञ्च पर अभी जिन्होंने अभिनय,
धरती की सेवा का व्रत ठाना जिनने
उन सभी कलाकारों का पायें परिचय।

जयदेव गुप्त, बन कर विनोद आये थे
उनके साथी यशपाल बने विक्रम थे,
इतिहास बने सुखदेव मञ्च पर आये
भगवतीचरण भूगोल नहीं कुछ कम थे।

सहयोग सुशीला-दीदी का भी पाया
था किया संस्कृति का उनने प्रिय अभिनय,
क्या इन्कलाब का परिचय शेष रहा है?
है भगतसिंह ही इन्कलाब का परिचय।

ये दूल्हा बनने चले

भैया की लाड़ली बहन, लो अब यह सम्मुख आती,
आता है आनन्द इसे, भैया को बहुत खिझाती।
पुस्तक कभी छिपा रख देती, कभी कलम गायब है
तू-तू मैं-मैं इन दोनों की हो जाती जब-तब है।

वैसे मन ही मन भैया पर बहुत गर्व करती है,
किन्तु दाव लग जाय, चिढ़ा देती, न तनिक डरती है।
जब कुछ चलती नहीं, खीजकर अन्तिम अस्त्र चलाती,
पापा से कह देने की भैया पर धौंस जमाती।

पापा-मम्मी, इनके झगड़ों में भी रस लेते हैं,
कभी किसी को— कभी किसी को, वे शह दे देते हैं।
बच्चों की तू-तू मैं-मैं को देख-देख मुस्काते,
उर का संचित कोष स्नेह का, वे इन पर बरसाते।

भाई-बहनों के रगड़े-झगड़े घर-घर चलते हैं,
स्नेह-भाव ही इन झगड़ों के अन्तर में पलते हैं।
इसने चोटी पकड़ी उसकी, उसने चिमटी भरली,
इसने काटा, नोच-नोच कर उसने खूब खबर ली।

धमा-चौकड़ी, उठा-पटक मचती ही रहती घर में,
माता-पिता हुआ करते हैं हर्षित निज अंतर में।
लगती ही रहती है घर में जब-तब कोर्ट-कचहरी,
वादी-प्रतिवादी में छनती बहस खूब ही गहरी।

घर के बूढ़े-बड़े न्याय का दान किया करते हैं,
वे बच्चों की स्नेह-सुधा का पान किया करते हैं,
समाधान दोनों पक्षों का होता है निर्णय से,
और अधिक स्नेहिल होता है मिलकर हृदय, हृदय से।

जिनके घर यह चहल-पहल, वे बड़े भाग्य-शाली हैं,
माता-पिता बाल-उपवन के रखवाले माली हैं।
वात्सल्य-रस पिला-पिला, वे उन्हें बड़ा करते हैं,
इस जीवन-संग्राम-भूमि हित उन्हें खड़ा करते हैं।

हाँ, तो इन्हें देखिए! ये जो देते हमें दिखाई,
किसी बात पर झगड़ रहे हैं, बहन और यह भाई।
बहन कह रही, "बहुत बड़ी मैं खुश-खबरी लाई हूं,
बिलकुल ताजी-ताजी है, मैं सुन कर ही आई हूँ।"

भगतसिंह कह रहा, "सुना तो क्या खुश-खबरी तेरी,
क्यों तू कहती नहीं, अकारण लगा रही क्यों देरी?"
"ऊँ ऽ हूँ ऐसे नहीं कहूँगी, पहले रखो मिठाई,
बात बहुत मीठी है भैया जो मैं कहने आई।"

"यह मुँह और मिठाई? जा पहले अपना मुँह धो तू,
क्यों सर चाट रही है मेरा व्यर्थ समय मत खो तू।"
"अच्छा, लो, यह चली, किन्तु भैया तुम पछताओगे,
सच कहती हूँ, बिना सुने तुम चैन नहीं पाओगे।"

"अच्छा, बतला बात, मिठाई भी तू पा जायेगी,
किन्तु तभी, वह बात हृदय को यदि मेरे भायेगी।"
संधि हो गई मान्य, सुनाई यह खुश-खबरी भारी—
"दूल्हा बनने की भैया! अब कर लो तुम तैयारी।

शादी पक्की हुई और मँगनी की तिथि निश्चित है,
पापा खुश हो रहे और मम्मी भी अति हर्षित है।
धूम-धाम से घोड़ी पर चढ़ कर अब तुम जाओगे
और चाँद-सी गोरी-गोरी दुलहिन ले आओगे।

छिटकेगी चाँदनी हमारे इस घर के आँगन में,
छिटकेगी चाँदनी तुम्हारे, पुलकित-हुलसित मन में।
तुम देखोगे उसे, कहोगे—चाँद कहाँ से आया ?
और चाँद तब तुम्हें दिखेगा शरमाया-शरमाया।

अच्छा भैया ! वचन निभाओ, अब हो जाय मिठाई,
मुँह मीठा कर दो, है कैसी मीठी बात सुनाई।
शादी की शहनाई अपने घर बजने वाली है,
'शादी' सुनते हुई तुम्हारी तबियत मतवाली है।"

" चल ! चल ! हट तू, बड़ी मिठाई खाने वाली आई,
नहीं तनिक भी खुशखबरी जो तूने मुझे सुनाई।
शादी तो बन्धन है, इसकी कैसे खुशी मनाऊँ ?"
मैं तो खुश हूँ नहीं, मिठाई फिर क्यों तुझे खिलाऊँ ?"

"क्यों बनते हो भैया ! मन में मिश्री घुलती होगी,
रोम-रोम की गाँठ तुम्हारे मन की खुलती होगी।
मुझे बनाने चले, बात यह कह कर तुम बन्धन की,
क्या मैं नहीं जानती भैया ! बात तुम्हारे मन की ?

शादी हो जाने दो, फिर यह बात न कभी कहोगे,
बाहर जंगल तुम्हें लगेगा, घर ही बँधे रहोगे।
भैया ! ऐसी-वैसी भाभी होगी नहीं हमारी,
महाराज रणजीतसिंह जी की वह वंश-दुलारी।

भैया ! राजकुमारी, भाभी बन कर घर आयेगी,
राज करेगी इस घर में, गृह-लक्ष्मी कहलायेगी।
और तुम्हारे मन पर भी तो होगा उसका शासन,
हँस-हँस कर तुम किया करोगे, आज्ञाओं का पालन।

फिर क्यों हमें पूछने बैठे, तुम भाभी को पाकर,
हम लोगों से रखा करोगे अपना चांद छिपाकर।
एक बात है और भटकना होगा बन्द तुम्हारा,
क्रान्ति आदि के कामों से भी पा लोगे छुटकारा।"

भगतसिंह गम्भीर भाव से बोला, अच्छा जा तू,
जैसे तेरा जी चाहे, वैसे ही खुशी मना तू।
पर सुन ले ! जो बता रही तू मुझको चांद-सितारे,
लुभा नहीं पायेंगे मुझको, हों कितने ही प्यारे।

भाई-बहनों को मैं कैसे कभी भूल सकता हूँ,
मैं अपने भाई-बहनों के लिये भूल सकता हूँ।
कोटि-कोटि भाई-बहनों का प्यार मुझे लेना है
मैं उनका हूँ, यह उनको विश्वास मुझे देना है।

रही क्रान्ति की बात, समय यह सब कुछ बतलायेगा,
शादी भी हो जाय, लक्ष्य से कौन रोक पायेगा ?
दो चाचियाँ व्यथित हैं घर में, चाचा कब रुक पाये ?
मुक्ति-भाव ही उन लोगों के उर में रहे समाये।

किन्तु छोड़ इन बातों को, हों खुशियाँ तुझे मुबारक,
जा तू, मुझे काम करना है अभी बहुत आवश्यक।"
और इस तरह विदा बहन को कर वह उसका भाई,
भाव-सिंधु में डूबा, डुबकी गहरी खूब लगाई।

अंतर्द्वन्द्व

"कौन विचारों में सचमुच चन्दा-सा उतर रहा है ?
किसका रूप नशे जैसा इस मन में उभर रहा है ?
कौन सुरभि बन कर इन साँसों में घुलता जाता है ?
कौन आज संकल्प-विकल्पों पर तुलता जाता है ?

कौन कल्पना की गति-सा, गति बना हुआ है मन की ?
दिखा रहा रंगीनी मुझको कौन नये जीवन की ?
कौन अपरिचित स्नेहिल स्वर से कहता मुझको अपना ?
किसका जादू बना हुआ है इतना सुन्दर सपना ?

कौन मुझे आवाज दे रहा मेरे ही अन्तर से ?
कौन मुझे समझाता इतने मीठे कोमल स्वर से ?
कौन कह रहा मैं माँ को चन्दा-सी दुलहिन ला दूं ?
कौन कह रहा, इस घर में मैं फुल-झड़ियाँ बरसा दूं ?

नहीं ! नहीं ! यह कभी न होगा, मुझे नहीं समझाओ,
यह सम्मोहक पुष्प-वाण तुम मुझ पर नहीं चलाओ।
मेरे मन ! मेरे होकर भी क्यों तुम मुझे लुभाते ?
क्यों मेरे संकल्पों को तुम सपनों से बहकाते ?

मैं सैनिक व्रत ठान चुका हूँ, मुक्ति लक्ष्य है मेरा,
अपनी धरती पर लाना है मुझको स्वर्ण-सवेरा।
इस धरती के कण-कण में फिर जीवन लहराना है,
परिणय के बन्धन में बँध कर मुझे न रह जाना है।"

"भगतसिंह ! क्यों करते तुम ये बहकी-बहकी बातें ?
छोड़ रहे क्यों दिवस सुनहले, रजत-रंजिता रातें ?
जीवन के रंगीन क्षणों में राग-रंग अपनाओ,
यौवन पाया तो मीठे सपनों से इसे सजाओ।"

"नहीं ! नहीं ! इस इन्द्र-जाल में मुझको नहीं फँसाओ !
राग-रंग की बातें करके मुझे नहीं फुसलाओ !
राग-रंग कैसा, जब अपने घर में आग लगी हो,
सरगम कैसा, जब घर में लपटों की भूख जगी हो।

प्रबल आततायी कोई जब माँ का गला दबाये,
क्या उसका बेटा, मीठे मादक-सपने दुलराये ?
इतना बड़ा पाप मुझ से होगा न कभी जीवन में,
आग लगे ऐसे सपनों में, आग लगे यौवन में।"

"भूल रहे हो युवक ! अकेले तुम कर ही क्या लोगे ?
ले डूबेगा जोश, न जाने जाकर कहाँ मरोगे।
एक चने की क्या बिसात है जो कि भाड़ को फोड़े,
क्या बिसात है भुनगे की जो लौह-शृंखला तोड़े।

बौने अरे अपंग ! अगम पर्वत चढ़ने बैठे हो,
तिनके की तलवार, काल से तुम लड़ने बैठे हो।
जाओ ! दुनिया देखो ! अपनी यह हठ-धर्मी छोड़ो,
क्यों चुनते हो मौत ? मधुर जीवन से नाता जोड़ो।"

"आती मुझको हँसी, तुम्हारी इन बातों को सुन कर,
क्यों छोड़ूँ कर्तव्य, प्रणय के मधुर-पंथ को चुन कर,
कहाँ नहीं है मौत ? अरे ! यह तो सब को खाती है,
किन्तु वीर की मौत अमरता उसको दे जाती है।

हो मन में संकल्प, अगम पर्वत भी झुक जाते हैं,
हो मन में तूफान, प्रकृति के अंधड़ रुक जाते हैं।
बारूदी विस्फोट लिए संकल्प अटल है जिनका,
तो विध्वंसक तोप सहज बन सकता उनका तिनका।"

"दुराग्रही बन रहे भगत! तुम पीछे पछताओगे,
जिसको ठुकरा रहे, उसी पथ पर फिर तुम आओगे।
रहो कहीं भी, जाल रूप का तुम्हें फाँस ही लेगा,
और तुम्हारा हृदय प्रवंचित हो होकर तड़पेगा।

रूप और यौवन का जादू किस पर नहीं चला है!
कौन आज तक इस सम्मोहन से बच कर निकला है?
बड़े-बड़े योगी मुनियों को भी इसने हड़पा है,
जो भी हुआ विरक्त, रूप से आहत हो तड़पा है।

प्रखर रूप की धूप चटकती जब अपनी पर आकर,
बड़े-बड़ों के मन को भी यह रख देती झुलसा कर।
बहिर्मुखी व्यक्तित्व रूप को देख आह भरते हैं,
जो हैं अंतर्लीन, साधना मन ही मन करते हैं।

अतः रूप के तिरस्कार का तुम अभिशाप न झेलो,
यौवन का वरदान मिल रहा, सर-आँखों पर ले लो।
इन्द्र-धनुष के रंग, तुम्हारे मन पर आ बिखरेंगे,
मन के कोमल भाव, मधुर इन रंगों में निखरेंगे।"

"तर्क नहीं यह मान्य, रूप का वर्णन अति-रंजित है,
तर्क नहीं, विष-व्यंग्य साधना के प्रति यह व्यंजित है।
कैसी भी हो धूप, निवारण उसका हो जाता है,
जब कर्मठ व्यक्तित्व, कर्म में अपने खो जाता है।

दृढ़ हो यदि संकल्प, धूप भी छाया-सी लगती है,
संकल्पी के लिए नहीं कोई माया ठगती है।
मेरा भी संकल्प, नहीं परिणय संभव तब तक है,
मातृ-भूमि की मुक्ति प्राप्त होती न हमें जब तक है।

वसुंधरे ! मा ! तुम मेरे दृढ़ संकल्पों को बल दो,
दो अपना आशीष, भक्ति का संबल मुझे अटल दो।
वैभव हों सब त्याज्य, चरण-रज ही मस्तक पर झेलूँ,
मैं जीवन के खेल मौत के घर में जाकर खेलूँ।"



आग और यौवन का धनी युवक भगतसिंह जो परिणय के प्रेम-पाश को झटक कर गृह-त्याग करके चला गया।

वसुंधरे माँ !
तुम मेरे दृढ़ संकल्पों को बल दो,
दो अपना आशीष,
भक्ति का संबल मुझे अटल दो।
वैभव हों सब त्याज्य
चरण-रज ही मस्तक पर झेलूं,
मैं जीवन के खेल
मौत के घर में जाकर खेलूं।

गृह-त्याग

पूज्य पितृ-देव,
हो प्रणाम स्वीकार
और
क्षम्य अपराध मम आज गृह-त्याग का।
यह गृह-त्याग है पलायन कदापि नहीं,
किन्तु
संघर्ष-हेतु यह प्रस्थान है।
पुत्र-धर्म—
पुण्य-कर्म
वंश की परंपरा
मान-मर्यादा का पालन सगर्व हो।
इसी पुण्य कर्म-हेतु
कुल-धर्म रक्षण को
आज गृह-त्याग रहा पुत्र यह आपका।

मातु-श्री समुत्सुक हैं
पुत्र-वधू दर्शनार्थ
और तिथि निश्चित सुमंगल है पर्व की।
किन्तु
स्वल्प-बुद्धि-जन्य मेरा विश्वास दृढ़
परिणय की ग्रन्थि
ग्रन्थि होगी कर्त्तव्य की।

अनुमति का प्रश्न कहाँ
यह संभाव्य न थी
कोई तर्क ग्राह्य मातृ-मन को कदापि नहीं
माता के उर को
वियोग निज पुत्र का
मान्य नहीं
सह्य नहीं
नहीं स्वीकार्य है।

समझें वे
यहीं-कहीं बाहर गया हूँ मैं
मेरे अभाव से न मन विक्षुब्ध हो।
जिसने पुकारा है—
माता सभी की वह
उसकी पुकार सुन
जाना कर्तव्य है।
बन्दिनी है मातृ-भूमि
परिणय है पाप मुझे
मातृ-मुक्ति लक्ष्य आज उर में ज्वलन्त है।
स्नेहाशीष मिले
लक्ष्य-पूर्ति और सिद्धि-हेतु
दृढ़ संकल्प हो अटल संघर्ष में।

किन्तु दैवयोग वश
मातृ-मुक्ति-हेतु यदि—
जीवन का पुष्प हो समर्पित सुकार्य-हेतु—
पुत्र-शोक सह्य हो सगर्व
बलिदान यह
मंगल प्रभात बने देश स्वातंत्र्य का।

ग्रौर भी ग्रनेक लाल
भारत की माताएँ
हँस कर लुटाती रहीं
देश-धर्म-कर्म हेतु ।
क्योंकि बलिदान लाड़लों के व्यर्थ जाते नहीं,
मुक्ति प्राप्त होती
किसी फल से महान जो ।
ग्रतः निवेदन है बार-बार पितृ-देव,
मातृ-मन प्रबोधनार्थ सभी सदुपाय हों ।
भाई-बहनों को स्नेह-छाया सदैव मिले
शिक्षा[1] उचित मिले उन्हें शुभ-कर्म की ।
ग्रौर विश्वास मैं दिलाता हूँ बार-बार
लज्जित करूँगा नहीं
रक्त निज वंश का ।
पुण्य-कर्म हेतु
मातृ-भूमि की पुकार सुन
जाता हूँ सगर्व मैं—

आपका

भगतसिंह

---

१. विदेशी शासन को पलटने के प्रयत्न को भगतसिंह शुभ कार्य कहते थे ग्रौर ग्रौर इसके लिये मँजे हुए क्रान्ति-कारियों द्वारा शिक्षा प्राप्त करना ग्रावश्यक समझते थे । 'शिक्षा' ग्रौर 'शुभ-कार्य' ग्रादि सांकेतिक शब्द उनके कई पत्रों में मिलते हैं । वे हृदय से चाहते थे कि उनके सभी भाई ग्रपने पिता की देख-रेख में 'उचित शिक्षा' प्राप्त करें । ग्रपने भाई सरदार कुलतारसिंह को ग्रन्तिम पत्र उनने जेल से लिखा था उसमें भी इसी बात का संकेत मिलता है :—

"बरखुरदार ! हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना ग्रौर सेहत का ख्याल रखना ।"

पंजाब का शेर कानपुर में

जीवन के प्रिय सम्बन्धों को झटक चला नर-नाहर,
मारी एक छलाँग और वह था घेरे के बाहर।
वह लाहौर—जहाँ बचपन ने था कौमार्य कमाया,
भगतसिंह पर तेजवंत तारुण्य जहाँ झुक आया—

छोड़ दिया वह नगर और छोड़े सब प्रिय-जन पुर-जन,
एक बूंद का जीवन था अब महासिंधु का जीवन।
माँ का निश्छल प्यार, पिता का आत्म-भाव अपनापन,
भाई-बहनों और साथियों का भी छोड़ा बन्धन।

जीवन के रंगीन सुनहले सपने छोड़ चला वह,
मधुर और मादक सम्मोहन अपने छोड़ चला वह।
छोड़ चला वह मदिर सुवासित उर की शीतल छाया,
प्यार छोड़ उसने अंगारों के पथ को अपनाया।

जो आया हो आहुतियों का मुख चिर उज्ज्वल करने—
जो आया हो ज्योति-प्रेरणा बलिदानों में भरने—
जो आया हो मिट्टी की महिमा के प्रस्थापन को—
जो आया हो स्वाभिमान, गौरव के उत्थापन को—

वह कैसे बंध कर रह सकता था घर के बन्धन में ?
पूरा देश समाया हो घर बनकर जिसके मन में।
फाँद गया वह प्रान्त, धर्म, भाषा की दीवारों को,
फाँद गया वह सुदृढ़ स्नेह की ऊँची मीनारों को।

मातृ-मुक्ति के लिये हृदय उसका तिलमिला रहा था,
संकल्पों का रक्त साधना को वह पिला रहा था।
माँ के आँसू देख मौन रहता, कैसे संभव था,
इसीलिये उर में ज्वाला-मुखियों का प्रादुर्भव था।

पांचाल को छोड़ सिंह संयुक्त प्रान्त, में आया,
मन में थी संयुक्ति, संगठन उसने लक्ष्य बनाया।
बिखरी-बिखरी क्रान्ति-भावना उसे बहुत खलती थी,
उसके उर में शक्ति संगठन की आँधी चलती थी।

क्रान्ति-वीर सारे भारत के सबल संगठन करके,
स्वतंत्रता की दीप-शिखा हित शलभ-भावना भरके—
कूद पड़ें दृढ़ संकल्पों से यदि सब मुक्ति-समर में—
दूर नहीं है मुक्ति, प्राप्त हो सकती वह क्षण भर में।

इसी भाव से क्रान्ति-पंथ का बना सिंह वह साधक,
एक योग्य गुरु का मिलना भी लगा उसे आवश्यक।
नगर कानपुर क्रान्ति-केन्द्र है, वह सुनता आया था,
गुरु की महिमा भी मन ही मन वह गुनता आया था।

सच्चा गुरु पाने का जलता हुआ भाव उर में था,
अब लाहौरी सिंह क्रान्ति के केन्द्र कानपुर में था।
वही कानपुर, सत्तावन में जिसने धूम मचाई,
उस विराट स्वातंत्र्य-समर की जिसने लपट उठाई—

देख रहा अपनी आँखों से है वह उसी नगर को,
पहले-पहले आहुतियाँ दीं जिसने मुक्ति-समर को।
वही कानपुर यह, जिसकी गलियों में युद्ध हुआ था,
वही कानपुर, जिसका बच्चा-बच्चा क्रुद्ध हुआ था।

खेली नाना साहब ने थी जहाँ क्रान्ति की होली,
यही कानपुर मचला, लेने आजादी की डोली।
उसी भूमि के, भगतसिंह कर रहा आज दर्शन है,
जिसकी धूल देश-भक्तों को शुचि-शीतल चन्दन है।

यद्यपि क्रान्ति-भावना अब भी वैसी ही ज्योतित है,
किन्तु नगर का जीवन तब से अब कुछ परिवर्तित है।
देख रहा है सिंह, नगर क्या है, यह जन-सागर है,
इस सागर की लहर यहाँ हर अधिवासी नागर है।

नगर कानपुर, जन-कोलाहल का यह जाग्रत प्रहरी,
यहाँ कर्मयोगी-सा दिखलाई पड़ता हर शहरी।
जीवन इतना व्यस्त, यंत्रवत् वह भी चलता रहता,
ढलता है फौलाद, यहाँ जीवन भी ढलता रहता।

यह जन-पथ है, सभी लोग दिखते भागे-भागे से,
पीछे से आ जाती, हटती भीड़ नहीं आगे से।
लगता, जैसे आग लगी है सब दौड़े जाते हैं,
कोई सुनता नहीं किसी की सब ही चिल्लाते हैं।

रेल-पेल ताँगों, इक्कों, रिक्शों, मोटर कारों की,
खड़-खड़ धड़-धड़ यह मशीन कल-पुर्जों औजारों की।
हॉर्न जूँलते ही रहते हैं—पीं-पीं-पीं-पीं-पीं, पों-पों,
मिल के भोंपू गरजा करते, भें-भें-भें-भें, भों-भों।

टन-टन-टन-टन साइकिलें भी सन्नाती रहती हैं,
और मोटरें चक्कर खा-खा भन्नाती रहती हैं।
हथ-ठेले भी लदे-लदे हाथी जैसे चलते हैं,
बड़ा शहर है, सभी तरह के लोग यहाँ पलते हैं।

चहल-पहल है, उथल-पुथल है यहाँ सभी सड़कों पर,
पागलपन जैसा सवार लड़कियों और लड़कों पर।
आप लाख बचना चाहें, पर कैसे बच पायेंगे ?
क्या कर लेंगे आप, अगर ये आ टकरा जायेंगे।

टक्कर भी हो गई अरे ! यह लो उस चौराहे पर,
रिक्शा से आ भिड़ी साइकिल, खुद ही गिरी उलझकर।
रिक्शा चुप है, किन्तु साइकिल, रौब झाड़ती जाती
भोंपू चुप है, पर जैसे घण्टी दहाड़ती जाती।

झड़पा-झड़पी, अकड़ा-अकड़ी, बज उट्ठी रण-भेरी,
होने लगी भयंकर तू-तू मैं-मैं, तेरी-मेरी।
भोंपू ने आखें बदलीं, घण्टी को डाँट पिलाई—
"जा ! जा ! बड़ी हौसले वाली, मुझसे लड़ने आई।"

ताव आ गया घण्टी को, उसकी तबियत झन्नाई,
जैसे आग लग गई तन में, रिस खाकर भन्नाई।
दो की चार सुनाई उसने, अपना रौब जमाया
अपमानित हो कर भोंपू भी अब अपनी पर आया।

बोला—"पाला पड़ा मर्द से, अब तू यह जानेगी,
धूल चटाई नहीं तुझे तो कैसे पहचानेगी ?
अभी घड़ी कर रख देता हूँ मैं तुझको धरती पर,
खींचे लेता हूँ जवान, बातें करती बढ़-बढ़ कर।"

गरज उठी घण्टी—"आया तू बड़ा मरद का बच्चा,
मुझ जैसी से पड़ा न पाला, खा जाऊँगी कच्चा।
अभी पीस कर रख देती हूँ तुझको चटनी करके
करता है बकबास लफंगे ! पाजी दुनिया भरके !"

भोंपू भिन्ना गया, सुनी जब उसने कड़वी गाली,
मूँछों पर जा पड़ा हाथ, पर वार गया यह खाली।
मूँछों का मैदान साफ था, सभी हँस पड़े दर्शक,
रिक्शा में बैठे सज्जन ने बात कही आकर्षक—

"लड़ते जाओ दोस्त ! मात मत खाना पीछे हट कर,
ताव तुम्हारे बदले मैं देता अपनी मूँछों पर।"
सभी लोग खिल-खिला पड़े टल गया युद्ध था भारी,
दाढ़ी-मूँछों वाले भाई ने थी बाजी मारी।

यह लाहौरी सिंह, आपने क्या इनको पहचाना ?
आज कानपुर आया है, यह धरती का दीवाना।
जो पूछे, बलवंन्तसिंह यह अपना नाम बताता
छद्म नाम से भगतसिंह है अपना काम बनाता।

क्रान्ति के दो महान गुरु

श्री योगेशचन्द्र चैटर्जी, ये हैं जन-प्रिय नेता,
ये समाज में क्रान्ति-भावनाओं के सफल प्रणेता।
नाम 'राय साहब' से ये लोगों में जाने जाते,
श्रमिक-वर्ग के ये सच्चे शुभ-चिन्तक माने जाते।

वाणी में है ओज और जादू है इनके स्वर में,
लोगों को अपना लेने की क्षमता है अंतर में।
क्रान्ति-सूर्य होकर भी ये योगेशचन्द्र कहलाते,
जादूगर हैं, चन्द्र-किरण से अंगारे दहकाते।

घर इनका बंगाल, क्रान्ति-हित यहाँ कानपुर आये,
सबल संगठन के विचार ही हैं इनने अपनाये।
ये समाज में उग्र-चेतना भरने के हामी हैं,
हथ-कण्डे हैं सिद्ध, संघटक ये अच्छे नामी हैं।

भगतसिंह ने क्रान्ति-दीक्षा ली इनसे ही आकर,
अच्छी तरह गया परखा वह पहले तपा-तपा कर।
अगणित अग्नि-परीक्षाओं में बहुत खरा ही उतरा,
तन मन दोनों से बलिष्ट यह और हृदय से सुथरा।

किन्तु समस्या एक, सामने इन लोगों के आई,
बंगाली-दल में घुल-मिल कर रहता क्यों सिख भाई ?
लोगों को शंका करने का मिल ही सके न अवसर,
अब प्रताप कार्यालय इसने बना लिया अपना घर।



क्रान्ति के साक्षात् स्वरूप श्री योगेश चन्द्र चैटर्जी
जिनके क्रान्ति-दल में भगतसिंह कानपुर
में सर्वप्रथम दीक्षित हुआ था।

वाणी में है ओज और जादू है इनके स्वर में,
लोगों को अपना लेने की क्षमता है अंतर में।
क्रान्ति-सूर्य हो कर भी ये योगेशचन्द्र कहलाते,
जादूगर हैं, चन्द्र किरण से अंगारे दहकाते।

ये 'प्रताप' के पटु-संपादक श्री गरोश-शंकर हैं,
युवकों के हैं हृदय और उनके आचार्य-प्रवर हैं।
संपादन में सिद्ध, सभी के हैं ये हृदय-विजेता,
लोक-क्रान्ति के अध्यापक हैं, साथ-साथ अध्येता।

ये गरोश-शंकर होकर भी विद्यार्थी कहलाते,
ये 'प्रताप' से लोक चेतना लोगों में फैलाते।
गले-गले तक डूबे हैं ये देश-भक्ति के रँग में,
है प्रभाव-शाली आकर्षरण कर्म-शील के ढँग में।

राजनीति-साहित्य, एक साँचे में यहाँ ढले हैं,
ये सपूत हैं—लीक बदल कर ही जो सदा चले हैं।
है इनका आवास देश-भक्तों के लिए अखाड़ा,
बलिदानों का याद किया जाता है यहाँ पहाड़ा।

मस्ती में डूबे मतवाले यहाँ चले आते हैं,
क्रान्ति धर्म की प्रथम दीक्षा इनसे ही पाते हैं।
भगतसिंह ने भी अब इनको अपना गुरु माना है,
यहाँ पूर्ति का बल पाया, जो मन में प्रण ठाना है।

राजनीति में नहीं अभी ये यद्यपि पूरे डूबे,
किन्तु बहुत ऊँचे, अति पावन हैं इनके मंसूबे।
सीख रहे ये पाठ क्रान्ति का; साथ-साथ संपादन,
अद्भुत क्षमता से करते ये सभी कार्य-संचालन।

दूरदर्शिता का ही परिचय देते ये क्षरण-क्षरण में,
फूंक-फूंक कर पाँव धर रहे हैं ये इस प्रांगरण में।
इसी लिये तो छद्म नाम बलवन्त सिंह अपनाया,
गोपनीयता ही अपनाती सदा क्रान्ति की छाया।



अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी

स्व० श्री गणेशशंकर जी के साथ रह कर भगतसिंग एक कुशल संपादक बन गये थे। आगे चलकर भगतसिंह की संपादक-कला का लोहा आचार्य चतुरसैन शास्त्री को भी मानना पड़ा था अब गुप्त रीति से चाँद के फाँसी अंक के संपादन में भगतसिंह ने लगभग ७० शहीदों के अलभ्य चित्र और जीवनियाँ देकर अमूल्य सहयोग दिया था।

श्री विद्यार्थी जी की कृपा से भगतसिंह कुछ दिन तक कानपुर के एक विद्यालय में प्रधानाध्यापक भी रहे थे।

कई क्रान्ति-वीरों का परिचय यहाँ प्राप्त कर डाला,
नई उमंगों से मन होता रहता है मतवाला ।
यह परिचय भी तो प्रगाढ़ बन्धन बनने वाला है,
एक नया संग्राम मुक्ति का अब ठनने वाला है।

परिचय चिर बन्धन बन जाता, जब मन मिल जाते हैं,
जब मन मिलते तो भावों के शत-दल खिल जाते हैं ।
इन प्रगल्भ युवकों के उर भी मिलने को आतुर थे,
देश-भक्ति की प्रबल-भावना से अति पीड़ित उर थे ।

पंच-नद का बेटा गंगा की भयंकर बाढ़ में

आज प्रकृति ने नगर कानपुर पर है घेरा डाला,
प्रलय-मेघ-दल का दिखता हर मेघ क्रुद्ध मतवाला।
क्या पर्वताकार कजरारे घन धरती पर छाये,
बरसा रहे प्रलय झुक-झुक कर क्रोधित हो अर्राये।

उमड़-घुमड़ घन घोर-शोर कर, गरज-गरज घहराते,
विजय पताका विद्युत की हैं, बादल-दल फहराते।
बरस रहीं झर-झर-झर-झर-झर क्रोधित मूसल-धारें
बरसा रहा क्रुद्ध घन-मण्डल विध्वंसक बौछारें।

लो फुफकार उठीं क्रोधित हो, गंगा की भी धारा,
मचल उठी मतवाली नागिन, छोड़ केंचुली- कारा।
मर्यादा के कूल-किनारों को यह छोड़ चली है,
उठी अनय की लहर, विनय के बन्धन तोड़ चली है।

गरज-गरज बल खाकर, इठला कर यह लहराती है,
गृह, उपवन, वन, खेत, मेंढ मैदानों को खाती है।
नाच रही उत्ताल तरंगायित यह फन फैलाये,
लिये भूख विकराल बढ़ रही यह अपना मुँह बाए।

यौवन के उन्मद उभार-सी पल-पल पसर रही है,
विध्वंसक लीला में अब क्या कोई कसर रही है?
झाड़ और झंखाड़, बाग-वन, सबको लील रही है,
मानव के निर्माण-स्वप्न हठ-मठ कर छील रही है।

यह पानी की धार नहीं, बढ़ रही भूख की ज्वाला,
तरन-तारिनी ही कपालिनी बनी हुई विकराला।
प्रलय-मेघ घिर इसकी ज्वाला में घृत डाल रहे हैं,
ये विनाश-लीला हित इसको स्वयं उछाल रहे हैं।

कड़क रही बिजली, यह गंगा स्वयं बनी बिजली है,
सर्वनाश का रास रचाने यह घर से निकली है।
कोई अपना रास किनारे इसके रच न सकेगा,
दिखता है, इसकी चपेट से कोई बच न सकेगा।

अगणित मानव शव, मृत-पशु धारा में तैर रहे हैं,
लोक छोड़ यह, अन्य लोक की वे कर सैर रहे हैं।
भारी-भारी वृक्ष बाढ़ में पड़ तिनके-से बहते,
मारे जबर न रोने दे, फिर वे किससे क्या कहते?

गंगा, मानव-सृष्टि क्रुद्ध होकर संहार रही है,
प्रकृति-विजय का, वह मानव का नशा उतार रही है।
नहीं बाढ़, यह इसके उर की ज्वाला धधक उठी है,
प्रतिशोधी-भावना हृदय में उसके भभक उठी है।

पर मिट्टी का पुतला मानव, कभी दाव क्या हारे,
वश में कर ही लेता, नागिन कितनी ही फुंकारे।
वक्ष चीरता रहता है वह, भीषण तूफानों का,
कोई वक्ष न चीर सका मानव के अरमानों का।

कैसी भी हो विकट परिस्थिति, मानव चिर-सक्रिय है,
मौत भले स्वीकार, मनुज को नहीं पराजय प्रिय है।
मानव-मन की गहराई में हैं सागर भी डूबे,
बौना है आकाश, मनुज के ऊँचे हैं मंसूबे।

ज्वाला-मुखियों की ज्वालाएँ मानव पी सकता है,
कालकूट पीकर भी मानव हँस कर जी सकता है।
वह ज्वाला का अन्तराल, घुस कर झाँका करता है,
कीर्ति अगम शिखरों की भी मानव फाँका करता है।

दो पैरों वाले प्राणी की मति में ऐसी गति है,
इसके अरमानों की छाया, वह सारी संसृति है।
इसकी दो बाँहों में वह बल, जिसकी थाह नहीं है,
जिस पर चरण न पड़े मनुज के, कोई राह नहीं है।

देख मौत को, नहीं मनुज ने भय से लोचन मूँदे,
काल-व्याल के फन कराल मानव-चरणों ने खूँदे।
आज प्रकृति सहमी-सी, मानव की जय बोल रही है,
अपने अगणित भेद स्वयं उसके हित खोल रही है।

तो यह गंगा भी कैसे मानव को डरपायेगी ?
मानव अपनी पर आये, यह खुद ही शरमायेगी।
भीषण उछल-कूद कर यह, जितनी चाहे लहराले,
विजय-वाहिनी-सी यह अपनी विजय-ध्वजा फहराले।

यह मानव के संकल्पों को स्वयं राह दे देगी,
कितनी भी अथाह हो, उसके लिये थाह दे देगी।
दृढ़-परिकर हो, लो यह मानव-दल सन्नद्ध खड़ा है,
भीषण लहरों में नावों का बेड़ा उतर पड़ा है।

पतवारों को, मानव के भुज-बल का मिला सहारा,
लजवन्ती-सी दिखलाई देती गंगा की धारा।
मानव ने बढ़ कर विनाश की लहरों को ललकारा,
अब विध्वंस स्वयं, मानव से ही कर रहा किनारा।

डूब रहे जो, उन्हें सहारा मिलता है बाँहों का,
दिखता है आलोक उन्हें अब जीवन की राहों का।
घास-फूस बह जाये, पर अब मानव नहीं बहेगा,
मानव का यौवन कैसे भीषण अपमान सहेगा ?

मिली दिशाएँ हैं जीवन की, अब बहने वालों को,
सुख की साँसें पुनः मिलीं, पीड़ा सहने वालों को।
जो विस्थापित, उन्हें व्यवस्था की जाती है घर की,
जो आहत हैं, उन्हें छाँह मिलती विगलित अंतर की।

जो पीड़ित हैं, औषधि से उपचार किया जाता है,
उनको जीवित रहने को तैयार किया जाता है।
जीवन हित, धन-धान्य और परिधान जुटाये जाते।
उनकी सुख-सुविधाओं के सामान जुटाये जाते।

मानव की सेवा करना ही यह मानव का व्रत है,
इसी लिये अब यह सेवा-दल, मानव-सेवा-रत है।
खड़े हुए हैं ये जो कुछ नर-वीर यहाँ उत्साही,
मानवता की रक्षा करने वाले वीर सिपाही।

प्रखर तेज जिसके मुख-मण्डल पर यह झलक रहा है,
अपरिमेय पौरुष जिसके अंतर से ललक रहा है—
यह नर-पुङ्गव भगतसिंह है, पर बलवंत प्रकट में,
देश-वासियों की सेवा बैठी है इसके घट में।

जिसने महा-पंचनद की धाराओं को ललकारा,
उसे यहाँ बन गई चुनौती यह गंगा की धारा।
हिम-गिरि-सा विशाल संकट भी उसको नहीं बड़ा है,
इसीलिये वह यहाँ काल-धारा में कूद पड़ा है।

कई डूबते हुए प्राणियों को वह बना सहारा,
खींच काल के मुँह से, जीवन देकर उन्हें उबारा।
पौरुष के इस प्रखर-प्रदर्शन में इसके सहयोगी,
श्री बटुकेश्वर-दत्त बने शुभ-कर्मों के उद्योगी।

श्री बटुकेश्वरदत्त, बटुक हैं क्रान्ति-पाठशाला के,
सौम्य रूप ये, अंतर की चिर-विद्रोही ज्वाला के।
मातृ-भक्ति के स्वर्ण-पुष्प, मकरन्द स्वदेश-सुमन के,
संकल्पों के वज्र और ये अग्नि-दूत यौवन के।

श्री बटुकेश्वरदत्त बने हैं भगतसिंह के संगी,
चाँद और सूरज से शुभ-कर्मों के ये अनुषंगी।
खेल जान पर जाती है, यह राम-लखन की जोड़ी,
बलिदानों के लिये हृदय में इनके होड़ा-होड़ी।

मानव की सेवा हित इनने सेवा-समिति बनाई,
खेल मौत के लगी खेलने, इनकी शुभ तरुणाई।
गंगा मैया रूठ गई तो इनने उसे मनाया,
इनने मानव के प्रति मानव का कर्तव्य निभाया।

क्यों न इन्हीं जैसी मति-गति पायें सब भारत-वासी ?
इन जैसी ही शक्ति-भक्ति के बनें सभी अभ्यासी।
चले उठाने कंधों पर ये आजादी की डोली,
जाने कितने रत्न भरे इनकी बलिदानी झोली।



भगतसिंह के अभिन्न मित्र श्री बटुकेश्वर दत्त जिनका सुकुमार व्यक्तित्व दहकते अंगारों का प्रतीक रहा है।

श्री बटुकेश्वर दत्त, बटुक हैं क्रान्ति-पाठशाला के,
सौम्य रूप ये अन्तर की चिर-विद्रोही ज्वाला के।
मातृ-भक्ति के स्वर्ण-पुष्प, मकरंद स्वदेश सुमन के,
संकल्पों के वज्र और ये अग्नि-दूत यौवन के।

यह आदमी है या कार्टून

यह कौन यहाँ बैठा है गंगा-तट पर ?
कर रहा बात यह किससे मन ही मन में ?
है नगर यहाँ से दूर, वहाँ जीवन है
क्या करता है यह बैठ यहाँ निर्जन में ?

कह रही वेश-भूषा विचित्र यह इसकी
यह बहु-रूपिया है कोई अच्छा खासा,
यह विविध वेश नित अपने अदल-बदल कर
दे सकता है अच्छे-अच्छों को झाँसा ।

पर, बहु-रूपिया होता तो वहाँ नगर में
जाकर यह लोगों को कौशल दिखलाता,
इस भाँति विजन में बैठे-बैठे अपना
बहुमूल्य समय यह व्यर्थ न यहाँ गंवाता ।

यदि यह बहु-रूपिया नहीं, कौन है तो फिर ?
क्या बाजीगर, जो यहाँ चला आया है ?
अभ्यास करतबों का अभीष्ट क्या इसको ?
या सिद्ध कर रहा यह कोई माया है ?

बाजीगर भी तो नहीं जान पड़ता यह
दिख नहीं रहा है इसका कहीं पिटारा,
तो क्या कोई अवधूत यहाँ आ बैठा ?
या बैठा कोई यहाँ समय का मारा ?

परिधान देखिए आप तनिक अब इनका
बन गया जाँघिया, जीर्ण पायजामा है,
क्यों नया नहीं सिलवा लेते ये अच्छा ?
इसलिये कि इनके पास नहीं नामा है।

घिस गये पाँयचे घुटनों तक, छन-छन कर
सेवा भी तो की है उनने क्या डट कर,
था कोट बिचारा आस्तीन खो बैठा
बन गये पाँयचे आस्तीन हैं कट कर।

दिखता है, यह सब कारीगरी इन्हीं की
खद्दर-धारी क्या कलाकार हैं बाँके,
सी लिये कोट में पाजामे के अद्धे
खुद लगा लिये हैं मोटे-मोटे टाँके।

चप्पल टूटी है, टूटी रहे, हुआ क्या ?
दिल तो इनका दिख नहीं रहा है टूटा,
कपड़ों से यद्यपि मजनूँ ही दिखते है
पर दिखता है, दिल नहीं किसी ने लूटा।

यदि कोई मजनूँ होते, आहें भरते
दिखलाई देते थामे अपने दिल को,
यदि शायर होते, आसमान को तकते
या करते ये आबाद किसी महफिल को।

ये नहीं किसी सट्टे में बिगड़े दिखते
दिखते न तनिक भी ये दुनिया से ऊबे,
दिखते हैं केवल खोए-खोए से ये
दिखते हैं ये अपने भावों में डूबे।

ये थोड़े-थोड़े केश, विरल यह दाढ़ी
सरदार-वंश के दिखते हैं उजियाले,
पगड़ी गायब, रूमाल बँधा केशों पर
बिखरे जूड़े को है वह खूब सम्हाले।

यह कोट बहुत लम्बा जेबें क्यों फूलीं ?
क्या ठूँस-ठूँस कर जेबों में भर डाला ?
श्रीमान बैठ कर यहाँ कर रहे क्या ये ?
जाने अपनी किस धुन में बैठे लाला।

लो गया जेब में हाथ, अरे क्या निकला ?
यह तो निकली कोई सुन्दर पुस्तक है,
आवरण-पृष्ठ है चिकना रंग-बिरंगा
पुस्तक तो दिखती सचमुच आकर्षक है।

अच्छा, तो क्या पुस्तकें भरी जेबों में ?
ये चलते-फिरते बने पुस्तकालय हैं,
लो डूब गये ये किसी एक पुस्तक में
पढ़ने में दिखते अब कितने तन्मय हैं।

बन गया जाँघिया जो कि पायजामे का
उसमें भी जेबें, उनमें भरे चने हैं,
ये साथ ज्ञान के चने फाँकते जाते
उद्‌बुद्ध दार्शनिक क्या ये खूब बने हैं।

कुछ चने फेंकते जाते धारा में भी
कर रहे मछलियों को भी उनका वितरण,
क्या सर्व-भूत-भावना हृदय में पावन
उर की करुणा का करते सब में प्रसरण।

जो चित्र दिख रहा पुस्तक के पृष्ठों में
है शक्ल विदेशी, पर दाढ़ी धारी हैं,
क्या लिखा नाम ? क्रोपाटकीन लिक्खा है
ये रूस देश में हुए क्रान्ति-कारी हैं।

अच्छा, तो इस निर्जन में आकर इनको
साहित्य क्रान्तिकारी पढ़ना भाया है,
पुस्तक ये 'रोटी का सवाल'[1] पढ़ते हैं
क्या इस सवाल ने इनको तड़पाया है ?

इन पर तो रोटी के सवाल का हल है
ये रूखे-सूखे चने प्रेम से खाते,
पर हाल बादशाहों से क्या कुछ कम है ?
वैसे श्रम करने से ये नहीं लजाते।

इस नगर कानपुर में कुछ दिन पहले ही
अखबार शान से ये बेचा करते थे,
ये बहा-बहा कर अपना खरा पसीना
श्रम के साधक बन नित्य पेट भरते थे।

अभ्यास इन्हें है वैसे फाकों का भी
पर भूख नहीं औरों की देखी जाती,
हम लें डकार, कुछ लोग भूख से तड़पें
यह नहीं व्यवस्था सह्य इन्हें हो पाती।

१- रोटी का सवाल = यह पुस्तक रूस के प्रसिद्ध अराजकतावादी राजकुमार क्रोपाटकिन द्वारा लिखी गई पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है।

तो क्या समाज में समता के प्रेरक ये ?
जी हाँ, समूल परिवर्तन ध्येय बना है,
अपने समाज की नई व्यवस्था हित ही
सन्देश क्रान्ति का इन्हें प्रदेय बना है।

पहचान गये होंगे सम्भवतः अब तो
ये अपने ही 'बलवन्त' नाम-धारी हैं,
यदि चाहें, इनको भगतसिंह भी कह लें
ये लिये कार्य-क्रम कई बड़े भारी हैं।

सोते-जगते रहता सवार जो इन पर
वह देश-भक्ति का ही तो पागलपन है,
क्या भूख और क्या प्यास भान कब इनको
धरती की आजादी ही इन्हें लगन है।

ये हैं 'प्रताप' सम्पादन में सहयोगी
ये सदुपयोग करते हैं सदा समय का,
अवकाश तनिक भी मिल जाता तो पढ़ते
परिपूर्ण ज्ञान है इनको क्रान्ति विषय का।

घुस-पैठ कर रहे छात्र-जगत में भी ये
हैं जितने छात्रा-वास, पहुँच जाते ये,
जो इन्हें काम के छात्र दिखाई देते
उनको अपने दल में भी ले आते ये।

प्रभावशाली वक्ता होने के साथ-साथ सरदार भगतसिंह अच्छे लेखक भी थे। पंजाब में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा आयोजित हिन्दी-निबन्ध-प्रतियोगिता में भगतसिंह ने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। उर्दू और संस्कृत का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। अंग्रेजी में लिखा गया उनका बयान तो बड़े-बड़े वकीलों को भी आश्चर्य में डाले बिना न रहा।



श्री विजयकुमार सिन्हा, जो क्रांतिकारियों
की केन्द्रीय समिति के सक्रिय
सदस्य रहे हैं।

हैं सिन्हा विजयकुमार भगत के साथी
जो धनी लेखनी और विचारों के हैं,
मँझधार कूद पड़ने के जो आदी हैं
जो नहीं समर्थक कभी किनारों के हैं।

ये पत्रकारिता के अच्छे ज्ञाता हैं
संपादन के इनको लटके आते हैं,
है आग उगलती लौह-लेखनी इनकी
अच्छे-अच्छे, अच्छे झटके खाते हैं।

तो क्या समाज में समता के प्रेरक ये ?
जी हाँ, समूल परिवर्तन ध्येय बना है,
अपने समाज की नई व्यवस्था हित ही
सन्देश क्रान्ति का इन्हें प्रदेय बना है।

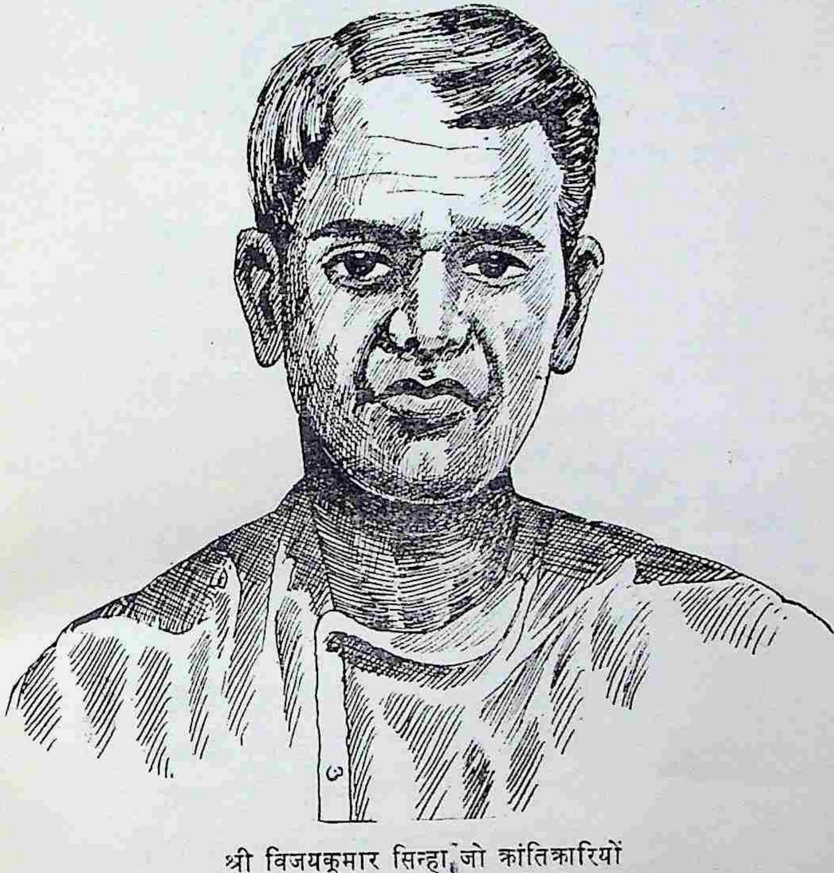
पहचान गये होंगे सम्भवतः अब तो
ये अपने ही 'बलवन्त' नाम-धारी हैं,
यदि चाहें, इनको भगतसिंह भी कह लें
ये लिये कार्य-क्रम कई बड़े भारी हैं।

सोते-जगते रहता सवार जो इन पर
वह देश-भक्ति का ही तो पागलपन है,
क्या भूख और क्या प्यास भान कब इनको
धरती की आजादी ही इन्हें लगन है।

ये हैं 'प्रताप' सम्पादन में सहयोगी
ये सदुपयोग करते हैं सदा समय का,
अवकाश तनिक भी मिल जाता तो पढ़ते
परिपूर्ण ज्ञान है इनको क्रान्ति विषय का।

घुस-पैठ कर रहे छात्र-जगत में भी ये
हैं जितने छात्रा-वास, पहुँच जाते ये,
जो इन्हें काम के छात्र दिखाई देते
उनको अपने दल में भी ले आते ये।

प्रभावशाली वक्ता होने के साथ-साथ सरदार भगतसिंह अच्छे लेखक भी थे। पंजाब में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा आयोजित हिन्दी-निबन्ध-प्रतियोगिता में भगतसिंह ने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। उर्दू और संस्कृत का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। अंग्रेजी में लिखा गया उनका बयान तो बड़े-बड़े वकीलों को भी आश्चर्य में डाले बिना न रहा।



श्री विजयकुमार सिन्हा, जो क्रांतिकारियों
की केन्द्रीय समिति के सक्रिय
सदस्य रहे हैं।

हैं सिन्हा विजयकुमार भगत के साथी
जो धनी लेखनी और विचारों के हैं,
मँझधार कूद पड़ने के जो आदी हैं
जो नहीं समर्थक कभी किनारों के हैं।

ये पत्रकारिता के अच्छे ज्ञाता हैं
संपादन के इनको लटके आते हैं,
है आग उगलती लौह-लेखनी इनकी
अच्छे-अच्छे, अच्छे झटके खाते हैं।

जो देश-भक्ति की लगन हृदय में इनके
पाई जाती वह लगन बहुत कम में है,
साथी करते हैं गर्व सदा ही इन पर
'कितना चमकीला हीरा यह हम में है।'

ये भगतसिंह के बने सभी साथी हैं,
साथी बनने का यह क्रम अभी निरन्तर,
यह जिसको छू दे, कुन्दन बन जाता वह
आते हैं इसको अच्छे जन्तर-मन्तर।



श्री जयदेव कपूर
बम-बनाने के कारखानों के संचालन में भगतसिंह और शिव वर्मा के अच्छे साथी रहे हैं।

साथी कपूर जयदेव नहीं कुछ कम हैं
ये हैं प्रतिभा के धनी और मेधावी,
इनका बिगाड़ क्या लेगी विषम परिस्थिति
ये स्वयं उसी पर हो जाते हैं हावी।

जो देश-भक्ति की लगन हृदय में इनके
पाई जाती वह लगन बहुत कम में है,
साथी करते हैं गर्व सदा ही इन पर
कितना चमकीला हीरा यह हम में है।

तेरह का अशुभ अंक

"यह जो चित्र एक बालक का मैंने अभी दिखाया,
नाम उजागर किया देश का इसने नाम कमाया।
इसका चित्र बताता है, यह एक वीर बच्चा था,
किसी सिंहनी का जाया गुरु-भक्तसिंह सच्चा था।

एक रहस्य और भी है जो मैंने अब जाना है,
क्यों तेरह का अंक अशुभ अंग्रेजों ने माना है।
यह वह समय सिक्ख-पंजाबी-कूके विप्लवकारी,
गोरों की सरकार मिटाने करते थे तैयारी।

देश-धर्म-गौ-रक्षा के व्रत का संकल्प अटल था,
सभी नाम-धारी[1], उनके उर में बाँहों में बल था।
उनके विप्लव और संगठन का रहस्य सब यह था,
अपनी धरती, और किसी का शासन उन्हें दुसह था।

इस विप्लवी-संगठन के गुरु रामसिंह थे नेता,
मधुर वचन कह बन जाते थे सब के हृदय विजेता।
अपरिपक्व योजना अभी, पर विप्लव भड़क उठा था,
अत्याचारी शासन का दिल धड़-धड़ धड़क उठा था।

---

१. नाम-धारी = यह सिक्खों के एक संप्रदाय का नाम है। इस संप्रदाय के मानने वाले सिक्खों के गुरु श्री रामसिंह जी थे जिनका जन्म सन् १८२४ ई० में लुधियाना के भैणी नगर में हुआ था। गुरु रामसिंह जी के नेतृत्व में गौ-रक्षा के संकल्पी सिखों ने गोपनीय रूप से अंग्रेजी शासन को उलटने की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। योजना पूर्ण होने के पूर्व ही विद्रोह भड़क उठा और विद्रोहियों को या तो युद्ध में प्राण देने पड़े या सरे आम चौराहों पर फाँसियाँ दी गईं। कुछ को तोप के मुँह से बाँध कर उड़ाया गया।

जम कर थी मुठभेड़ हुई, पर गये वीर कुछ मारे,
कुछ विशाल सेना द्वारा भी पकड़े गये बिचारे।
हुआ वही जो होता आया, गये वीर लटकाये,
कुछ तोपों से बँधे, सभी के सम्मुख गये उड़ाये।

वह 'मालेरकोटला' कस्बा जहाँ निकट लुधियाना,
वहाँ शहीद हो गया आजादी का हर पर्वाना।
मिस्टर 'कावन' ने पहना था तब जल्लादी बाना,
वह डिप्टी अँग्रेज कमिश्नर, वह खुर्राट पुराना।

अंगारे-सी लाल-लाल आँखें, दाढ़ी वाला था,
लिये मेम को साथ यहाँ उसने डेरा डाला था।
वे विद्रोही वीर, शिकंजे में सब फँसे हुए थे,
सब के हाथ रस्सियों द्वारा पीछे कसे हुए थे।

दिन-दोपहरी, चौराहे पर ही नर-मेध रचा था,
थे पचास, पर जीवित उनमें कोई नहीं बचा था।
एक-एक को पकड़ तोप के मुँह से बाँधा जाता,
बत्ती लगते ही गोला भी था कमाल दिखलाता।

एक धमाका, और वीर हो जाता चिन्दी-चिन्दी,
हँसते-हँसते था शहीद होता जाता हर हिन्दी।
एक धमाका, और खून भी था फुहार बन जाता,
अरे ! वतन का प्यार वीर को था खुमार बन जाता।

एक धाँय के साथ लोथड़े उड़-उड़ बिखर रहे थे,
वीरों के बलिदान, खून से अपने निखर रहे थे।
एक धाँय के साथ हड्डियों के थे पते न चलते,
देश-भक्त को अत्याचारी थे इस तरह कुचलते।

खून हड्डियों और लोथड़ों की वर्षा होती थी,
दानव के हाथों में पड़ कर मानवता रोती थी।
कौए उड़ती हुई बोटियाँ झपट-झपट उड़ते थे,
चील और गिद्धों के दल दावत को आ जुड़ते थे।

क्षत-विक्षत लाशों को चोंचों से वे नोच रहे थे।
लगा हाड़ से माँस उसे वे सभी खरोंच रहे थे,
एक-दूसरे पर गुर्राकर कुत्ते भूँस रहे थे,
मुँह से दबा, हड्डियों के वे टुकड़े चूस रहे थे।

वातावरण भयावह होता जाता था पल-पल में,
चीख रही धरती, ज्वाला थी नभ के अन्तस्तल में।
धुंआ गड्ड का गड्ड, तोप के मुँह से उठ-उठ फैला,
समा रही दुर्गन्ध, वायुमण्डल हो रहा विषैला।

एक-एक कर इसी तरह सब बलि होते जाते थे,
उधर अटारी छज्जों पर दर्शक रोते जाते थे।
कोई बहन चीख कर धरती पर धड़ाम-से गिरती,
कोई माँ बे-सुध हो जाती आँख किसी की फिरती।

भारत-माँ के लाल वीरता से दम तोड़ रहे थे,
उन्हें देख कुछ लोग स्वयं अपने सर फोड़ रहे थे।
था कुहराम मचा, कानों के पर्दे फट-फट जाते,
हाय! हाय! करके नर-नारी एक साथ चिल्लाते।

गोरे घुड़-सवार सड़कों पर रह-रह गरज रहे थे,
माता-पिता सभी अपने बच्चों को बरज रहे थे।
था भय का साम्राज्य, मौत की छाया घूम रही थी,
जो शहीद होते, वह उनके माथे चूम रही थी।

कोई बालक बड़े जोर से माँ के उर से चिमटा,
कोई सिकुड़ रहा था कोई दिखता सिमटा-सिमटा।
कुछ थे दादी की गोदी में बैठे दुबके-दुबके,
इधर-उधर से झाँक रहे थे पर कुछ चुपके-चुपके।

बिखर-बिखर चिन्दी-चिन्दी हो, वीर इधर मरता था,
नर-पिशाच वह बैठा-बैठा अट्टहास करता था।
उसकी खूनी आँख मौत की भाषा बाँच रही थी,
उनके मन में हिंसा नङ्गी होकर नाच रही थी।

बलि-वेदी पर चढ़ा दिये जब उनपचास नर-नाहर,
केवल एक सिंह-बच्चा अब शेष रह गया बाहर।
दाँत दूध के शेष, फूल-सा कोमल तन पाया था,
यह अबोध बालक भी रस्सी से बँध कर आया था।

दोनों हाथ बँधे रस्सी से, दो सैनिक पकड़े थे,
वे मजबूत शिकंजे में उसको कस कर जकड़े थे।
पर बालक के मन में जैसे नहीं किसी का डर था.
छोटा था तो क्या, दुश्मन को खोटा सिंह बबर था।

दुनिया-दारी की उसको कुछ अब तक नहीं खबर थी,
यह बालक मासूम अभी कुल तेरह वर्ष उमर थी।
पर उसका हौसला देखकर सब की भरी जवानी,
नत-मस्तक हो-हो जाती थी, भरती आगे पानी।

स्वयं मौत ही जब उसकी अगवानी करने आई,
पावन मुख-मुस्कान देख कर उसने मुँह की खाई।
मुझको भी अब मरना है, वह यह भी भूल रहा था,
जैसे-जैसे मौत निकट आती वह फूल रहा था।

सैनिक यम के दूत बने, वे उसको खींच रहे थे,
हृदय फट रहे लोगों के, अपने दृग मींच रहे थे।
वह दानव दुर्दान्त काल जब उसको चला हड़पने,
हर दर्शक के प्राण आत्म-पीड़ा से लगे तड़पने।

उसे लील जाने थी अब तैयार तोप मुँह बाए,
इसे बचाओ! इसे बचाओ! कह कर सब चिल्लाए।
बोल उठे कुछ लोग, पाँच-दस हम में से बलि करदो,
पर इस एक दुध-मुँहे को तुम जीने का अवसर दो।

किसी वंश के इस दीपक को असमय फूँक न मारो,
किसी कलेजे के टुकड़े को मत कुचलो हत्यारो!
मत छीनो यह लाल कि इसकी माता डकरायेगी,
घायल हिरनी सी उठ-उठ कर वह पछाड़ खायेगी।

उसका क्रन्दन सुन, धरती की छाती फट जायेगी,
इसके वध से विश्वासों की नींद उचट जायेगी।
मत छीनो भारत-माता की इस ज्वलन्त आशा को,
मत छीनो साकार वीरता की इस परिभाषा को।

अरे! एक घर तो डाइन भी छोड़ चली जाती है,
वज्र-हृदय बन गये, नहीं क्यों तुम्हें दया आती है?
छोड़ो! छोड़ो! अरे किसी के इस चन्दा को छोड़ो!
अरे! दूध के इस फाहे से तुम मत रक्त निचोड़ो!

इसी भाँति रो-रो विलाप कर जन-समूह चिल्लाया,
देख पिघलते पत्थर को भी वह दानव झल्लाया।
समीपस्थ उसने अपनी गौराङ्ग प्रिया को देखा,
नाप ले रहा हो जैसे नागिन के फन का लेखा।

वह नारी जो देख चुकी थी उनपचास को मरते,
किन्तु न देखा उसे किसी ने एक आह भी भरते।
यह विलाप सुन अब उसकी भी आँख डब-डबा आई,
किसी शिला पर उग आये जैसे पानी की काई।

बोली, "प्रियतम ! इसे भले ही और सजा तुम देदो,
इसे तोप से उड़ा, किन्तु मत इतनों के दिल भेदो।"
जिस मरुथल में आँसू की अविरल वर्षा भी सूखी,
जिसकी खूनी प्यास बन गई थी लाशों की भूखी—

जिसकी हिंसा ने बर्बरता से रौंदा जन-मन था,
वह अपनी प्रेयसि के भावों से दिखता सहमत था।
वह बालक की ओर मुड़ा, लेकर आँखों में ज्वाला,
एक साँस में ही जाने उसने क्या-क्या बक डाला।

ऐसा आया रोष, होश खो बैठा दुष्ट कुचाली,
बालक के गुरु को भी निकली उसके मुँह से गाली।
तड़प सिंह-बच्चे ने भी अब अपनी देह उछाली,
ज्वाला की आँधी बन बैठी थी आँखों की लाली।

सह न सका बालक अपने गुरु का अपमान भयंकर,
वह कोमल-सा फूल, शत्रु को बन बैठा प्रलयंकर।
घिरा सैनिकों से था यद्यपि, बँधा हुआ था कसकर,
नरम खाल भी उधड़ी जाती थी रस्सी में फँसकर—

ऐसा झटका दिया, उछल उसने छलाँग वह मारी,
रस्सी छुड़ा दबोचा जा उसने वह अत्याचारी।
चढ़ बैठा उसकी छाती पर दाढ़ी पकड़ रखी थी,
कस कर सबल मुट्ठियों में, निज, उसको जकड़ रखी थी।

ऐसा लगा, वज्र ने जैसे हो पर्वत थर्राया,
अंकुश से आहत हो जैसे गज प्रमत्त थर्राया।
नीचे पड़ा-पड़ा वह हाथी-सा चिंघाड़ रहा था,
और सिंह-शावक उसको झकझोर दहाड़ रहा था।

विद्युत जैसी शक्ति उभर आई उसकी नस-नस में,
एक बाल ने कर डाला था प्रबल काल को वश में।
एक नहीं, दो-चार नहीं, दस-बीस सिपाही दौड़े,
बालक पर घूँसों मुक्कों के पड़ने लगे हथौड़े।

दस-दस सैनिक हाथ खींचते, पर न खींच पाते थे,
और-और वे जोर लगाकर, फिर-फिर भिड़ जाते थे।
पर बालक में तूफानों का जोर उभर आया था,
उसके तन में गुरु गोविन्द का खून उतर आया था।

उठा-उठा अफसर का सर, धरती पर पटक रहा था,
खींच-खींच दाढ़ी के बालों को वह झटक रहा था।
फूल उठे थे नथुने उसके, वह फुंकार रहा था,
विकट रोष जागा था, हूँ ! हूँ ! कर हुंकार रहा था।

जब देखा वह किसी तरह भी छूट नहीं पाता है,
जितना खींचों, उसका उतना बल बढ़ता जाता है।
वे गोरे सत्ता-धारी भी अब बन गए कसाई,
कुछ न चली तो एक युक्ति अब उनके मन में आई।

तीखी तलवारों का अब उनने ले लिया सहारा,
नहीं मौत के घाट किन्तु सहसा ही उसे उतारा।
उन यम-दूतों ने उसके दोनों हाथों को काटा,
हत्यारों के पास नहीं था निर्दयता का घाटा।

बिना हाथ का तन ले जाकर, एक ओर जा पटका,
बालों में उलझे हाथों को बड़े जोर से झटका।
फिर भी उन दोनों हाथों में दाढ़ी खिंच आई थी,
सजा गालियाँ देने की उस जालिम ने पाई थी।

पंख कटे पंछी-सा बालक घायल होकर तड़पा,
किन्तु काल ने उसे शीघ्र ही महा-उदर में हड़पा।
वह अभिमन्यु-वीर-सा लड़ते-लड़ते स्वर्ग सिधारा,
उसे निगल कर तृप्त हो गया वह शासन हत्यारा।

तो यह है उस बाल-वीर की अद्भुत शौर्य-कहानी,
जिसकी याद बनी अंग्रेजों को अब भी हैरानी।
तेरह वर्ष उम्र थी उसकी, वे हैं भूल न पाते,
इसीलिये तो वे तेरह का अंक अशुभ बतलाते।

सचमुच ही उस बाल-वीर की याद हमें भी ताजी,
असम्मान से जो न हुआ जीवित रहने को राजी।
उसकी याद आज भी हममें विद्युत भर देती है,
देश-धर्म पर मर-मिटने को उद्यत कर देती है।

ऐसे-ऐसे होते आये इस भारत के बच्चे,
मन से स्वच्छ, कर्म से योगी और वचन से सच्चे।
भारत-माता की गोदी में ऐसे लाल पले हैं,
प्राणों का परित्याग किया पर प्रण से नहीं टले हैं।

वह गुरु-भक्त आज भी हमको है गुरु-भक्ति सिखाता,
है उसका बलिदान आज भी हमको पंथ दिखाता।
खून वही भारत की संतानों में अब भी बहता,
भारत के हर बालक से वह खून आज भी कहता—

धरती का सम्मान, प्राण देकर हम सदा रखेंगे,
हम अपयश के नहीं, मौत के फल यदि मिलें, चखेंगे।
अवसर आये तो फाँसी के फन्दे भी चूमेंगे,
हम मतवाले देश-प्रेम की मस्ती में झूमेंगे।"

■ ■ ■

हाथ जोड़ मुख्याध्यापक जी बैठ गए यह कहकर,
सभा-भवन में बजीं तालियाँ तड़-तड़-तड़ रह-रहकर।
सभाध्यक्ष जी खड़े हुए, था हर्ष सभा में छाया,
बोले—"मेरे मन में भी अब यह विचार है आया—

धन्य हुए हम सुन प्रधान जी की ओजस्वी वाणी,
यह वाणी जन-जन के मन को बनी रहे कल्याणी।
जो कहना था कहा जा चुका, मैं क्या कह पाऊँगा,
पर मैं एक बात छोटी-सी यह कहकर जाऊँगा—

"वीरों के बलिदान हमारे लिए बनें पथ-दर्शक,
जीवन नहीं, देश की मिट्टी लगे हमें आकर्षक।
हम मिट्टी का मोल प्राण दे-देकर सदा चुकायें,
जितने जन्म मिलें भारत की धरती पर ही पायें।"

■ ■ ■

धन्यवाद के आगे का क्रम था अब सभा-विसर्जन,
नई प्रेरणा—नई दिशा का किया सभी ने अर्जन।
सभाध्यक्ष जी के, प्रधान जी के स्वर गूँज रहे थे,
उर-उर में प्रतिध्वनित हो रहे, जो ये शब्द कहे थे—

"वीरों के बलिदान हमारे लिए बनें पथ-दर्शक,
जीवन नहीं, देश की मिट्टी लगे हमें आकर्षक।
हम मिट्टी का मोल प्राण दे-देकर सदा चुकायें,
जितने जन्म मिलें भारत की धरती पर ही पायें।"

"धरती का सम्मान प्राण दे कर हम सदा रखेंगे,
हम अपयश के नहीं मौत के फल यदि मिलें, चखेंगे।
अवसर आये तो फाँसी के फन्दे भी चूमेंगे,
हम मतवाले देश-प्रेम की मस्ती में भूमेंगे।"

■ ■ ■

उत्सुक होंगे आप, करा दूँ सभाध्यक्ष से परिचय,
किया सुशोभित आकर जिनने यह छोटा विद्यालय।
ये हैं श्री गणेशशंकर जी, जन-सेवी सम्पादक,
जो बलिदानी भावों के ही रहे सदा विज्ञापक।

इनने ही तो भगतसिंह को अध्यापक बनवाया,
गौरवशाली यह प्रधान पद, इनने ही दिलवाया।
ये प्रधान जी छद्म नाम से अध्यापन करते हैं,
भाव नई पीढ़ी में प्रेरक इसी भाँति भरते हैं।

अध्यापन के साथ क्रान्ति का पाठ स्वयं पढ़ते हैं,
गुरु की चरण-वन्दना कर गौरव-गिरि पर चढ़ते हैं।
ऐसा रंग चढ़ा है इन पर, हुए क्रान्ति में तन्मय,
नगर कानपुर बना क्रान्ति का उन्हें महाविद्यालय।

माँ या बड़ी माँ ?

भगतसिंह— जयदेव ! अरे तुम कैसे आये भैया
बोलो घर पर तो पूर्ण कुशलता है सब ?
कब छोड़ा है लाहौर ? और क्या कारण ?
तुम यहाँ कानपुर में बोलो आये कब ?

जयदेव— हो गये मुझे दो दिन इस महा-नगर में
इस जन-सागर का मंथन करते-करते,
मैं खोज निरन्तर रहा तभी से तुमको
सब पते ठिकानों पर अविराम विचरते।

घर पर सकुशल हैं सभी, किन्तु केवल माँ
घुलती जाती हैं तुमको रटते-रटते,
कहती हैं—अब थोड़े दिन शेष बचे हैं
ये भी कट जायेंगे अब कटते-कटते।

भगतसिंह— भैया ! क्या उनकी दशा नहीं अच्छी है ?
बोलो ! कुछ चिन्ता की तो बात नहीं है ?
जब से आया, कुछ भी न हाल सुन पाया
हो रहा कहाँ क्या, कुछ भी ज्ञात नहीं है।

वैसे तो सब का ध्यान मुझे आता है
पर माँ की ममता रहती मुझको घेरे,
है साथ छोड़ती नहीं याद बस माँ की
आते हैं उसके भाव याद बहुतेरे।

वह उसका निश्छल लाड़-प्यार, वह ममता
हम लोगों के प्रति वह चिंतातुर अंतर,
वह सुधा-सिक्त, स्नेहिल, कोमल मृदुवाणी
मैं भूल नहीं पाता हूँ उसको क्षण भर।

खाने-पीने के लिये झिड़कियाँ देना
वह हठ करके दधि-माखन हमें खिलाना,
घर की गायों का दूध औंट हाँडी में
बरजोरी से वह हमको दूध पिलाना।

वह गर्म दाल में घी उँडेल देना, फिर
बैठे रह कर वह पी जाने को कहना,
मैं नहीं भूल सकता हूं अपने घर में
घी और दूध की नदियों का वह बहना।

जीवन के निर्मम शून्य क्षणों में जब-तब
है मुझे याद आती माँ की सब बातें,
मेरे सुख को, वह उसका दुआ मनाना
मेरे दुख में आँखों की वे बरसातें।

जयदेव— कह रहे ठीक ही भाई! तुम यह सब कुछ
माँ को भी तो दिन-रात तुम्हारी रट है,
उसके अन्तर में—वाणी में तुम ही तुम
कहती है—बस अब मेरा समय निकट है।

भोजन आता, तो बैठ सोचती रहतीं
पर हाथ नहीं उठ कर मुँह तक जाता है,
समझा-समझा कर उनको, सब थक जाते
कोई न उन्हें भर-पेट खिला पाता है।

कहती हैं—"मेरा लाल कहाँ होगा वह
क्या पता, न जाने वह क्या खाता होगा,
यदि नहीं किसी दिन मिलता होगा खाना
शायद वह भूखा ही सो जाता होगा।"

सोते-सोते माँ चौंक-चौंक पड़ती हैं
बाहर आकर लेने लगती हैं आहट,
कहती हैं—"शायद अभी भगत आया था
दरवाजे पर थी हुई अभी कुछ खट-खट।"

फिर यों ही सारी रात बिता देती हैं
ओढ़ने-बिछाने से उनको चिढ़ आती,
कहती हैं—"मेरा लाल कहाँ होगा वह
मेरे बच्चे को होगी ठण्ड सताती।

इस तरह बैठते-उठते, सोते-जगते
बस ध्यान तुम्हारा ही माँ को रहता है,
तुमको अनुदिन रटते-रटते माँ का उर
सच समझो भैया ! बहुत कष्ट सहता है।

भगतसिंह— जयदेव ! भास मुझको भी होता यह सब
क्या करूँ, विवश हूँ उलझन बहुत बड़ी है,
माँ और बड़ी माँ, इनमें से चुनना है
अब निकट परीक्षा की आ गई घड़ी है।

है एक ओर केवल मेरी अपनी माँ
दूसरी ओर हम सबकी भारत-माता,
किसको अपनाऊँ और किसे मैं छोड़ूँ ?
मेरे मन को है यह विचार तड़पाता।

जयदेव— यह बात न लगती मुझे तनिक उलझन की
भैया ! यह तो चिन्ता का विषय नहीं है,
शुभ लक्ष्य-पूर्ति के लिये बने जो बाधा
ऐसा तो होता माँ का हृदय नहीं है।

हम हो जायें चाहे कितने भी ऊंचे
पर थाह नहीं ले सकते माँ के मन की,
दुनिया की सब भाषाएँ हम पढ़ सकते
मुश्किल भाषा पढ़ना माँ के चिन्तन की।

वे कहती हैं—वह एक बार आ जाये
मैं उसे खुशी से स्वयं विदा कर दूँगी,
उसके संकल्पों में बाधक न बनूँगी
चाहे अपने उर पर पत्थर धर लूँगी।

इस लिये चलो माँ के मन को धीरज दे
अनुमति लेकर फिर भले चले आना तुम,
मेरा भी तो विश्वास तनिक कर देखो
फिर तुम्हें रुचे जो पथ, वह अपनाना तुम।

भगतसिंह— जयदेव ! मुझे विश्वास दिलाया तुमने
यदि तुम कहते हो, तो मैं चला चलूँगा,
पर एक बात है, अपने संकल्पों से
दुनिया टल जाये, पर मैं नहीं टलूँगा।

यदि मुझे मोह के फन्दे ने जकड़ा, तो
मैं सारे बन्धन तोड़ चला आऊँगा,
बन्धन में जकड़ी हुई बड़ी माँ अपनी
उसके हित माँ को छोड़ चला आऊँगा।

हाँ, यह तो मुझे बताओ, कैसे तुमने
इस सागर में से मुझको खोज निकाला,
वह जाल कौन-सा है, मुझको उलझाने
इतनी चतुराई से जो तुमने डाला ?

जयदेव— हो गया ज्ञात, तुम यहाँ कानपुर में हो
फिर बड़ी बात क्या थी तुमको पा जाना,
वाचनालयों, पुस्तकालयों का मैंने
इस महानगर में कोना-कोना छाना।

क्या नहीं ज्ञात हैं मुझे तुम्हारी रुचियाँ ?
है ज्ञात मुझे, तुम पढ़ने के व्यसनी हो,
पुस्तकों और अखबारों के तुम कीड़े
जो मन में धुन, तुम उसके बहुत धुनी हो।

वाचनालयों के पत्रक उलटे-पलटे
मिल गये मुझे 'बी० सिंह' तुम्हारे अक्षर,
फिर मुझसे छिपकर कैसे रह सकते थे ?
इस तरह जाल में उलझ गये तुम प्रियवर !

भगतसिंह— क्या कहने हैं इस सूझ-बूझ के भाई !
यह जासूसी भी मुझको याद रहेगी,
प्रस्तुत हूँ चलने साथ तुम्हारे, घर में
माँ कष्ट और मेरे कारण न सहेगी।

बब्बर-अकाली-दल का स्वागत

"मेरे बेटे ! मेरे बच्चे ! चन्दा रे !
तू कहाँ गया था मुझे छोड़ कर बतला,
ऐसा क्या तेरा मैंने कभी बिगाड़ा
जो तूने मुझसे लिया क्रूर यह बदला।

क्या दशा हो गई अरे ! देह की तेरी
तू पहले से रह नहीं गया है आधा,
किस अंध-खोह में आसन कठिन जमाकर
कोमल तन से तूने दारुण तप साधा ?"

"माँ ! देख अरे अब तो तेरे सम्मुख हूं
बीती बातों को अब फिर क्या दुहराना,
यदि सच-सच तुझसे बात कहूंगा, तो भी
समझेगी उसको केवल एक बहाना।

अच्छा तो हूँ, जैसा पहले था, अब हूँ
आधा क्या, कुछ भी तो न हुआ मैं कम हूँ।
मुझ में तुझको क्या कमी दिखाई देती ?
में जहाँ रहा, खुश रहा वहाँ हरदम हूँ।

तूने चाहा, सोने की जंजीरों के
बन्धन में बंधकर यहीं पड़ा रह जाऊँ,
मैंने सोचा, यह बन्धन ठीक नहीं है
जो माँ के बन्धन, क्यों न उन्हें तड़काऊँ।

इसलिए तनिक में चला गया था बाहर
बाहर क्या, सारा भारत अपना घर है,
मैं यहाँ रहा या वहाँ, भला क्या अन्तर ?
बस दृष्टिकोण का ही केवल अन्तर है।

तूने बुलवाया, प्रस्तुत हूँ मैं, पर माँ !
मेरे कामों में तू मत रोक लगाना,
ऐसे कामों में मुझको रुचि आती है
बन सके अगर तो मुझको काम बताना।"

"इसमें क्या है, मैं अभी बताये देती
चलना है तो हम अपने गाँव चलें, चल !
पहुँचेंगे जत्थे वहाँ अकाली दल के
पहुँचेंगे बब्बर शेर वहाँ दल के दल।

उनके स्वागत की पहल हमें करनी है
डर रहे गाँव वाले हैं इस शासन से,
इसलिए नहीं तैयार हो रहा कोई
करते हैं वे सब बात ऊपरी मन से।

चलना हम दोनों को, 'वे' जा न सकेंगे
कह दिया, "भगत ही यह सब कुछ कर लेगा,
स्वागत भी अच्छा शानदार ही होगा
यदि वहाँ गाँव में अपना भगत रहेगा।"

"माँ ! तूने सचमुच काम बताया मन का
हो बड़े जोर का स्वागत बब्बर दल का,
ऐसा स्वागत हो, यह शासन भी जाने
हो जोर-शोर का चारों ओर तहलका।"
• • •

माँ का सपूत, माँ को लेकर जा पहुँचा
जाकर उसने स्वागत की धूम मचा दी,
जो लोग हट रहे थे पीछे डर-डर कर
भावना प्रबल उन लोगों में सुलगा दी।

भावना जाग जाये लोगों के उर में
गिरि-शिखरों को भी लिये-लिये वे घूमें,
तल और अतल के सब रहस्य ले आयें
नभ में उड़ कर ग्रह-नक्षत्रों को चूमें।

यह भगतसिंह को काम चुटकियों का था
संकल्प-भावना लोगों में भर देना,
था हँसी-खेल ही यह उस जादूगर को
मर-मिटने, लोगों को उद्यत कर देना।

जितने विकल्प थे, वे संकल्प बने सब
उसने जादू की ऐसी छड़ी घुमाई,
जो शासन के डर से मुँह छिपा रहे थे
वे सिंह बने अब देते थे दिखलाई।

वह वीर अकाली बब्बर दल जब आया
क्या शान-बान से हुआ सभी का स्वागत,
उनके चरणों की रज मस्तक पर धर कर
सब लोग हुए उनके प्रति अति श्रद्धा नत।

पद-त्राणों की रज पल्लों में ले-लेकर
उसको माथे से मलती थी ललनाएँ,
इस गौरव से गर्वित होकर कहती थीं
जीवन में ऐसे बार-बार दिन आयें।

क्या-हार फूल से लादे गये सभी वे—
क्या समारोह का हुआ भव्य आयोजन,
क्या भारी थैली भेंट हुई उस दल को
कैसा अपूर्व था वह सम्मान-प्रदर्शन।

लोगों का निर्णय हुआ सर्व-सम्मति से—
स्वागत-भाषण हित भगतसिंह ही बोले,
आदेश मान्य था उसको यह जन-मत का
अब लगा उगलने वह भावों के शोले—

"इस ग्राम-धरा के अंचल में स्वागत है
इन वीर अकाली-बब्बर दल वालों का,
भारत-माता के भक्तों का स्वागत है
स्वागत उसके यश के इन रखवालों का।

इस वन-प्रदेश में स्वागत नर-सिंहों का
जिनकी दहाड़ से शत्रु-कलेजे हिलते,
स्वागत है इन वीरों का मर्दानों का
जिनके दर्शन पुण्यों के फल से मिलते।

यह ज्ञात सभी को है ये वीर लड़ाके
सब जूझ रहे हैं अँग्रेजी शासन से,
ये मुक्त चाहते करना भारत-माँ को
साम्राज्य-वाद के कसे हुए बन्धन से।

यह ज्ञात सभी को, कैसे ये मतवाले
बलिदान हो रहे भारत-माता के हित,
अर्जित करने ये मुक्ति धरा की अपनी
सर्वस्व कर रहे कैसे अपना अर्पित।

वह बोमेली का युद्ध याद आता, जब
भिड़ गये बड़ी सेना से चार लड़ाके,
चारों शहीद हो गये वहाँ लड़-लड़ कर
कर मार-काट, कर भीषण धूम-धड़ाके।

खलिहान शत्रु-दल की लाशों का कैसे
कर गये वीर-वर धन्नासिंह हमारे,
मुण्डेर-युद्ध में ज्वालासिंह[1] विकट भट
किस तरह केसरी बन्तासिंह सिधारे।

किस तरह वीर बर्यामसिंह जी धुग्गा
केवल कृपाण से लड़े शत्रु के दल से,
किस तरह पछाड़ा 'गेल' पुलिस अफसर को
वे कैसे मारे गये कपट से—छल से।

इन वीरों के बलिदान प्रेरणा देते
बलि-पंथी धारा को हम भी अपनायें,
जिस पावन धरती के हम सब बेटे हैं
उस धरती-माता की हम लाज बचायें।"

१. बब्बर अकाली ज्वालासिंह अपने साथी बन्तासिंह और बर्यामसिंह के साथ मुण्डेर स्थान के एक घर में घेर लिये गये। बड़ी वीरता से इन्होंने सैकड़ों पुलिस वालों का मुकाबला करके उनकी राइफलें और मशीनगनें तक बेकार कर दीं। अन्त में पुलिस ने पम्प से मिट्टी का तेल छिड़क कर घर में आग लगा दी। ज्वालासिंह और बन्तासिंह इसी युद्ध में गोली से मारे गये (१२ दिसम्बर १९२३ ई०)। बर्यामसिंह भी ८ जून १९२४ ई० को युद्ध में मारे गये।

गोपीमोहन साहा का आत्म-बलिदान

अपना शीष हथेली पर धर, जो आया हो क्रान्ति जगाने,
अपना कफन डाल कन्धे पर, जो आया हो आग लगाने—
वह कैसे चुप रहता सकता था डर कर अन्यायी शासन से ?
वह कैसे डरता हथ-कड़ियों और बेड़ियों की भन-भन से ?

नियमों ने दी उसे चुनौती, जेल-यातना ने धमकाया,
अब शासन के संगीनों की, होने लगी वीर पर छाया।
पर वह था, जो तुला हुआ था करने इन सब की अवहेला,
तुला हुआ था वीर, जगाने भारत में बलिदानी बेला।

लायलपुर की भरी सभा में गरज उठा वह सिंह हमारा,
अपनी छाती ठोक, खड़ा हो उसने शासन को ललकारा।
शासन के भेदिए लिख रहे थे भाषण के अक्षर-अक्षर,
गूंज रहे थे किन्तु सिंह के, सभा-भवन में ओजस्वी स्वर—

"प्रिय साथियो ! और श्रद्धेया बहनो ! परम-पूज्य माताओ !
भारत के उज्ज्वल भविष्य के गौरव-शाली निर्माताओ !
समय आ गया, मिल-जुल कर हम अन्यायों की जड़ें हिला दें,
उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम, इन्हें प्रेम से गले मिला दें।

सोते रहें न सिंह पुरुष अब, समय जगाता है वे जागें
अन्यायों-अत्याचारों पर विद्रोहों के गोले दागें।
मठ, मन्दिर, गिर्जाघर भड़कें, कड़क उठें मस्जिद गुरु-द्वारे,
लगें साथ 'अल्लाहो-अकबर', 'हर-हर महादेव' के नारे।

सब से बड़ा धर्म धरती का धरती सब धर्मों की भाषा,
संकट में माता अपने ही बेटों से करती है आशा।
माँ का संकट दूर करें हम, मिल कर कोटि-कोटि मतवाले
है धिक्कार हमें, यदि कोई अपना शुभ सम्मान उछाले।

देख रहे हम जन-मत को अधिकार-वाद देता है गाली,
इस नंगे साम्राज्य-वाद की प्रकट सभी करतूतें काली।
हम इन काले कानूनों का शासन को अच्छा उत्तर दें,
इस बारूदी न्याय-व्यवस्था पर हम सब चिनगारी धर दें।

आज नहीं माताएँ-बहनें जौहर की ज्वाला सुलगायें,
आज नहीं वे लपटें चूमें, जौहर करें नहीं, दिखलायें।
सिंह-पुरुष, राणा प्रताप को और शिवा को अब न पुकारें,
ताल ठोक अपने भुज-बल से अपने दुश्मन को ललकारें।

भारत के कोने-कोने से, भीषण-क्रान्ति उठे घर-घर से,
इन्कलाब के नारे फूटें, कण्ठ-कण्ठ जन-जन के स्वर से।
माँ का दूध हमारे शोणित की गति को तूफानी कर दे,
विकट गर्जना-घोष हमारा, अरि-शोणित को पानी कर दे।

आज देश को युवक चाहिए, हों जिनके अन्तर में शोले,
जो गोलों की वर्षा में भी चलें सगर्व वक्ष को खोले।
आज देश को युवक चाहिए जैसे गोपीमोहन साहा[1],
वंग-भूमि के जिस सपूत का आज देश ने भाग सराहा।

---

१. गोपीमोहन साहा—बंगाली नवयुवक जो क्रान्तिकारियों का दमन करने वाले अँग्रेज पुलिस अफसर सर चार्ल्स टेगार्ट को अपनी गोली का निशाना बनाने उसके बँगले पर जा पहुँचा और दनादन गोलियाँ दाग भी दीं पर धोखे से टेगार्ट के स्थान पर मि० डे का शिकार हो गया। फलस्वरूप गोपीमोहन को फाँसी का उपहार मिला।

बतला दूँ, कैसे विद्रोही बन बैठा वह बालक मोहन,
सुनता था, कर रहे विदेशी भारत के शोणित का दोहन।
सुनता था टेगार्ट क्रूर है, दमन-चक्र है उसको प्यारा,
कई देश-भक्तों का है वह बना हुआ निर्मम हत्यारा।

उस अत्याचारी के प्रति थी घृणा जगी मोहन के मन में,
इसे मार बदला लेना है वह लग गया इसी चिन्तन में।
कभी-कभी सोते-सोते भी वह बड़-बड़ा उठा करता था,
'यह मारा ! वह मारा' कहता; जाने कहाँ कौन मरता था।

जब असह्य हो गया वीर को अपने भावों का उद्वेलन,
पहुँच गया पिस्तौल एक ले, लेने हत्यारे का जीवन।
बँगले के बाहर जब आता दिया दिखाई गोरा अफसर,
क्रुध वीर ने खाली करदी वह पिस्तौल दना-दन-दन कर।

पर वह तो टैगार्ट नहीं था, मिस्टर डे का खून हो गया,
देश-भक्त अभियुक्त बना, उस पर हावी कानून हो गया।
भारी दुख था उसे भूल का जो आरोप लगा स्वीकारा,
हँस कर वह फाँसी पर झूला, अस्त हो गया उज्ज्वल तारा।

यह है उस कोमल-किशोर की प्रखर आत्म-बलिदान कहानी,
भारत माता के बेटे की, यह है उसके हित कुर्बानी।
आज देश के युवक बनें सब, गोपीमोहन से दीवाने,
जीवन का उत्सर्ग कर सकें जो जग से अन्याय मिटाने।"

सिंह-गर्जना भगतसिंह की सुन-सुन कर शासन भन्नाया,
किन्तु परिस्थिति सोच-समझ कर, नहीं वीर पर हाथ बढ़ाया।
भड़क उठे जनता, शासन तब बात दमन की नहीं सोचता,
तनिक शिथिलता आने पर, वह सिंहों को भी धर दबोचता।

किन्तु वीर पर चुपके-चुपके उसने अपना जाल बिछाया,
शान्ति-भंग करने का उस पर वैधानिक आरोप लगाया।
किन्तु जाल विच्छिन्न हो गया, शासन की न एक चल पाई,
मुक्त हुआ सब आरोपों से, आरोपी ने मुँह की खाई।

कृष्ण की गीता
और
भगतसिंह का काम

एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम,
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।

गीता बोली, "युद्ध धर्म है मानव-जीवन का,
अन्यायों का दमन उचित है, अन्त कुशासन का।
जो जूझे संग्राम-भूमि में विजय-वरण करता,
अगर वीर-गति मिले, स्वर्ग का अलंकरण करता।
युद्ध-विमुख होने का मतलब धर्म-विमुख होना,
धर्म-विमुख होने का मतलब है सब कुछ खोना।
धर्म और धन-धरती की रक्षा को युद्ध करो,
मृत्यु द्वार है नव-जीवन का, इससे नहीं डरो।"

यह उपदेश सुना हमने, तो दूर हो गया भ्रम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

बम-गोले ने कहा—"शत्रु से भीख नहीं माँगो,
जैसा दाव लगे, मारो, काटो, उल्टा टाँगो।
धूम-धड़ाका करो विकट, अरि के मस्तक फोड़ो,
जैसे बने गुलामी की जंजीरों को तोड़ो।"
यह शिक्षा सुन आजादी के शोले भड़क उठे,
प्रलय-वीर सत्तावन में विद्युत से कड़क उठे।
लाल-कमल रोटी[1] ने विप्लव का संगठन किया
देश-भक्ति का जाम, सभी ने मिल कर खूब पिया।
गीता और कुरान बन गये सबके लिये कसम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

---

१. **लाल कमल** :—शौर्य, संगठन तथा विकास के प्रतीक के रूप में सन् १८५७ ई० के स्वातंत्र्य सैनिकों ने लाल कमल को क्रान्ति-प्रचार का साधन बनाया था। क्रान्ति का संदेश-वाहक रक्त-कमल लेकर किसी छावनी में पहुँचता था। उस छावनी का भारतीय अधिकारी श्रद्धा-पूर्वक उस कमल को अपने हाथ में लेता और फिर एक-एक करके वह सभी सैनिकों के हाथों में पहुँचता। लाल कमल हाथ में लेने का अर्थ था—भावी क्रान्ति का संकल्प करना। इस प्रकार देश की प्रत्येक छावनी में लाल-कमल ने क्रान्ति का सन्देश देकर स्वातंत्र्य-सेना का संगठन किया।

रोटी :—सेना में संगठन का साधन लाल-कमल था पर साधारण जनता में रोटी के द्वारा यह कार्य हुआ। गाँव का चौकीदार एक चपाती पास के गाँव में ले जाता और वहाँ के सभी निवासी उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके प्रसाद के रूप में ग्रहण करते। उस गाँव का चौकीदार फिर एक नई चपाती बना कर आगे के निकटवर्ती गाँव में ले जाता और प्रसाद पाने का वही क्रम दोहराया जाता। चपाती खाने का अर्थ था कि हम बिना भेद-भाव तथा जाति-पाँति के बन्धन के स्वातंत्र्य-संग्राम में कंधे से कंधा मिला कर विदेशी सत्ता के विरुद्ध लड़ेंगे। इस प्रकार रोटी ने भी संगठन तथा भावात्मक एकता की दशा में बड़ा काम किया।

साधू-सन्त-फकीर क्रान्ति-सन्देश लिये घूमे,
सुन कर शुभ-सन्देश, देश के दीवाने झूमे।
तीर्थ-यात्रा के मिस नाना साहब जा निकले,
भारत-भ्रमरण किया, जाकर लोगों के दिल बदले।
अहमदशाह मौलवी ने लोगों को भड़काया,
वीर जकीखाँ ने विप्लव हर दिल में सुलगाया।
पहुँच विदेशों में रंगोजी और अजीमुल्ला,
करने लगे प्रचार क्रान्ति का वे खुल्लम-खुल्ला।
तलवारों के यश को लिखने बैठी तेज कलम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

पहली गोली मंगल पाँडे ने अपनी दागी,
भड़क उठी हिंसा, लपटों की प्रबल भूख जागी।
सभी जगह फौजों में फैली विप्लव की ज्वाला,
हर सैनिक हो उठा क्रोध से पागल मतवाला।
राजाओं की सेनाएँ भी आ-आकर धमकीं,
बन्दूकें उन्मुक्त हो गईं, तलवारें चमकीं।
गूंजे 'हर-हर महादेव' के 'दीन-दीन'[१] के स्वर,
गूँज उठी तुरही, रण-भेरी रण में घहर-घहर।
बजे नगाड़े कड़कम-कड़कम, ढोल ढमाढम-ढम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

---

१. दीन-दीन—सन् १७५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में जूझने वाले मुसलमान सैनिक 'दीन-दीन' तथा 'मजहब पर कुर्बान हो' आदि नारे लगाते थे। मादरे-वतन (मातृ-भूमि) को फिरंगियों से आजाद करने को वे अपना मजहब समझते थे।

मेरठ और बिठूर, कानपुर, ये सब भड़क उठे,
अँग्रेजी सेनाओं के दिल धड़-धड़ धड़क उठे।
लखनऊ था क्रोधांध, कालपी-झाँसी कापाली,
फन फुफकार उठी नागिन-सी दिल्ली मतवाली।
शाह जफर का शासन दिल्ली में आबाद किया,
और कानपुर नाना साहब ने आजाद किया।
रण-चण्डी बन गई शत्रु को झाँसी की रानी,
टूट-टूट कर गिरी गाज-सी लक्ष्मी मर्दानी।
भूल गये हौसले फिरंगी, भूल गये तिकड़म।
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

भड़क उठे चन्देल, और थे भड़के बुन्देले,
तलवारों पर वीर रुहेले थे खुलकर खेले।
जूझा अवध, नवाब तोप की भाषा बोल उठे,
नयन तीसरा दक्षिण के मरहट्टे खोल उठे।
बुड्ढे कुँअरसिंह की नस-नस में बिजली दौड़ी,
अँग्रेजों की नाकों में डाली उसने कौड़ी।
वीर तांत्या-टोपे ने भीषण छापे मारे,
सुनकर उसका नाम चौंकते खूनी हत्यारे।
लील-लील गोरों को, लपटें करती गईं हजम।
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

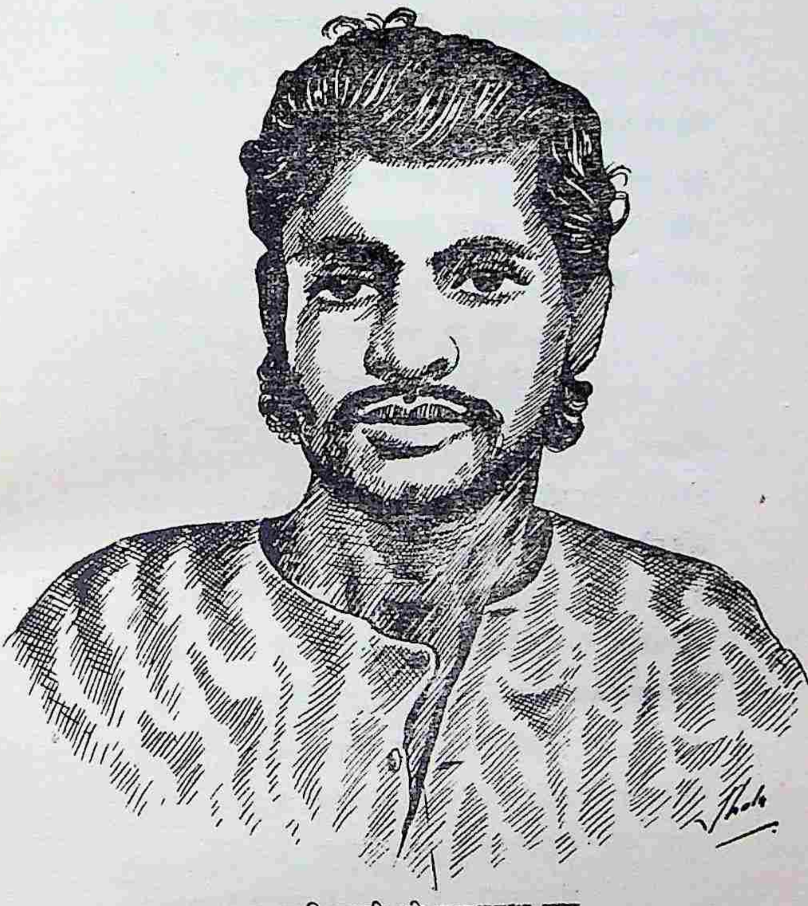
लगा कि जैसे शाप दासता का अब बिखर चला,
आजादी का रंग लहू में अपने, निखर चला।
पर दुर्भाग्य ! देश-द्रोही कुछ नैया ले डूबे,
चकनाचूर हुए सब आजादी के मंसूबे।

मुक्त सिंह फिर पिंजड़े में थे, पड़े विकट ताले,
हत्यारों के लगे चमकने फिर बर्छी-भाले।
आजादी का स्वप्न टूट कर बिखर गया क्षण में,
एक लाख से अधिक काम आये थे इस रण में।
भारत-माता की आँखें इस दुख से थीं पुरनम।
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

किन्तु खून का ज्वार हमारा ठण्डा नहीं हुआ,
राख जम गई पर अंगारा ठण्डा नहीं हुआ।
जब भी अवसर मिला, हमारे शोले दहक उठे,
आजादी के यत्न खून से अपने महक उठे।
गदर पार्टी[1] बनी, क्रान्ति की भड़की चिनगारी,
विप्लव की संगठित लगी फिर होने तैयारी।
कैनेडा से, अमरीका से वीर सिक्ख आये,
वंग भूमि के बेटों ने, बम-गोले अर्राये।
लाल-लाल लपटों के फिर से लहराए परचम।
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

---

१. **गदर पार्टी** :—प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल के प्रयत्न से १० मई सन् १८६३ ई० को कैलीफोर्निया के यूलो नगर में प्रवासी भारतीयों की एक सभा हुई और अँग्रेजी शासन के विरुद्ध भारत में गदर कराने के उद्देश्य से एक गदर पार्टी की स्थापना की गई। 'गदर' नाम का एक समाचार-पत्र भी निकाला जाने लगा जो कई भाषाओं में छपता था और कई देशों में इसकी प्रतियाँ भारतीयों के लिए निःशुल्क वितरित की जाती थीं। 'गदर' पत्र के कार्यालय का नाम युगान्तर-आश्रम रखा गया। पत्र का प्रधान कार्यालय सानफ्रांसिस्को में था।



महान् क्रान्तिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्त

श्री मन्मथनाथ गुप्त काकोरी षडयंत्र के नायकों में से हैं। इसीके फल-स्वरूप आपको चौदह वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया।

श्री मन्मथनाथ गुप्त को अनशन-विशेषज्ञ कहा जाता है। प्रस्तुत चित्र काकोरी षडयंत्र के समय का है।

युक्त-प्रान्त में क्रान्ति-संगठन हुआ बड़ा भारी,
शासन का तख्ता पलटें, बोले विप्लवकारी।
हिन्दुस्तानी-प्रजा-तंत्र-सेना थी अब तत्पर,
किन्तु समस्या अब शस्त्रों की आई बड़ी प्रखर।
निश्चय हुआ—खजाने हम सब लूटे सरकारी,
लूट रहा भारत को जो शासन अत्याचारी।
बनी योजना बड़ी, और तैयारी बड़ी हुई,
निश्चित हुआ विधान 'कार्य' की निश्चित घड़ी हुई।

कोष रेल का चले लूटने, देखो तो दम-खम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

टोली के नेता श्री बिस्मिल रामप्रसाद बने,
ऊँचे-पूरे अशफाकुल्ला दिखते तने-तने।
मँजे हुए थे श्री शचीन्द्र बख्शी भी इस फन में,
रोशनसिंह, सिंह जैसे थे भाव लिये मन में।
मन्मथनाथ गुप्त के दिल में बड़े हौसले थे,
बनवारी भी उनके पीछे-पीछे निकले थे।
श्री राजेन्द्र लाहिड़ी भी जलते अंगारे थे,
केशव और मुकन्दी भाई तेज दुधारे थे।

श्री आजाद चन्द्रशेखर में साहस था अनुपम।
आजादी के लिए लाड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

फक्-फक्-फक् चल पड़ी ट्रेन अब शाहजहाँपुर से,
बैठ गये सब क्रान्ति-वीर उसमें हर्षित उर से।
जुटा लिये उपकरण—शस्त्र, छैनियाँ, हथौड़े, घन,
गाड़ी में जा बैठे, सर पर बाँधे हुए कफन।

शोर मचाती चली रेल-गाड़ी फक्-फक् करती,
मस्ती, नव-उमंग मतवालों के मन में भरती।
गाड़ी में कुछ पल्टनिया गोरे भी बैठे थे,
उनके मेजर साहब दिखते ऐंठे-ऐंठे थे।
इस संकट के आगे इनका साहस था क्या कम?
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

काकोरी के निकट रेलगाड़ी को जा रोका,
सभी यात्रियों को इनने था समझाकर टोका।
नहीं किसी के जान-माल को हम किंचित लेंगे,
किन्तु बढ़ा कोई आगे तो उसे भून देंगे।
गार्ड और चालक औंधे जा लेटे धरती पर,
क्रान्ति-वीर थे छोड़ रहे गोलियाँ दना-दन कर।
सब खिड़कियाँ बन्द कर मेजर साहब दुबक गये,
संडासों में पलटनिया गोरे भी खिसक गये।
लिये खजाना कूद पड़े अब वीर धमाधम-धम।
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

हिम्मत टूटी, किन्तु तिजोरी टूट नहीं पाई,
थैले कैसे बाहर आयें, थी यह कठिनाई।
मौजर मन्मथ जी को देकर श्री अशफाक बढ़े,
लेकर घन पिल पड़े, तिजोरी पर वे टूट पड़े।
इधर दना-दन बन्दूकों की उधर दना-दन घन,
बिखरे नोट और रुपयों की हुई खनन्-खन्-खन्।
बाँध सभी संपत्ति चल दिये, वे साहसी निडर,
कुछ दिन लखनऊ रहे और फिर अपने-अपने घर।

लुटी-पिटी गाड़ी लख शासन में छाया मातम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

रही पुलिस भन्नाती, कोई हाथ नहीं आया,
दबा सके वे क्रान्ति-कारियों की न तनिक छाया।
शस्त्र खरीदे गये, काम जोरों का चल निकला,
बनी योजना, शासन से अब लेना है बदला।
इन्हें बतादें, हम लोगों का ठण्डा खून नहीं,
इन्हें बतादें, मान्य हमें काला कानून नहीं।
इन्हें बतादें, भारत के नर-नाहर जाग रहे,
इन्हें बतादें, भारत के अब दुर्दिन भाग रहे।
इन्हें बतादें, दृढ़ हम सब के मिल कर आज कदम।
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

जब मन के संकल्पों के यौवन के दिन आये,
तभी घुमड़ कर घिर-घिर कर दुर्दिन के घन छाये।
किसी विभीषण ने शासन को घर का भेद दिया,
अपने वीर भाइयों से ही उसने दगा किया।
होने लगी बड़े जोरों की अब पकड़ा-धकड़ी,
कोना-कोना छाना, सब की खोज हुई तगड़ी।
वे दस थे, पर पकड़ इन्होंने अब चालीस लिये,
क्या वीरता दिखाई अपनी, क्या गुण-गान किये।
मुक्ति-रश्मियों को अत्र फिर से निगल रहा था तम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

जो धर लिये गये, उनमें थे श्री गोविन्दचरण,
दादा श्री योगेश चटर्जी, दुबलिस विष्णुशरण।
श्री शचीन्द्र सान्याल और भूपेन्द्रनाथ आये,
कृष्ण-भवन में रामकृष्ण खत्री को भी लाए।
श्री रवीन्द्रमोहन कर, भट्टाचार्य सुरेश चले,
दामोदरस्वरूप भी शासन द्वारा गए छले।
कारागृह में बन्द त्रिवेदी रामदुलारे थे,
रामनाथ पांडे जैसे श्वसुराल पधारे थे।
नहीं जेल का, प्रेमकृष्ण खन्ना को था कुछ गम।
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

राजकुमारसिंह भी अपना सीना तान चले,
श्री प्रणवेश चटर्जी भी बन कर मेहमान चले।
चले इन्दुभूषण, बनारसीदास गये पकड़े।
और तिवारी वीरभद्र भी आये धर जकड़े।
धीरे-धीरे कृष्ण-भवन को सभी समर्पित थे,
इन लोगों पर दमन-चक्र भी हुए प्रवर्तित थे।
किन्तु अन्त तक वीर चन्द्रशेखर न हाथ आये,
बन कर जिन्दा भूत, रहे वे शासन पर छाए।
दादाओं के दादा[1] वे बन गये वीर सक्षम।
आजादी के लिए लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

---

१. यहाँ 'दादा' शब्द से बम्बई का दादा या दिल्ली का दादा का अर्थ ग्रहण न किया जाय। बंगाल में क्रान्तिकारियों को दादा कहा जाता है। चन्द्रशेखर आजाद जैसे विकट क्रान्तिकारी को फिर दादाओं का दादा कहना अनुचित नहीं है।

जो जा पहुँचे जेल, न भूले वे अपनी मस्ती,
जेल बन गई दीवानों की एक नई बस्ती।
हू-हक होता और तरन्नुम गजलों के छिड़ते,
खुदे अखाड़े और मल्ल सब आपस में भिड़ते।
पढ़ते थे कुरान, होता था पूजा-पाठ हवन,
कृष्ण-भवन बन गया सभी को था आमोद-भवन।
पढ़ते थे पुस्तकें, खुशी वे सभी मनाते थे,
हरमोनियम बजता, मिल-जुल कर सब गाते थे।
लगे गूँजने जेलों में दीवानों के सरगम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

अब लखनऊ में न्याय नाट्य का बड़ा प्रदर्शन था,
इन वीरों के लिए निछावर लखनऊ का मन था।
वह लखनऊ मशहूर रही जो नाज-नजाकत को,
इन्हें बचाने, वह लखनऊ तुल गई बगावत को।
सोना-चाँदी ले-लेकर थे सब आगे आए,
लोगों ने इन लोगों पर अपने दिल बरसाए।
इन्हें बचाने सभा-समितियाँ लोग बनाते थे,
इन्हें बचाने सभी लोग यह दुआ मनाते थे—
"खुदाबन्द ! अपने बच्चों को कर तू अता करम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर एक हाथ में बम।

नर-नाहर आजाद, उधर बैठे न कभी खाली,
नए क्रान्ति-दल की अब उनने, नई नींव डाली।
भगतसिंह—पंजाब-केसरी थे इनके दल में,
नहीं किसी से कम वे किंचित बुद्धि और बल में।

खूब मिली यह भीम और अर्जुन की थी जोड़ी,
साहस के कामों में नित होती होड़ा-होड़ी।
मौन सिपाही वीर राजगुरु, इनके संगी थे,
परेशानी इन लोगों से अब सभी फिरंगी थे।
क्रान्ति-क्षेत्र में हुआ नये युग का अब शुभ आगम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

भगतसिंह ने नये जोश का अब संचार किया,
उसने सब को, सबने उसको, दिल से प्यार किया।
क्रान्ति-अमर हो ! क्रान्ति अमर हो ! नारे लगा-लगा,
राख फूंक, अंगारों में चेतनता जगा-जगा—
बनने लगा सभी की आँखों का वह तारा था,
इन्कलाब हो अमर, यही अब इनका नारा था।
नया क्रान्ति-कारी दल इनका अब यह सक्रिय था,
प्राणों से भी कहीं अधिक यह देश उन्हें प्रिय था।
नया खून जो मिला, क्रान्ति का बदल गया आलम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

कर्तव्यों का पंथ सिंह वह पहचाना करता,
गाँव-गाँव वह गली-गली, घर-घर छाना करता।
असफलता के लिये चुनौती बन कर चलता था,
आजादी का प्रण जिह्वा पर रहता जलता था।
पहुँच जाय जिस ओर, उधर उसका अपना घर था,
लोगों को अपना लेने का उसे मिला वर था।
उसके स्वर पारस-मणि से भी अधिक प्रभावी थे,
नई चेतना दे, जन-मन पर होते हावी थे।

इन्कलाब धधकाना, उसका था यह नित्य-नियम।
आजादी के लिये लड़ाई लड़ने निकले हम।
एक हाथ में गीता लेकर, एक हाथ में बम।

सर्ग उन्नीस

लाहौर में रामलीला

क्या ही विशाल यह जन समूह एकत्रित
लगता, सारा लाहौर उमड़ आया है,
क्यों लोगों में उत्साह तरंगित इतना ?
क्या आकर्षण जो इन्हें खींच लाया है ?

आबाल-वृद्ध नारी-नर यहाँ उपस्थित
क्या देख रहे ये बैठे तन्मय होकर ?
आनन्द ले रहे ये किसके दर्शन का ?
भावों में उर की श्रद्धा सभी सँजो कर।



श्री धन्वन्तरी कालापनी की सजा के बाद

श्री धनवन्तरी भगतसिंह के निकट के साथी रहे हैं। पंजाब के युवकों में इनकी वाणी ने क्रान्ति का जादू फूँका है।

यह भी क्या कोई बात पूछने की है ?
ये मना रहे सब लोग दशहरा-उत्सव,
अभिनीत हो रही यहाँ राम की लीला
एकत्रित है यह दर्शनार्थ जन-अर्णव।

दिख रहे व्यवस्था करते हुए युवक जो
कर्तव्य-लीन जो दिखता सेवा-दल है,
ऐसे कामों में जो सदैव तत्पर है
यह भगतसिंह का व्रती मित्र-मण्डल है।

सुखदेव और जसवन्तसिंह जी दिखते
वे बैठक का कर रहे व्यवस्थापन हैं,
श्री देशराज महिलाओं की सुविधा को
पुरुषों से हट कर बिछा रहे आसन हैं।

धनवन्तरि, बाली, रामचन्द्र, सब के सब
आने वालों को दिशा-दान करते हैं,
ध्वनि-विस्तारक जो यंत्र, खड़े हो सम्मुख
यशपाल सूचनायें बखान करते हैं।

भूले-भटके बच्चों को माताओं से
भगवतीचरण जी लाकर मिला रहे हैं,
ये भगतसिंह बन बैठे पानी-पांडे
प्यासों को ठण्डा पानी पिला रहे हैं।

खुलने को ही दिख रही यवनिका बस अब
फिर भी अधीर हो रहे सभी के मन हैं,
चरितामृत का आस्वाद अभीप्सित सब को
अभिलषित राम के सब को शुभ दर्शन हैं।

वे राम जिन्होंने धर्म-संस्थापन हित
प्रगटित हो, दुष्टों का संहार किया था,
संतप्त साधु-जन का रक्षण कर जिनने
मर्यादाओं का पुण्य-प्रसार किया था।

जो शक्ति-शील-सौन्दर्य-रूप आधारित
वे राम—राज्य जिनका आदर्श सभी को,
यह 'राम' शब्द जिह्वा पर आ जाते ही
होता अंतर में सच्चा हर्ष सभी को।

यह उन्हीं राम की लीला यहाँ प्रदर्शित
तन्मय-श्रद्धा से देख रहे नारी-नर,
हैं नेत्र मंच की ओर सभी के उन्मुख
दिखलाई देते हैं उत्फुल्लित अंतर।

क्या सुन्दर सज्जित मंच सुशोभित है यह
क्या वातावरण यहाँ का पावन लगता,
आसक्ति नहीं है भक्ति-भाव में जिसकी
यह दृश्य देख कर उसका भी मन ठगता।

यह राज्य-सभा दर्शित नरेन्द्र दशरथ की
वे हैं शोभित कर रहे राज्य-सिंहासन,
आसीन सभासद भी निज मर्यादा से
भावना सभी की पावन और सुहावन।

हम देखें, लो यह दौवारिक आता है
करता नरेन्द्र है को प्रणाम झुक-झुक कर,
है दृष्टि नमित, कर-बद्ध, भाव यह अपना
कर रहा प्रकट धीरे-धीरे रुक-रुक कर।

दीवारिक— राजाधिराज ! सेवक कर रहा निवेदन
राजर्षि एक मिलनातुर हुए उपस्थित,
है नाम स्वयं ही विश्वामित्र बताया
मिलनाभिलाष लक्षित है अति उत्कण्ठित।

दशरथ— क्या कहा ? हुए ऋषि विश्वामित्र उपस्थित ?
जाओ ! हम भी अगवानी हित आते हैं,
शुभ चरण साधु-सन्तों के यदि पड़ जायें
तो भाग्य गृहस्थों के बस खुल जाते हैं।

[गुरु वशिष्ठ को साथ लिये विश्वामित्र जी के स्वागतार्थ राजा दशरथ का प्रस्थान। दोनों ओर के उचित अभिवादन के पश्चात् राजा, विश्वामित्र जी को सभा-भवन में ले आते हैं। सभी सभासद सम्मान प्रकट करते हैं। अतिथि ऋषि को एक सुन्दर आसन पर बिठाया जाता है।]

दशरथ— आमात्य वर्ग ! कितने प्रसन्न हम सब हैं
जो आज सदन में हैं ऋषि-राज पधारे,
यह जन्म-जन्म के पुण्यों का शुभ फल है
गृह आये हैं अगणित सौभाग्य हमारे।

भगवन् ! सेवक उपकृत है अनुकंपा से
वह कृपा-दृष्टि का है सदैव प्रत्याशी,
वह प्रस्तुत है चरणों में सेवा के हित
वह प्रभु के शुभ निर्देशन का है अभिलाषी।

विश्वामित्र— राजन् ! निश्चय ही यह तो शील तुम्हारा
जो विनत भाव से अर्पित हमें समादर,
वैसे हम तो याचक बन कर आये हैं
नर-पति के घर, अपनी झोली फैलाकर।

दशरथ— आदेश मिले सेवा का, मैं प्रस्तुत हूँ
आवश्यक हो धन-धान्य उपस्थित कर दूँ,
जो वस्तु अपेक्षित हो, मुनिवर आज्ञा दें
वह वस्तु आपके इन चरणों पर धर दूँ।

विश्वामित्र— है दान-शीलता विदित नरेश तुम्हारी
विश्वास यही तो मुझको ले आया है,
है विदित सभी को, रघुकुल के भुज-बल की
ऋषियों-मुनियों पर रही सदा छाया है।

करते हम हैं शुभ यज्ञ तपोवन में जब
विध्वंस किया करते दानव-दल आकर,
कर देते हैं वे अशुचि तपोवन सारा
हड्डियाँ, माँस शोणित बरसा-बरसा कर।

इसलिए आज याचित हैं राजकुँअर द्वय
हम माँग रहे हैं राम और लक्ष्मण को,
हम मांग रहे हैं उन्हें संत-सेवा हित
हम माँग रहे उन्हें धर्म-रक्षण को।

दशरथ— क्या कहा? राम-लक्ष्मण याचित हैं मेरे
मुनि माँग रहे मेरी आँखों के तारे,
मेरे जीवन की ज्योति माँग ली प्रभु ने
जीवन-सरिता के माँगे उभय किनारे।

क्या ज्ञात नहीं है, अपने चौथेपन में
ये पुत्र-रत्न इस सेवक ने पाये हैं,
प्रभु जैसे ऋषि-मुनियों की अनुकंपा से
वरदान रूप ये इस घर में आये हैं।

जीवन के चारों फल जैसे चारों सुत
मेरे जीवन में जीवन बन कर आये,
अभिलाषाओं की तृषित सीपियों के हित
ये स्वांती के सुन्दर घन बन कर आये।

प्रभु माँग रहे उनमें से दो बालक हैं
मैं उन्हें विदा कर कैसे जी पाऊँगा ?
पड़ गई बान, उसके वचनामृत की है
उनके वियोग का गरल न पी पाऊँगा।

विश्वामित्र— राजन् जैसे पहुँचे मानव-तपसी को
यह मोह-जाल है किंचित नहीं सुहाता,
चौथेपन में तो दान-धर्म के प्रति है
सब लोगों का मन और अधिक बढ़ जाता।

फिर हमने तो माँगे केवल दो बालक
दो पुत्र-रत्न राजन के पास रहेंगे,
हैं भरत और शत्रुघ्न, राम-लक्ष्मण से
राजन् वियोग का कष्ट न तनिक सहेंगे।

यह भी तो सोचें याचित राज-कुअर क्यों
आक्रान्त तपोवन पावन, दानव-दल से,
वे परंपरागत ऋषि-कुल विध्वंसक हैं
पीड़ित करते वे हम को बल से छल से।

दशरथ— पर मुनिवर ये कोमल किशोर द्वय मेरे
दानव-दल से क्या समता कर पायेंगे ?
गरजेंगे वे जब अट्टहास कर-कर के
ये बाल-हंस क्या देख न डर जायेंगे ?

हम देख रहे हैं, रघुकुल के राजा को
है ! घेर रही अपने पुत्रों की ममता,
कर रहा मोह है दिव्य-दृष्टि को धुंधला
इसलिये न मूल्यांकित पुत्रों की क्षमता।

बतलायें राजन् ! क्या सिंहों के बच्चे
गजराज पर्वताकार देख डर जाते ?
क्या चन्द्र-सूर्य जग-व्यापक तम के डर से
छिप किसी कन्दरा में हैं आयु बिताते ?

पहुँचेंगे जब ये राज-कुँअर रण-रंगी
दानव-समूह-घन क्षण में फट जायेंगे,
आश्वस्त तपोवन होगा इनके बल से
दुर्दिन ऋषि-कुल के पथ से हट जायेंगे।

दशरथ— ऋषिराज ! किन्तु यह नम्र निवेदन मेरा
ये तो इनके विद्याभ्याम के दिन हैं,
जो धर्म-कर्म श्रुति-सम्मत ज्ञान अपेक्षित
उसके ही हित इनके प्रयास के दिन हैं।

विश्वामित्र— यदि ज्ञान अपेक्षित है श्रुति-सम्मत राजन् !
आवश्यक है शस्त्रों का संचालन भी,
है छात्र-वर्ग को क्षात्र-धर्म आवश्यक
अति आवश्यक है सैन्य-धर्म पालन भी।

जो दिन होते विद्याभ्यास के हित हैं
युद्धाभ्यास का भी तो वही समय है,
यदि सैन्य-प्रशिक्षण छात्र प्राप्त कर लें तो
उस महादेश की समझो सदा विजय है।

दशरथ— यदि मुनिवर आज्ञा दें, मैं कोष लुटा दूं
अर्पित कर दूँ मैं राज-पाट ही सारा,
आँखों के तारे किन्तु न माँगें मुझसे
छा जायेगा इस जीवन में अँधियारा।

यदि माँगें, अपने प्राण सहज ही दे दूं
पर बहुत कठिन है निज पुत्रों का देना,
पतवार समर्पित कर दूँगा तो कैसे
संभव होगा जीवन-तरणी का खेना ?

विश्वामित्र— क्यों भूल रहे हैं राजन् ! बात बड़ी यह
है राज्य और यह कोश, प्रजा की थाती,
फिर आप कौन होते हैं देने वाले
जो वस्तु धरोहर, वह संरक्षण पाती।

धन-धान्य स्वर्ण की माँग करेंगे जब हम
जनता सब कुछ वह न्यौछावर कर देगी,
वह धर्म और धरती की रक्षा के हित
धन तो क्या, प्राणों को आगे धर देगी।

पर जहाँ लौह-संकल्प अपेक्षित होते
सोने-चन्दी की वहाँ न आवश्यकता,
संकट में है जो वस्तु बहुत आवश्यक
वह है केवल अपने ही मन की दृढ़ता।

इसलिये करो अपने मन को दृढ़ राजन्।
जो अति अलभ्य, वह पावन कीर्ति कमा लो,
वह दिव्य-तपोवन बेटे माँग रहा है
धरती की रक्षा को बेटे दे डालो।

हाँ, महाभाग ने कहा, प्राण दे सकते
उपयोग करेंगे क्या हम इन प्राणों का ?
ये प्राण रखें जनता के लिये धरोहर
मानव तन है साधन जन-कल्याणों का।

कर रहे उपद्रव उधर आततायी जब
तो वहाँ अपेक्षित तरुणाई—यौवन है,
है राज्य-व्यवस्था को आवश्यक अनुभव
इस लिये यहाँ उपयोगी चौथापन है।

आक्रान्त कर रहे दानव-दल यज्ञस्थल
क्या होगा यदि वे आगे बढ़ आयेंगे ?
अवरोध नहीं यदि किया वहीं पर उनका
तो वे समस्त यह राष्ट्र निगल जायेंगे।

इस लिये धर्म की—धरती की रक्षा को
अपने बेटों का दान हर्ष से कर दो,
देखो तो तुम क्षमता अपने पुत्रों की
उसको कुछ कर दिखलाने का अवसर दो,

दशरथ— भगवन् मैं तो उर पर पत्थर धर भी लूँ
पर क्या बीतेगी इनकी माताओं पर ?
होगा वियोग यह किंचित सह्य न उनको
घर भर देंगी अपना वे नित रो-रो कर।

विश्वामित्र— आश्चर्य भावनाएँ निज ज्ञापित करने
राजन् लेते माताओं का आलम्बन,
क्या माताओं की क्षमता ज्ञात नहीं है ?
क्या नहीं शक्ति से परिचित कुछ भी श्रीमन् ?

ये भारत की ही माताएँ होती हैं
जो धरती पर निज लाल लुटा देती हैं,
लज्जा से अपना भाल न झुकने देतीं
हँस कर पुत्रों के भाल लुटा देती हैं।

देवियाँ हमारी रण-चण्डी बन जातीं
अरि के वक्षों में खड्ग भोंक देती हैं,
हर्षित हो, भाई, पुत्र और पति को भी
वे समर-यज्ञ में स्वयं झोंक देती हैं।

फिर राज कुमारों की मातायें कैसे
धरती के हित पुत्रों का दान न देंगीं ?
क्या रघुकुल की रानियाँ अस्वीकृति देकर
कर्तव्य-विमुख होने का अपयश लेंगी ?

दशरथ— मुनिवर ! मेरी तो बुद्धि हो गई कुण्ठित
क्या करूँ, तनिक भी समझ नहीं मैं पाता,
मुनिवर वशिष्ठ से परामर्श याचित है
वे कुल-गुरु हैं, सब वेद-शास्त्र के ज्ञाता।

[गुरु वशिष्ठ की ओर देखकर]

गुरुवर ! मेरी गति साँप-छछूँदर जैसी
इस समय आप ही दें मुझको निर्देशन,
क्या अपने प्राणाधार पुत्र-द्वय देकर
है उचित मुझे ऋषि की आज्ञा का पालन ?

वशिष्ठ— राजर्षि सर्वथा उचित कह रहे राजन् !
सर्वदा उचित ऋषि-आज्ञाओं का पालन,
होते हैं द्रष्टा युगों-युगों के तपसी
वे नीति-धर्म का करते हैं संचालन।

राजर्षि शस्त्र-विद्या जिसको सिखलायें
वह शिष्य न हो क्यों जग में परम यशस्वी ?
अपने जीवन की परम-साधना अर्पित
करते अपने शिष्यों का सदा तपस्वी।

इसलिए छोड़कर ममता-मोह, तनय निज
कर दें सहर्ष ऋषि की सेवा में प्रस्तुत,
इनके प्रसाद से कुशल धनुर्धर बनकर
वे लोक-धर्म-रक्षक होंगे चिर-विश्रुत।

दशरथ— सत्परामर्श के हित उपकृत है सेवक
पर सम्मति भी आवश्यक राम-लखन की,
ज्ञातव्य हमें उनकी विचार-धारा भी
ज्ञातव्य हमें गति है उनके भी मन की।

[इसी समय राम और लक्ष्मण का प्रवेश]

राम और लक्ष्मण—श्री पितृ-देव ! स्वयंमेव उपस्थित हैं हम
सुन समाचार मुनिवर के शुभागमन का,
सोचा, चल कर दर्शन का लाभ कमायें
सौभाग्य लूट लें चरणों के वन्दन का।

राम— क्यों आप हमें चिन्तित दिखलाई देते ?
प्रस्तुत हैं चरणों में हम दोनों भाई,

लक्ष्मण— आज्ञा हो, तोड़ें आसमान के तारे
आज्ञा हो, नापें सागर की गहराई।

दशरथ— हाँ, ऐसा ही कुछ कार्य अपेक्षित तुम से
राजर्षि पधारे तुम दोनों को लेने,
दानव-दल के संहार हेतु प्रस्तुत वे
तुम दोनों को शस्त्रों की शिक्षा देने।

इसलिए तुम्हारी सम्मति प्रत्याशित है
निष्पक्ष भाव अपने-अपने बतलाओ,
यदि तुम्हें राज्य-सुख प्रिय हो, घर रह सकते
शस्त्राभ्यास प्रिय हो तो गुरु-कुल जाओ ;

राम— शस्त्राभ्यास राजर्षि कराने प्रस्तुत
हम भी प्रस्तुत हैं उनकी सेवा करने,
लक्ष्मण— हम क्षत्रिय हैं, दानव-दल दलन करेंगे
प्रस्तुत संतों की महा-व्याधि हम हरने।

राम— गुरु चरणों की वन्दना सदा वरदायी
गुरु की सेवा स्वयंमेव एक तप भारी,
लक्ष्मण— यह वह तप है जो शाश्वत शुभ फल-दायी
शिष्यों को गुरु-सेवा सदैव सुखकारी।

राम— इसलिए देव ! दें विदा मुदित हो हमको
हम करें तपोवन की आकर रखवाली,
लक्ष्मण— धर्मार्थ करें अपना प्रयुक्त भुज-बल हम
बतलायें, क्षत्रिय होते हैं बलशाली।

दशरथ— कितना प्रसन्न हूँ, सुन सुविचार तुम्हारे
मिट गई सभी दुविधा है मेरे मन की,
मातृाज्ञा ले, जाओ सहर्ष तुम दोनों
हो पूर्ण साध यह पावन पुण्यार्चन की।

राजर्षि तुम्हारे गुरु तो अब होंगे ही
ये पितृ-तुल्य भी पूज्य और वन्दित हों,
इनकी सेवा हो पावन लक्ष्य तुम्हारा
हो कार्य वही, जिससे ये आनन्दित हों,।

जा करो तपोवन की रखवाली दोनों
विध्वंस नहीं कोई भी होने पाए,
जो तपोभूमि पर अशुचि दृष्टि निज डाले
वह दुष्ट तुम्हारा लक्ष्य-भेद बन जाए।

• • •

विध्वंस न हो, यह बात कही जब नृप ने
दर्शक-दल में विध्वंस हो गया भारी,
दुष्टों की कोई कमी नहीं धरती पर
बम फेंक चल दिया कोई अत्याचारी।

बम फटा धड़ाके से, ज्वालायें लपकीं
कर हाय ! हाय ! चिल्लाये अगणित मानव,
हो रही राम की जब पावन लीला थी
विध्वंस कर गया भीषण कोई दानव।

मर गए आठ, जाने कितने घायल थे
मच गया वहाँ पर भारी रोना-धोना,
था चीत्कार ही गुंजित सभा-भवन में
करुणा-क्रन्दन से प्लावित कोना-कोना।

दुष्कृत्य किया किसने ? रहस्य था सबको
जितने मुँह उतने ही लोगों के मत थे,
मानवता पर यह गहरा घाव लगा था
लोगों के मन घटना से मर्माहत थे।

फिर पहली बार पिंजड़े में

खट-खट-खट-खट खट स्वर सुन कर गृहिणी ने
झट-पट अपने घर का दरवाजा खोला,
आरक्षी-दल का अफसर वर्दी-धारी
कुछ दुर्विनीत स्वर में गृहिणी से बोला—

"क्या भगतसिंह घर में है ? उसे बुलाओ !"
गृहिणी बोली, "क्या उससे काम बताओ !
मेरा बेटा बैठा भोजन करता है
जाकर कह देती हूँ. तुम नाम बताओ !"

अफसर का स्वर था दुर्विनीत फिर भी कुछ
जब पड़ी कान में भनक, भगत आ धमका,
अंगारे जैसा दीपित मुख-मण्डल था
स्वर निकला, जैसे हुआ धमाका बम का।

"सम्भ्रांत वेश, फिर अविनय कैसा स्वर में
महिलाओं से क्या यही बात का ढंग है ?
जो पहन दासता का है रखा लबादा
चढ़ रहा इसी का शायद मन पर रंग है।"

"उद्दण्ड युवक ! अब तुम मेरे बन्दी हो
अधिकार-पत्र लो देखो यह बन्धन का,
निर्दोष प्रजा पर तुमने बम फेंका है
आरोप यही है तुम पर इस शासन का।"

"मेरा बेटा जनता पर बम फेंकेगा ?
आरोप लगाते लाज न तुमको आती ?
यदि वह चाहे तो शासन पर बम फेंके
मेरे बेटे की इतनी चौड़ी छाती।"

"माँ तुम मत बोलो, मैं उत्तर देता हूँ
मैं कहता बम शासन ने ही फिंकवाया,
हम लोग खटकते हैं उसकी आँखों में
यह हमें फाँसने को है जाल बिछाया।"

"इसका निर्णय तो न्यायालय में होगा
अब जल्दी मेरे साथ चलो तुम थाने,
अब दूध छटी का तुम्हें याद आयेगा
अब लग जायेगी सारी अकड़ ठिकाने।"

"हाँ, प्रस्तुत हूँ चलने से क्या डरता हूँ ?
क्यों मुझे जेल का हौआ तुम बतलाते ?
वह तो इस घर की परंपरा पावन है
जब जेल बुलाती है, हम हँस कर जाते।

पर इसी बात का मुझको भारी दुख है
शासन ने है मिथ्या आरोप लगाया,
जब लोग सुनेंगे, वे मन में सोचेंगे
क्या भगतसिंह ने ही यह पाप कमाया ?

"बेटे तुम क्यों इसकी चिन्ता करते हो ?
जो सत्य, प्रकट होकर ही वह रहता है,
घन-पटल, भले रवि को कुछ ओझल करले
पर वह न कभी चिर आच्छादन सहता है।"

"हाँ माँ ! यह तो होगा ही, मैं जाता हूँ
तुम मुझ पर संचित स्नेहाशीष लुटाओ,
जा रहा पुत्र पुरखों के पावन पथ पर
मंगल वेला में नहीं नयन छलकाओ।"

"बेटे ! मत समझो आँखें उमड़ रही हैं
ये उमड़ रही हैं उर से तुम्हें दुआएँ,
माताओं की आँखें तो छलकेंगी ही
वे कैसे बन सकतीं निर्जीव शिलाएँ।

आँखों की छलकन किन्तु नहीं यह कहती
मैं कायर हूँ, तुम जाते मैं रोती हूँ,
धुंधवित मोह ने दृष्टि-कोण कर डाला
इस खारे जल से मैं उसको धोती हूँ।

तेरे बापू भी खुश होंगे यह सुन कर
चाहा करते, तू कुछ अनुभव पा जाये,
यदि कभी और भी आयें ऐसे अवसर
तो उन्हें देख कर तू न कभी घबराये।"

माँ और अधिक कुछ कहे, पूर्व ही इसके
जालिम ले गये हरण कर उसकी निधि को,
आँखों का तारा आँखों से ओझल था
कितना फैलाती वह निज दृष्टि-परिधि को।

• • •

पर जो होना था हुआ वही, शासन ने
अपना बस चलते सारे अस्त्र चलाए,
पर सत्य सूर्य जैसा ही चमक उठा था
थे अंधकार के बन्धन काट गिराए।

बन्धन था बिलकुल शिथिल, भला क्या टिकता ?
था सिंह मुक्त, पिंजड़ा था उससे सूना,
इस जीवन का भी प्राप्त हो गया अनुभव
उत्साह लगा बढ़ने अब दूना-दूना ।

नौजवान भारत-सभा

कौन हैं ये जो नगर से दूर इस बीहड़ विजन में
वृक्ष के नीचे किए हैं इस तरह अपना बसेरा,
कौन मस्ती के तरन्नुम छेड़ कर इठला रहे ये ?
प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में यहाँ पर डाल डेरा।

कौन जंगल में यहाँ ये कर रहे मंगल अनेकों ?
कौन ये अलमस्त हैं जो कर रहे हैं गुल-गपाड़ा ?
लोटते हैं, पीटते हैं, जूझते हैं ये परस्पर
कौन ये, जिनने जमाया इस तरह अपना अखाड़ा ?

छेड़ता उन्मुक्तता से एक साथी दूसरे को
धौल-धप्पे भी करारे ये परस्पर जड़ रहे हैं,
दुश्मनी की गंध भी आती नहीं व्यवहार से है
आप यह समझें नहीं, ये शत्रु हैं जो लड़ रहे हैं।

दुश्मनी हमको मुबारक, द्वेष ? यह जीवन हमारा
ईर्ष्या की साँस लेकर हम घृणा की छोड़ते हैं,
छल, कपट, पाखंड, ये सब बन गए अवयव हमारे
दंभ से सम्बन्ध अपना हम विहँस कर जोड़ते हैं।

कौन है वह मर्द का बच्चा, तनिक उन्नति करे जो ?
हम पकड़ कर टाँग उसकी, झट पटक कर खींच लेंगे,
लाज लुटती हो किसी की तो लुटे, हम क्यों बचायें
देखना है पाप उसको, इसलिए दृग मींच लेंगे।

आज के युग में नहीं संवेदना है वस्तु उर की
शब्द उसका रूप, अधरों के लिए वह रह गई है,
आज तो अवशेष भी दिखते नहीं हैं मित्रता के
प्यार की दीवार ढह कर, वह घृणा में बह गई है।

प्यार कहते हम जिसे, दुर्गन्ध है वह वासना की
डालते दुर्गन्ध पर बस प्यार का हम आवरण हैं,
सभ्यता की हम दुहाई दे रहे तन ढाँक कर ही
सत्य तो यह है, हमारे नग्न बिलकुल आचरण हैं।

है गया अब तो निकल इंसानियत का भी जनाजा
और हम इंसान उसके नाम पर बट्टा लगाते,
देश की इज्जत लुटेगी या बचेगी प्रश्न है यह
और हम हैं जो कि उत्तर खोजने सट्टा लगाते।

संगठन तो मर गया, दल-बन्दियाँ ही रह गईं बस
संगठन का, आज हम मिलकर सियापा[1] कर रहे हैं,
क्यों करें आराम ? करते आज नित्य अनावरण हम
खींच मुर्दों के कफन, हम घर हमारे भर रहे हैं।

यह हमारा हाल, देखो और कुछ ये लोग हैं जो
कर प्रदर्शन जूझने का, प्यार की वंशी बजाते,
पड़ रहे मुक्के धमाधम, पीठ पक्की हो रही है
दाव लगता, ये परस्पर धौल हैं कस कर जमाते।

---

१. **सियापा**—पंजाब में किसी की मृत्यु शोक का प्रदर्शन दोनों हाथों से अपनी छाती पीट कर किया जाता है इसी क्रिया को सियापा करना कहते हैं।

धौल-धप्पे, शत्रुता के वार ये इनके नहीं हैं
किन्तु निश्छल और पावन प्यार के हैं ये धमाके,
हैं बहुत सम्बन्ध गाढ़े, मित्रता के इन सभी में
प्रकट में वैसे हमें ये दिख रहे हैं सब लड़ाके।

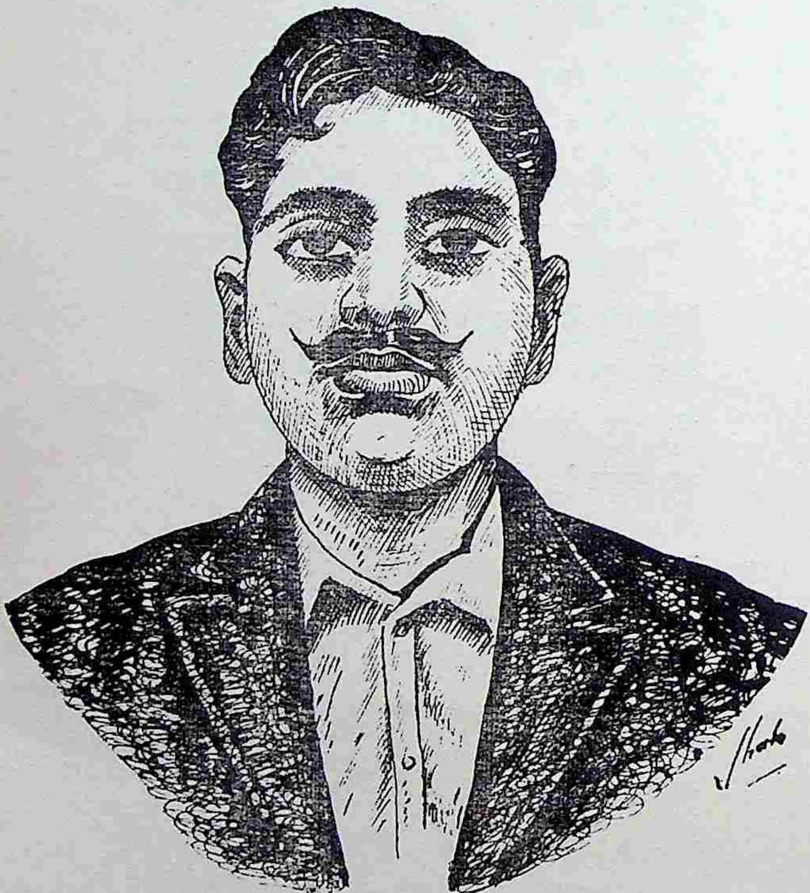
मित्रता ही क्या, नहीं मन की सभी गाँठें खुलीं यदि
लात-घूँसों के बिना इसका मजा आता नहीं है,
मित्रता की नींव पक्की और होती इस तरह है
मित्र ही क्या, प्यार की यदि मार जो खाता नहीं है,

छेड़-खानी के बिना कुछ मित्रता जमती नहीं है
मित्रता क्या, यदि न खाये मित्र के दो-चार धक्के,
धौल-धप्पे मित्र के यदि मित्र पर पड़ने लगें तो
यह समझलो, हो रहे हैं प्यार के सम्बन्ध पक्के

जूझते-से दिख रहे ये नव-युवक हमको यहाँ जो
है न कुछ आश्चर्य, आपस में सभी ये मित्र ठहरे,
नाप सकते हम न गहराई कभी इनके दिलों की
हैं लजाते सिंधु, इतने प्यार के सम्बन्ध गहरे।

नौ-जवानों ने बनाई यह कि जो भारत-सभा है
देश-सेवा के लिये निर्मित हुआ यह संगठन है,
क्या तरंगित है अमित उत्साह इन सब के हृदय में
और क्या निष्ठा परम, कैसी विकट इनमें लगन है।

क्रान्तिकारी भावनाओं को न प्रश्रय मिल सकेगा
लक्ष्य वह बन जायगा अति शीघ्र शासन के दमन का,
इसलिये इनने चढ़ाया शान्ति का यह आवरण है
इसलिये निश्चित किया यह रूप इनने संगठन का।



प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री महावीरसिंह

श्री महावीरसिंह भगतसिंह के निकट के सहयोगी तथा सशस्त्र क्रान्ति के सक्रिय सदस्यों में रहे हैं। कार्य (Action) सम्बन्धी योजनाओं में आपको अवश्य सम्मिलित किया जाता था।

किन्तु आवश्यक अगर हो, नौ-जवानों की जवानी
शत्रु का संहार करने लपक कर तलवार चूमे,
और काँटों के कलेजे, बे-कलेजा हो रगड़ दे
देश के सम्मान के हित दहकते अंगार चूमे।

है इसी उद्देश्य से भारत-सभा इनने बनाई
ये बनाते नित्य ही हैं, मुक्ति की बहु-योजनाएँ,
संगठन इनका कभी दीवार बालू की नहीं है
किन्तु उसमें हैं लगीं संकल्प की दृढ़तर शिलाएँ।

और अब ये खा चुके जब धौल-धप्पे लात-घूंसे
बैठते ये दिख रहे हैं भूमि पर, कुछ और खाने,
बिछ रही हैं पत्तलें, भोजन परोसा जा रहा है
कड़-कड़ा कर जो लगी है भूख, अब उसको मिटाने।

कौन-सा व्यंजन परोसा जा रहा सुस्वादु है यह
देख कर मुँह में सभी के उमग पानी आ रहा है,
गंध भी जिसकी महकती जा रही वातावरण में
और इनका मित्र-मण्डल प्रेम से वह खा रहा है।

और यह व्यंजन, जिसे ये खा रहे हैं चाव से अति
मात्र खिचड़ी है कि जिस पर ये झपट कर टूटते हैं,
आँख चूकी, दोस्तों का माल हो जाता सभी है
लूटते आनन्द, खिचड़ी भी परस्पर लूटते हैं।

तोड़ कर बैठे सभी ये जाति के संकीर्ण बन्धन
है नहीं कुछ भेद हिन्दू और मुस्लिम में यहाँ पर,
सिक्ख-ईसाई सभी तो बैठ कर हैं साथ खाते
स्नेह का दृढ़ संगठन हम पा सकेंगे यह कहाँ पर।

धर्म की कुछ रूप-रेखा और ही इनने बनाई
धर्म यह—बेटे सभी ये देश भारत-वर्ष के हैं,
भेद-भावों की स्वयं दीवार इनने तोड़ डाली
धर्म के उपदेश—बन्धन-मुक्ति के, उत्कर्ष के हैं।

देखना है, नौ-जवानों की सभा क्या रंग लाती
देखना, अरमान इनके कौन से हैं गुल खिलाते,
देखना, यह संगठन ये किस तरह व्यापक बनाते
देखना है, किस तरह अन्याय की ये जड़ हिलाते।

सर्ग बीस

अवधूतों की भूत-लीला

सुनें हम, इस विजन में बैठ कर ये चार दीवाने
विचारों में विचर कर, किस विषय पर बात करते हैं,
हृदय के सिंधु में हैं भावना के कौन से मोती
जिन्हें ये खोज लाने को कमर कस कर उतरते हैं।

कथन है राजगुरु का, "क्या अजब है चाल दुनिया की
जलाती जीवितों को, वह मरों के गीत गाती है,
तड़प कर भूख से दम तोड़ते जायें भले जीवित
मरों के भूत को वह भोग व्यंजन के लगाती है।

हुई संसार की जो प्रतिक्रिया मुझ पर, बहुत कटु है
जमाने ने सताया किस तरह, मैं यह बताता हूँ,
हुई घटना कभी जो, आज तक वह चुभ रही उर में
सुनी को क्या सुनाऊँ, आप बीती ही सुनाता हूँ।

घिसट कर कट गया जो, बात है यह उस लड़कपन की
किसी अपनी विकट धुन में झगड़ चल दिया घर से,
चला था सोचकर मैं, खोज लूंगा देवता कोई'
पता क्या था कि मेरा बँध चुका है भाग्य पत्थर से।

कचोटा भूख ने, दुर्भाग्य ने दीं झिड़कियाँ मुझको
चबा कर पत्तियाँ ही पेट में भरता रहा अपना,
मिली पिक-चोंक से खाई हुई जो आम की गुठली
निगल उसको निहारा तृप्ति का मैंने सुखद सपना।

भटकता इस तरह भूखा रहा मैं तीन दिन वन में
कुए का घाट सूना देख कर मैं रात को सोया,
बँधा था पेट से पत्थर, भुला दी भूख सब मैंने
रहा मैं चुप, मगर पत्थर विचारा रात भर रोया।

धुँधलके में खुली जब आँख मेरी, देखता क्या हूँ
खड़े कुछ लोग काफी दूर, हाथों में लिये पत्थर,
उनींदा-सा भला मैं क्या समझता इस परिस्थिति को
सुनाई पड़ सके अस्फुट मुझे उस भीड़ के ये स्वर—

अरे यह भूत है कोई, यहाँ बच्चा बना सोता
खड़ा होकर विकट यह देह फिर अपनी पसारेगा,
धरेगा रूप कुत्तों-बिल्लियों के यह कई उठ कर
हमें छलने, विविध स्वर से अभी हम को पुकारेगा।

समर्थन इस कथन का दूसरे ने कर दिया कहकर—
मिला यह एक दिन था और भी मुझको यहाँ, यों ही,
कुए में धम्म से यह कूद ओझल हो गया क्षण में
उठाया एक पत्थर मारने मैंने इसे ज्यों ही।

कथन था तीसरे का - शत्रुता इससे नहीं अच्छी
अँधेरे या उजाले, क्या पता कब चोट कर डाले,
जिसे लग जायगा पीछा नहीं यह छोड़ने वाला
भगाओ इसलिये इसको, न प्राणों के पड़ें लाले।

हमें लगता, किसी की आत्मा भूखी भटकती है
हमारा धर्म, इसकी तृप्ति के साधन जुटायें हम,
करें हम लोग भण्डारा, चकाचक माल उड़ने दें
खिला कर ही, पिलाकर ही कहीं इसको भगायें हम।

कथन ने पुष्टि पाई, किन्तु संशोधन तनिक यह था
अभी इसको भगादें हम सभी संधान कर पत्थर,
तनिक देखें, दिखाता कौन-सी यह भूत लीला है
खड़े हम लोग इतने, फिर हमें किस बात का है डर ?

हवा में सनसनाते आ गये पत्थर कई मुझ तक
लपक कर मैं उठा, सोचा कहीं छिप सर बचाऊँ मैं,
लपकना, हड़बड़ाना, वह उछल कर भागना मेरा
नजारा और ही कुछ बन गया, वह क्या सुनाऊँ मैं ?

सरों पर पाँव रख कर, पीठ देकर सूरमा भागे
इसी क्रम में शरारत एक मैंने की बड़ी भारी,
कुए के उस तरफ छोटी शिला जो थी, उठाकर वह
उझक कर, कूप-जल में वह शिला भरपूर दे मारी।

धमाका जो सुना, मुड़ कर सभी वे सूरमा बोले--
कहा था, वह कुए में कूद बैठा देख कर हम को,
मगर वह प्रेत-भण्डारा करेंगे शीघ्र हम मिल कर
भगाना है हमें अपने दिलों से सत्य इस भ्रम को।

सुना ? कैसे विकट भट भाग कर वे बच गये उस दिन
मगर है सत्य यह भी, जान मैंने भी बचाई थी,
दुरंगी नीति दुनिया की उसी दिन जान पाया मैं
चमकती आग-सी उस दिन प्रकट देखी सचाई थी।

चढ़ा कर दान का—धर्माचरण का आवरण, दुनिया
घृणित कमजोरियाँ अपनी कई हम से छिपाती है,
लगाते ठोकरें जो, जोड़ती है हाथ यह उनके
दिखाते नम्रता जो, आँख यह उनको दिखाती है।

करोड़ों भूख से तड़पें, इसे चिन्ता करोड़ों की
दिखायें पेट हम, तो पेट में यह लात जड़ती है,
हमारी प्रार्थनाओं को दिखाती कान यह बहरे
हमारे रक्त का कर पान, हम से ही अकड़ती है।

कई अनुभूतियाँ कटु, हृदय में मेरे कसकती हैं
विकट विद्रोह अंतर में कसक ने ही जमाया है,
बहारों ने भरी प्रतिशोध की बिजली विचारों में
जमाने की हवाओं ने मुझे बागी बनाया है।

बदलना है हवाओं को, यही संकल्प अब मेरा
विषैले दाँत हैं जितने, उन्हें गिन-गिन उखाड़ूँगा,
सजग विद्रोह अंतर में, नहीं प्रतिरोध अब संभव
स्वरों में गर्जना ले क्रान्ति की, अब मैं दहाड़ूँगा।"

कथन यह राजगुरु का सुन, सभी के हृदय भारी थे
बदलने रंग मुखरित अब हुआ आजाद का स्वर था,
प्रखर उत्ताप भर कर सूर्य का निज विप्लवी उर में
सभा में बोलता अब सुन पड़ा यह चन्द्रशेखर था—

"गया था ग्वालियर मैं, विप्लवी सेना बनाने को
सुना था तवरधारी[1] सिंह पढ़ते हैं वहाँ रह कर,
विचारा, हो गए यदि दीक्षित ये क्रान्ति के दल में
हमारा संगठन यह हो सकेगा और भी दृढ़तर।

उन्हीं के साथ झाँसी के निवासी, मित्र विश्वासी
हमारे क्रान्ति-पंथी वीर श्री माहौर रहते थे,
सुनाते थे कई किस्से मुरेना भिण्ड[2] के बहुधा
वहाँ का तेज है पानी, सदा यह बात कहते थे।

फुलाते वक्ष थे कहकर—किसी की जीभ यदि चलती
नहीं कुछ देर उत्तर में किसी के हाथ चलते हैं,
न यदि दो-चार सर फूटे, हुआ बदनाम वह झगड़ा
उरों में मारने के काटने के भाव पलते हैं।

यही था भाव, जिससे ग्वालियर मेरा बना प्राङ्गण
सुहृद निज मित्र उन सिंहों-सपूतों को बनाता था,
बड़े ही चाव से बातें सभी उनकी सुना करता
बड़ी ही युक्ति से मैं बात अपनी भी सुनाता था।

---

१. तवरधार = ग्वालियर राज और आस-पास का वह प्रदेश जिसमें तोमर ठाकुर अधिक रहते हैं।

२. भिण्ड-मुरेना—पुराने ग्वालियर राज्य तथा वर्तमान मध्य प्रदेश के दो जिले जहाँ के निवासी अपनी आन-बान और वीरता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

मिला संयोग, छात्रावास[1] में मैं जा टिका उस दिन
अचानक रात में भगदड़ मची, हल्ला हुआ भारी,
उठा जो हड़बड़ा कर मैं, दिखे सब लोग चिल्लाते—
बचो सब लोग, हमला कर रहे हैं भूत भयकारी।

दिखाई भूत-लीला दी मुझे कुछ दूर सचमुच ही
उगलते वृक्ष थे लपटें, विकट अंगार झड़ते थे,
बहुत साहस दिखाता छात्र-दल था पास जाने का
मगर भय खींच लेता, पाँव आगे को न पड़ते थे।

किसी छत पर उपद्रव कर रहा कंकाल था नर का
उछलता-कूदता वह हड्डियाँ निज खड़खड़ाता था,
भयानक बोलियों से वह भयावहता बढ़ाता था
कभी वह झूम कर चलता, कभी पग लड़खड़ाता था।

कई नर-मुण्ड दिखते नाचते थे एक टंकी पर
मुखों से लपलपाती दिख रही थीं क्रुद्ध ज्वालाएँ,
लगा, जैसे कि बढ़कर वे सभी कुछ भस्म कर देंगी
लगा जैसे कि सब कुछ लील लेंगी अग्नि-मालाएँ।

---

१. छात्रावास=विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर वर्तमान महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय) का छात्रावास पहले कॉलेज प्रांगण में ही था। इसी छात्रावास में अपने मित्र भगवानदास माहौर के साथ चन्द्रशेखर आजाद ठहरा करते थे। उस समय उन्होंने अपना नाम हरीशंकर घोषित कर रखा था। भूत बन कर चन्द्रशेखर आजाद को डराने की योजना छात्रों ने बनाई थी। इस घटना का उल्लेख भी भगवानदास माहौर ने अपने ग्रन्थ 'यश की धरोहर' में किया है। आगे चलकर श्री माहौर ने 'चन्द्रबदनी का नाका' मुहल्ले में किराए से मकान ले लिया था जिसमें चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह बहुधा ठहरा करते थे।

सभी यह भूत-लीला देख कर भयभीत होते थे
सभी थे साथ, फिर भी दिख रहे थे काँपते थर-थर,
इसी क्रम में हुये संकेत कुछ, कुछ फुसफुसाहट भी
बना मैं लक्ष्य, उनके सुन पड़े अब साफ थे ये स्वर—

बड़ी ही शान की बातें बघारा मित्र तुम करते
कहा करते सदा जो, आज वह करके दिखाओ तुम,
परीक्षा वीरता की आज है पंडित हरीशंकर !
अगर हो वीर, भूतों को तनिक जाकर भगाओ तुम।

भला यह बात तीखी किस तरह होती सहन मुझको
लपक बैठा, उठाता-बीनता मैं राह के पत्थर,
जिधर होती दिखाई भूत-लीला दी, उधर बढ़कर
निशाना साध, पत्थर सनसनाये खूब कस-कस कर।

जिधर कुछ देर पहले हो रही 'हू ! हू !' भयंकर थी
सुनाई अब दिये उस ओर, हाहाकर के स्वर थे,
धमा-धम कूद कर जो भूत भागे क्या मची भगदड़
टँगे जो रह गये, वे काँपते सब भूत थर-थर थे।

बड़ा-सा एक पत्थर ले, दिया कंकाल में जड़कर
लगा वह, हड्डियों की चरमराहट भी सुनाई दी,
वहाँ से कूद कर दो भूत कमरों की तरफ भागे
दुबक कर रह गये कुछ और रक्षा की दुहाई दी।

निशाना मैं न टंकी को बना पाया कि पहले ही
लपक सब मित्र आ धमके, कहा—अब युद्ध मत ठानो,
नहीं कोई कहीं भी भूत, साथी हैं सभी अपने
किसी की खोपड़ी खिल जायगी पत्थर न संधानो।

सभी ने घेर कर वह उपल-वर्षा रोक दी मेरी
उतारा युक्ति से जो भूत टंकी पर टँगे अब तक,
उन्हें भय था कि भय से पैर चूका तो न बचने के
इसी से सावधानी हो गई थी उन्हें आवश्यक।

बधाई भूत सब आकर स्वयं थे दे रहे मुझको
विपुल शाबाशियाँ देकर गले मुझको लगाते थे,
बढ़े ही गर्व से बातें सभी दुहरा रहे थे वे
बड़े अपनत्व से वे पीठ मेरी थपथपाते थे।

कथन था एक का—हमने कई हैं सूरमा परखे
हुए इस भूत-लीला से सभी के हौसले ढीले,
बचा कोई मिठाई बाँट कर, कोई दुहाई दे
पड़ा बीमार कोई, सूख कर कुछ हो गये पीले।

कथन था अन्य का—पंडित हरीशंकर नहीं पोंगे
लगेगा भूत क्या इनको, न खुद ये भूत से कम हैं,
कथन था तीसरे का—ये परीक्षा में खरे उतरे
सहायक और सच्चे मित्र इनके आज से हम हैं।

सुना, वे मित्र[1] मेरे इस तरह सब बन गये पक्के
सभी जी-जान से हैं साथ देने के लिये तत्पर,
अगर मैं डर गया होता, नहीं थी खैर तो मेरी
व्यवस्था चूड़ियों इत्यादि की उनने रखी थी कर।

---

१. **मित्र**—चन्द्रशेखर आजाद ने अपने कुछ चुने हुये मित्रों की सहायता से ग्वालियर के जनकगंज मुहल्ले में बम का कारखाना खोला था। यहाँ बमों में भरने के लिये मसाला तैयार करके अन्य कारखानों को भेजा जाता था।

इसी से तो कथन मेरा, दिलेरी बहुत आवश्यक
हथेली पर रखे सर हम सभी को घूमना होगा,
हृदय में जागती लपटें लिये हमको विचरना है
जगा कर क्रान्ति की लपटें, शिखर को चूमना होगा।

अगर डर कर रहे हम तो नहीं कोई ठिकाना है
कई हैं भूत दुनिया में, हमें जो लील जायेंगे,
अगर हम भूत-लीला का करारा दे सके उत्तर
बनेंगे मित्र वे अपने, हमें सर पर बिठायेंगे।"

कथन आजाद का पूरा हुआ, सुखदेव अब बोले—
"दिलेरी की कही जो बात उससे मित्र सहमत हूँ,
नहीं कमजोरियाँ अपनी छिपाई आज जा सकतीं
दशा क्या आज अपनी हो रही, मैं, पूर्ण अवगत हूँ।

कहानी है नहीं जो कह रहा, यह सत्य घटना है
हमारे एक पुरखे ने मनुज का जन्म पाया था,
मगर ऐसा मिला शैशव कि चूहे खा गये उनको
मनुज का रक्त पीकर क्षुद्र चूहों ने पचाया था।

बहुत आती हँसी मुझको, कभी जब सोचता हूँ मैं
भला इंसान चूहों से गया-गुजरा नहीं क्या अब ?
हमारे खून का वह ताप क्यों ठण्डा हुआ इतना ?
कहाँ वह वीरता का दम्भ अपना सो गया है सब ?

हमारी वीरता इतिहास की है वस्तु अब केवल
हमारी शक्ति शब्दों में उलझ कर छटपटाती है,
हमारा संगठन मस्तक झुकाए आज बैठा है,
हमारी ईर्ष्या मैदान में जौहर दिखाती है।

सरासर हो रहे अन्याय, क्यों चुपचाप सहते हम ?
हमारी भावनाएँ क्यों नहीं बारूद बनती हैं ?
कलेजा चीर दें उनका, हमारा खून जो पीते
न क्यों वीराङ्गनाएँ आज ऐसे सिंह जनती हैं ?

अगर जीना हमें है, शान से ही तो जियें हम सब
करें हम शक्ति का संचय, जमाने को बदल दें हम,
दिखाता आँख जो हमको उठा कर गर्व का मस्तक
किसी अभिमान का वह शीष पैरों से कुचल दें हम।"

भगत ने सिंह जैसी गर्जना कर पुष्टि की इसकी
"जियेंगे और सचमुच शान से ही अब जियेंगे हम,
इरादों में हमारे खून की गर्मी भभकती है
नहीं आँसू पियेंगे, खून दुश्मन का पियेंगे हम।

हमारे देश की मिट्टी हमें सौगन्ध देती है
जवानी इस धरा की शान के हित झूल जायेगी,
किसी अन्याय को हम पीठ देने के नहीं आदी
लगेंगीं गोलियाँ, छाती हमारी फूल जायेगी।

हमारा है यही संकल्प, जीवन देश का जीवन
यही संकल्प, बिस्तर पर नहीं सो कर करेंगे हम,
करेंगे मौत के भी दाँत खट्टे जूझ कर उससे
मरेंगे शान से हँसकर, नहीं रोकर मरेंगे हम।"

सर्ग इक्कीस

नजाकत की बगावत

किया जो काण्ड-काकोरी हमारे राष्ट्र-वीरों ने
ब्रिटिश साम्राज्य-शाही पर तमाचा यह करारा था,
हुकूमत के नशे में जो हुए मदहोश दिखते थे
तमाचा जड़ हुकूमत का नशा उनने उतारा था।

उन्हें चेतावनी थी यह; 'अगर तुम लूटते हमको
तुम्हें भी लूट कर हम, लूट का बदला चुकायेंगे,
उठा कर गर्व से सर तुम नहीं फूले समाते जो
तुम्हारे उन अहंकारी सरों को हम झुकायेंगे।

न समझो तुम, हमारी बाहुओं का मर गया है बल
न समझो तुम, हमारी इन नसों में बह रहा पानी,
न समझो तुम, अहिंसा कायरों का अस्त्र होता है
न समझो तुम कि हम कुछ कर दिखा सकते न कुर्बानी।

हमारी गर्जना है यह, नहीं हम शान्त बैठेंगे
सुनो, हम चैन से तुमको कभी सोने नहीं देंगे,
हमारे देश की धरती हमें प्यारी अधिक हम से
इसे वीरान अपने सामने होने नहीं देंगे।"

हुकूमत ने सुनी ललकार जब यह बौखलाई वह
दमन का चक्र अपना और भी अब तेज कर डाला,
पड़े अब और भी मजबूत ताले जेलखानों में
दिखाया और भी विकराल अपना रूप अब काला।

हमारा शेर वह पंजाब का—सरदार वह अपना
हुकूमत को बना आजाद भी आतंक भारी था,
छुड़ाना चाहते थे जेल से सब बन्दियों को वे
छुड़ाने का उन्हें, प्रत्येक संभव यत्न जारी था।

बनी यह योजना, बम के धड़ाके जेल पर करके
बने जैसे, सभी उन साथियों को हम छुड़ा लायें,
भले दो-चार हम बलिदान हों, चिन्ता नहीं इसकी
ब्रिटिश-साम्राज्य-शाही पर मगर हम आग बरसायें।

इरादा था भला उनका, मगर पूरा न हो पाया
कई थीं उलझनें, अभियान के सब यत्न निष्फल थे,
न केवल आक्रमण ही एक साधन था छुड़ाने का
समस्या के अनेकों और भी अब सामने हल थे।

करें हम न्याय-निर्णय हित हमारा पक्ष बलशाली
करें निज पक्ष में सब, देश के वि:ान अभिभाषक,
न संभव जो हुआ बल से, उसे हम बुद्धि से करदें
करें इनको छुड़ाने के सभी हम यत्न आवश्यक।

मुकदमा चल रहा था लखनऊ के न्याय-मन्दिर में
तरंगित था जहाँ सागर कुपित जन-भावनाओं का,
नगर चिनगारियों का और शोलों का बना मेला
नगर चर्चित रहा है जो सुकोमल कल्पनाओं का।

नजाकत भी बगावत कर रही थी लखनऊ में अब
दिखाई था दिया आक्रोश अति उद्दाम नखरों में,
उफनते ज्वार का उन्मेष अर्तहित हुआ स्वर में
हृदय की आग का सबको दिखा पैगाम नखरों में।

भृकुटि-विक्षेप देते थे प्रलय की सूचनायें अब
वतन की ही मुहब्बत के ध्वनित सब ओर थे चर्चे,
हमारे क्रान्तिकारी वीर दण्डित हो नहीं पायें
इसी प्रस्ताव के, देखो जहाँ, थे बँट रहे पर्चे।

मुकदमे के लिए दिल खोलकर धन लोग देते थे
महल से झोंपड़ी तक दान की थी बह रही धारा,
समर्पित कर रहीं थी बेगमें जेबर खुशी से सब
खुशी से दे रहा चन्दा नगर था लखनऊ सारा।

मगर सब कुछ हुआ यह व्यर्थ, क्यों ? यह बात मत पूछो
सुनाई दे किसे सरकार के तो कान बहरे थे,
घड़ा चिकना बहुत ही हो गया था न्याय का उनका
सभी थे बह गये, उस पर न कोई तर्क ठहरे थे।

चला नाटक बहुत दिन न्याय का भारी प्रदर्शन था
हुआ वह अन्त उसका, जो सुनिश्चित था हुआ होना,
किये तैयार फाँसी के कई फन्दे हुकूमत ने
छुड़ा पाये न हम उनको, लिखा था भाग्य में रोना।

मिला आदेश फाँसी[1] का हमारे वीर बिस्मिल को
हमारा शेर-दिल अशफाक भी उस डोर पर झूला,
लटक कर नाम रौशन कर गया वह वीर रोशन भी
नहीं था लाहिड़ी राजेन्द्र को फन्दा तनिक भूला।

हमारी मातृ-भू ने चार बेटे खो दिये अपने
कई को था हुआ आजन्म कारावास का निर्णय,
सभी दण्डित हुए, पर क्या विकट था हौसला उनमें
न चिन्ता की दिखी रेखा न गोचर मौत का था भय।

सुना जिसने, कलेजा थाम कर वह रह गया अपना
हमारे देश ने मातम मनाया, देश को गम था,
सभी को था बहुत दुख, चार अपने रत्न प्रिय खो कर]
सभी को था बहुत गम, रोष भी उससे नहीं कम था।

बचे जो क्रान्तिकारी वीर, था संकल्प यह उनका
हमें बरतानिया की इस हुकूमत को उलटना है,
नहीं हम को सहन, शासन विदेशी हो हमारे घर
हमें साम्राज्य-शाही का जमा तख्ता पलटना है।

---

१. **फाँसी**—काकोरी-काण्ड के निर्णय के अनुसार चार वीरों को फाँसी पर लटकाया गया था। वे थे—श्री रामप्रसाद बिस्मिल, श्री अशफाकउल्ला खाँ, श्री रोशनसिंह और श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी।

यही संकल्प था जलता हुआ आजाद के उर में
भगत की गर्जना में रोष का उन्मेष भारी था,
यही आवाज उठती क्रान्तिकारी संगठन से थी
यही अरमान था सब का, यही आवेश भारी था।

नहीं था लक्ष्य, लेना साँस सुख की बैठ कर घर में
वतन की धूल दीवाने निरन्तर फांकते रहते,
भरी है आग किस मन में, हलाहल कौन पी सकता
हृदय सब के, निकट से वीर वे थे झाँकते रहते।

ब्रैडला-भवन में शहीद-चित्रावली

लाहौर शहर-ब्रैडला भवन, कैसा विशाल यह आयोजन,
उत्कण्ठित जहाँ पहुँचने को, हर देश-भक्त का आकुल मन।
इक्के-दुक्के, कुछ संग-साथ जा रहे चार-छः-दस मिल-मिल,
बढ़ता जाता यह जन-प्रवाह, परिहास-हास-उर्मिल-फेनिल।

गंतव्य एक, गतियाँ अनेक, जन-रव-गुंजित जन-पथ संकुल
कुछ पग परिचालित अग्रेसित, कुछ पग अंतर-चालित आकुल,
मन की गति से संचालित से कुछ पग उठउठ कर चलते-से
कुछ उठ-उठ कर गिर-पड़ते-से, कुछ चलते उछल-मचलते से।

आगत-जन हाथों-हाथ सभा-गृह में पहुँचाये जाते हैं,
वे सभी आगमन क्रम से ही आसीन कराये जाते हैं।
दल स्वयं-सेवकों के द्वारा, होता सब का अभिनन्दन है,
स्वागत में श्रद्धा-सुरभि बसी, वाणी-विलास ही चन्दन है।

सुन्दर है वैसे सभा-कक्ष, पर आज और भी सज्जित है,
बलिदान-भावना से प्रेरित यह वातावरण निमज्जित है।
शोभित हैं अमर-शहीदों की, दीवारों पर चित्रावलियाँ,
है इन्कलाब के नारों से गुंजित पथ की—मन की गलियाँ।

अंकित बलिदान-वाक्य पढ़ कर, दर्शक विस्मृत-से हो जाते,
तन से वे वहाँ, किन्तु मन से जाने कैसे कब खो जाते।
कुछ वाक्य यहाँ ये लिखे हुए, दर्शक रुक-रुक पढ़ते जाते,
उनको मन में अंकित करके, फिर कुछ आगे बढ़ते जाते।

यह लिखा हुआ—"दीवानों की
हस्ती भी कैसी हस्ती है,
शरमाती स्वयं मौत इनसे
यह भी कैसी अलमस्ती है।"

"जो प्यार वतन से होता है
समझो, है सच्चा प्यार वही,
जो मातृ-भूमि हित सर दे-दे
है जवाँ-मर्द सरदार वही।"

"क्या सोच रहा है कातिल तू ?
तलवार न क्यों उठती तेरी ?
धरती की गोदी में गिरने
यह देख, उठी गर्दन मेरी।"

"है वीर वही जिसकी गर्दन
कट जाये, पर वह झुके नहीं,
दिल चैन नहीं पाये, जब तक
दुश्मन से बदला चुके नहीं।"

"मरने का नाम जिन्दगी है
जब से हम यह सुन पाये हैं,
हम सर से कफन बाँध
कातिल को स्वयं ढूंढ़ने आये हैं।

"बलिदान निमन्त्रण देते हैं
इस धरती के दीवानों को,
है मौत नहीं हौआ कोई
आजादी के पर्वानों को।"

"क्या जाम पियेंगे वे कोई
जो जाम शहादत का पीते,
जिन्दगी नहीं उनकी अपनी
वे सब के हैं मरते-जीते।"

"मादरे-वतन पर जो अपनी
कुर्बान जिन्दगी कर देते,
वे अपना बागी लहू, जमाने
की रग-रग में भर देते।"

"ओ जालिम ! तेरे जोर-जुल्म
से लड़ कर हम जीने वाले,
बन्दूक गोलियों वाला तू
तो हम भी हैं मरने वाले।"

ऐसे ही प्रेरक वाक्य बहुत, ये लिखे हुए दीवारों पर,
मन ठिठक-ठिठक कर बढ़ जाता आगे की कई कतारों पर।
जो देख रहे हैं चित्र, स्वयं वे चित्र-लिखे-से दिखते हैं,
उर के पट पर उत्सर्गों की वे स्वयं चित्र-लिपि लिखते हैं।

यह चित्र किसी दीवाने का, आजादी के परवाने का,
धरती पर मर-मिटने वाले यह चित्र किसी मर्दाने का।
हौसला अरे देखो इसका, मस्ती में कैसा झूम रहा,
फाँसी का फन्दा खुद अपने हाथों में लेकर चूम रहा।

यह चित्र किसी मृत्युंजय का, संगीनों में भी वक्ष तना,
कहता है—"बुलबुल रो न यहाँ, आँसू दिखलाना यहाँ मना।"
सर पर मंडराती मौत इधर, यह मृदु मुस्कान बिखेर रहा,
कहता—"जालिम संगीन चला, तू क्यों इतनी कर देर रहा ?"

यह कौन वीर हथ-कड़ियों में, जिसके हैं दोनों हाथ कसे,
हैं बरस रहे इस पर कोड़े, फिर भी तन में हैं प्राण बसे।
निर्वसन देह, हर कोड़े का इसके तन पर है चिन्ह बना,
है कहीं खाल भी उधड़ रही, फिर भी यह निर्भय खड़ा तना।

कैसा उन्माद भरा दिखता इस लौह-पुरुष के तन-मन में,
सच है ऐसे ही दीवाने कुछ कर जाते हैं जीवन में।
अन्यायों-अत्याचारों की, कितनी ही बार उठी आँधी,
दीवानों की हस्ती न मिटी, उनकी मस्ती न गई बाँधी।

काँटो पर चले जवानी वह, फूलों में पली जवानी क्या?
अत्याचारों को डुबा न दे, वह आँखों का पानी क्या?
जो बलिदानों को जगा न दे, वह भी बलिदान-कहानी क्या?
जो मातृ-भूमि हित मस्तक का कर दान न दे वह दानी क्या?

यह चित्र प्रेरणा देता है, अपना तन-मन धरती का है,
धरती जैसे चाहे ले-ले, सारा जीवन धरती का है।
अपनी धरती को जीवन का उत्सर्ग बड़ा उत्सर्ग नहीं,
जो मातृ-भूमि से बढ़ कर हो, ऐसा तो कोई स्वर्ग नहीं।

धरती-माता पर संकट हो, हम मीठे सपने दुलरायें,
क्यों नहीं पाप फूटे तन से, क्यों नहीं हड्डियाँ गल जायें।
यौवन न मिला अपमानों को, साँसे न मिली आहें भरने
जीवन हम को है मिला नहीं, कुत्तों की करुण मौत मरने।

तन का शोणित लावा न बने, तो खून नहीं वह पानी है,
जो दुश्मन को न पीस डाले तो वह धिक्कार जवानी है।
जो ज्वाला-मुखी न बन जाये, वह तन मिट्टी का ही घट है,
हों देश-भक्त पैदा न जहाँ, घर नहीं अरे वह मरघट है।

ये चित्र प्रेरणा देते, हम यौवन की आज शपथ खायें,
हम जिस धरती के बेटे हैं, उसके ही लिये काम आयें।
युग-युग तक अमर प्रतीक बनें, ये चित्र हमारे निश्चय के,
हम साँस-साँस में गीत सभी, गायें इस धरती की जय के।

यह चित्र आवरण-मंडित जो, हम देखें इसका अनावरण,
उद्घाटन करने वाले हैं इसका, साथी भगवतीचरण।
इन कर्मठ युवकों ने मिल कर यह भारत-सभा बनाई है,
यह उसका ही प्रयत्न है सब, जो जनता दौड़ी आई है।

भर गया खचाखच रंग-भवन, भर गई दीर्घाएँ ऊपर,
शोभित गवाक्ष ललनाओं से, शोभित हैं नर-नाहर भूपर।
यह कला-सुसज्जित रंग-मंच, यह रखा चित्र कोई आवृत,
यह वातावरण देखते ही मन हो जाता श्रद्धा से नत

इस चित्र-आवरण पर छींटे कुछ मनुज-रक्त के पड़े हुए,
अरमानों के नभ में जैसे संकल्प-सितारे जड़े हुए।
ये बिन्दु सुशीला दीदी ने, दुर्गा भाभी ने छिटकाये,
निज पावन रक्त छिटक उनने, मन के श्रद्धा-कण बरसाये।

ये आये श्री भगवतीचरण, अब इन से मंच सुशोभित है,
व्यक्तित्व देख इनका विशाल सारा दर्शक-दल मोहित है।
कर जोड़ कर रहे ये प्रणाम, क्या विनय-भावना अंतर में,
क्या ओज समन्वित दिखता है इस धीर-वीर के दृढ़ स्वर में।

ये बोल उठे—"साथियो ! और श्रद्धेया बहिनो ! माताओ !
उज्ज्वल भविष्य के निर्माता, भारत-माता की आशाओ !
सचमुच ही हम हम सब हैं प्रसन्न, जन-मानस के दर्शन पाकर,
उत्साह हमारा बढ़ा दिया है, यहाँ आप सब ने आकर।

भावों का करूँ प्रकाशन मैं, है शब्दों में सामर्थ्य नहीं,
अविदित न देश की दशा; छिपा है हमसे कोई तथ्य नहीं।
फिर भी कुछ स्वल्प निवेदन मैं यदि करूँ, क्षम्य समझा जाऊँ,
जो व्यथा घुमड़ती है मन में, वह प्रकट नहीं क्यों दिखलाऊँ?

किसको न ज्ञात है दमन-चक्र चल रहा फिरंगी शासन का,
है दलित किया जाता हमको, ले नाम सदा अनुशासन का।
अपने ही घर में रह कर भी, हम सब बन गये पराये हैं,
घर के स्वामी बन बैठे हैं वे जो बाहर से आये हैं।

अपने घर में अपने शासन की माँग हमें है पाप बनी,
कैसी बिडम्बना, देश-भक्ति ही हम सब को अभिशाप बनी।
आखिर कब तक नत-मस्तक हो हम ये प्रहार सहते जायें,
अत्याचारों को सहकर भी कब तक हम चुप रहते जायें।

क्यों खून खौलता नहीं अरे! क्यों वह ठण्डा पड़ता जाता?
किस नींद सो गया स्वाभिमान, जब है दुर्दिन चढ़ता आता?
क्यों खुल न आज पाती जबान? क्यों उस पर ताले पड़े हुए?
मंजिल आजादी की सम्मुख, पैरों में छाले पड़े हुए।

क्यों भूल गये राणा प्रताप की हम बलिदान कहानी को?
क्यों भूल गये हम नर-नाहर उस शेर शिवा अभिमानी को?
क्यों याद नहीं आती हमको रण-चण्डी लक्ष्मी मर्दानी?
क्यों याद न आते स्वतन्त्रता के हमको अगणित सेनानी?

क्या हम में गुरु गोविन्दसिंह का विप्लवकारी खून नहीं?
क्यों आजादी के लिये जफर-सा हममें जोश-जुनून नहीं?
क्यों भूल रहे फाँसी अपने अशफाक और हम बिस्मिल को?
आवाज नहीं कर पाते हैं क्यों हम बुलन्द अपने दिल की?



अमर शहीद श्री भगवतीचरण

वह भगवतीचरण

- जिसने ब्रैडला हॉल में सरदार कर्त्तारसिंह के चित्र के उद्घाटन के समय ऐतिहासिक भाषण दिया था।
- जो क्रान्ति के प्रसारण के लिए तन-मन-धन से सेवा करता था।
- जिसकी पत्नी श्रीमती दुर्गादेवी ने जान पर खेल कर सांडर्स वध के पश्चात् भगतसिंह को लाहौर से कलकत्ता सुरक्षित रूपसे पहुँचाया था।
- जो भगतसिंह को जेल से छुड़ाने के प्रयास में रावी के तट पर अपने ही हाथ में बम फट जाने के कारण शहीद हो गया और रावी की चपल लहरियों में जिसकी स्वर-लहरी आज भी सुनाई देती है— "अपना काम किसी भी बाधा से रुके नहीं।"

है समय जगाता हम सब सब को, आसुरी नींद से हम जागें,
निज स्वाभिमान की रक्षा को, बलि-पथ पर तेजी से भागें।
अपने प्राणों से कहीं अधिक आजादी हमको प्यारी हो,
यह वतन हमारा है तो फिर इसकी सरकार हमारी हो।

है बुरा दासता से बढ़कर जग में कोई अभिशाप नहीं,
निष्क्रिय होकर बैठे रहना, इससे भी बढ़कर पाप नहीं।
आश्चर्य ! नचाते हम बन्दर, पर बन्दर हमको नचा रहे,
हम अपना दामन अपयश से फिर भी न तनिक भी बचा रहे।

इसलिए निवेदन, मुक्ति हेतु कोई योजना विचारें हम,
कंधों से जुआ गुलामी का मिल-जुल कर सभी उतारें हम।
माना साधन अपने सीमित, दुश्मन की शक्ति असीमित है,
हम कहते सब हो जायगा, यदि देश-भक्ति ही जीवित है।

भावना चाहिए दिल में, वह संकल्पों को गति देती है,
कर्तव्य और भावना बिना जीवन मरुस्थल की खेती है।
कर्तव्य-भावना ज्योति बिना अंधा यह जीवन होता है,
हैं हाथ-पैर सब गौण, सफलता का साधन मन होता है।

मन से संचालित हाथ-पैर खुद ही आगे बढ़ते जाते,
मन की धृति गति बन जाती, हम गौरव-गिरि पर चढ़ते जाते।
इसलिए विनय है, मुक्ति हेतु हम सब गतिवान करें मनको,
स्वाधीन देश के वासी हो, हम सफल करें निज जीवन को।

संभव है, इसी भाँति जब-तब कुछ ऐसे ही आयोजन हों,
प्रार्थना हमारी यही, आपके फिर भी हमको दर्शन हों।
यदि कभी आपकी सेवा में, हममें से कुछ आयें जायें,
तो प्रार्थनीय सहयोग आपका वे पूरा-पूरा पायें।

आशीर्वाद ही मिले अगर, हम लोग बहुत कुछ कर सकते,
हम हैं समाज के हाथ-पैर, गति आप लोग ही भर सकते।
वैसे यह काम सभी का है, फिर भी जो आप यहाँ आये,
हैं धन्य हमारे भाग्य हुए, जो इतने शुभ-दर्शन पाये।

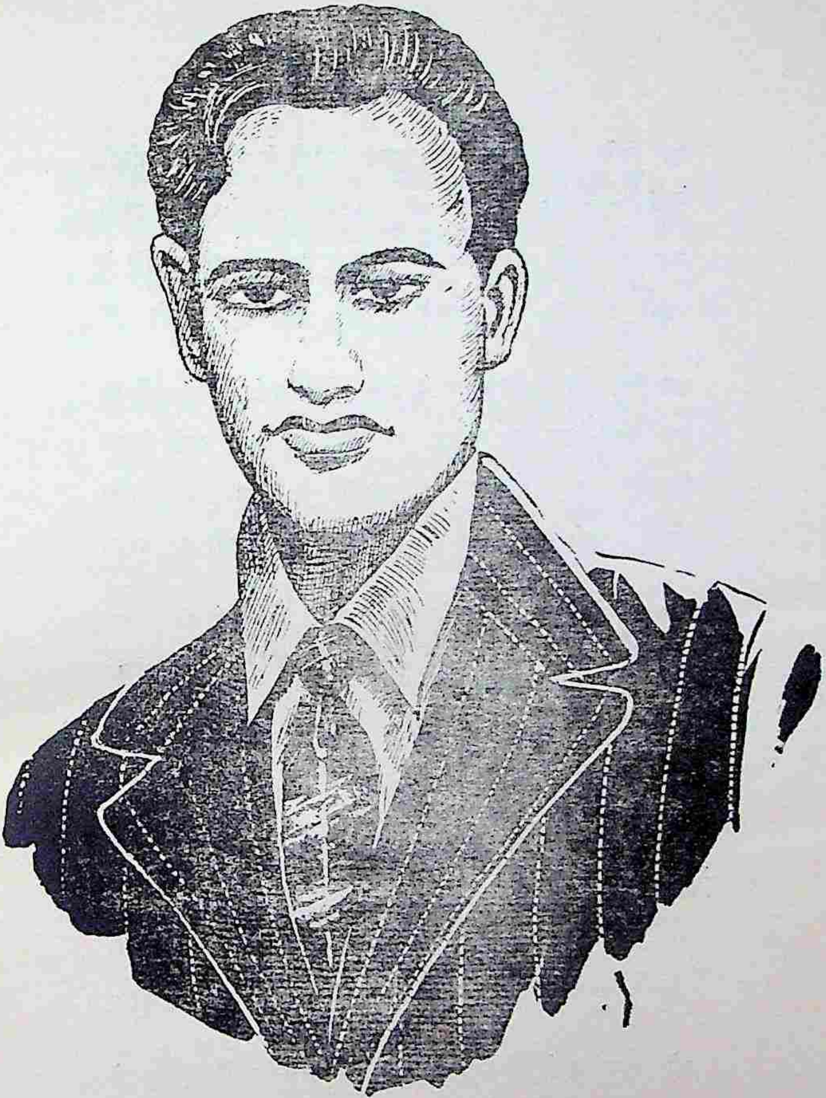
अब चित्र अनावृत करता हूँ
कर्तारसिंह का श्रद्धा-सह,
शहजादा यह शहीद-कुल का
आता है याद हमें रह-रह।

यह चित्र सामने है देखें
नर क्या यह तो नर-नाहर है,
मन भी वैसा ही निर्मल है
तन जैसा उज्ज्वल बाहर है।

कोमल तन है पर शक्ति प्रबल है कूट-कूट कर भरी हुई,
इस संकल्पी से जीवन भर थी रही विवशता डरी हुई।
सरदार वंश का दीपक यह, अपनी धुन का मतवाला था,
कर्तारसिंह, जुलमी शासन को आफत का परकाला था।

यह भी कोई है, मान गये थे इसको अमरीका वाले,
वय में छोटा, पर बड़े-बड़ों के इसने कान कुतर डाले।
अमरीका में अखबार 'गदर' इसके संपादन का फल था,
मन से निश्छल था, यह मन के संकल्पों से भी निश्चल था।

उड्डयन-कला में सिद्धहस्त इसको विदेशियों ने माना,
कल्पना-लोक में विचरण कर यह बुनता था ताना-बाना।
सोचा करता—निज वायुयान पर देश-ध्वजा फहराऊँगा,
भारत-माता की मुक्ति हेतु मैं पवन पंथ से जाऊँगा।



शहीद कुल का शहजादा अमर शहीद सरदार कर्तारसिंह

वह कर्तारसिंह

- जिसकी तमन्ना थी कि मरने के बाद उसे बागी कहकर पुकारा जाय।
- जिसकी उडुयन-कला की धाक अमेरिका के अच्छे-अच्छे हवा-बाजों ने मानी थी।
- जिसकी प्रतिभा का लोहा रासबिहारी बोस जैसे महान् क्रान्तिकारी मानते थे।
- जिसने एक नारी की मर्यादा की रक्षा के लिये अपने साथी क्रान्तिकारी के सीने पर पिस्तौल रख दी थी।
- जिसकी अभिलाषा थी कि अगला जन्म यदि पुरुष का मिले तो फिर विद्रोही बने और यदि नारी बने तो विद्रोही सन्तान जने।
- जो तरुण उमर में हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गया।

था किसे ज्ञात, कल्पना सुखद फाँसी में परिवर्तित होगी,
निर्मम फन्दे को, जीवन की साधना सभी अर्पित होगी।
जब तक वह जिया—हौसले से, दुश्मन उससे थर्राते थे,
साथी श्रद्धानत हो झुकते, बूढ़े आशीष लुटाते थे।

उस दिन जब किसी बहिन के प्रति इसके साथी ने व्यंग्य किया,
इस सिंह-पुरुष ने पामर को आड़े हाथों था तभी लिया।
पिस्तौल अड़ा दी सीने पर, आँखों से भभक उठी ज्वाला,
बोला, "ओ नर-पिशाच ! तूने बदनाम हमें क्यों कर डाला ?

यह गोली तेरे सीने के क्षण भर में अभी पार होती,
पावन भू पर, तेरे कलुषित शोणित की बही धार होती।
पर छोड़ रहा हूँ, लज्जा से तू अपनी मौत स्वयं मर ले,
तू पाँव बहिन के छू, अपने पापों का प्रायश्चित कर ले।

यह क्षमा करे तो क्षम्य, वरन् निर्बाध दण्ड गोली का है,
मानवता की प्रेरणा यही, अनुशासन इस टोली का है।
व्रत ठान, सदा माँ-बहिनों के चरणों पर अब यह सर होगा,
उनकी पावन छवि से अंकित मन्दिर अपना अन्तर होगा।

जो वस्तु बनी है पूजा को, वह पावनता से अर्चित हो,
मन की श्रद्धा जिह्वा पर हो, जब कोई नारी चर्चित हो।
विधि ने मन की ममता, करुणा, श्रद्धा यदि कहीं उतारी है,
तो त्याग, आग, अनुराग-मयी, यह शक्ति-स्वरूपा नारी है।"

तो यह थी उस महान् साधक के शुभ्र विचारों की धारा,
वह तेज-पुञ्ज जो कलुष-खोट का दूर कर गया अँधियारा।
उसकी अद्‌भुत गति देख-देख सब का मन मुग्ध चकित होता,
वह था—दिन रात परिश्रम कर भी किंचित नहीं थकित होता।

वह गाँव-गाँव में घूम-घूम, जा क्रान्ति जगाया करता था,
फौजी शिविरों में पहुँच, सैनिकों को भड़काया करता था।
सैनिक के साथ-साथ उसने शायर का भी दिल पाया था,
उस दमन-दौर में भी उसने विप्लव का शंख बजाया था।

घर के भेदी ने नहीं अगर उसको छल, दगा किया होता,
तो उसने भारत के घर-घर जन-जन को जगा दिया होता।
था सिंह सीखचों के अन्दर, फाँसी ही अन्तिम निर्णय था,
मरते दम तक वह था प्रसन्न, अन्तिम क्षण तक वह निर्भय था।

पूछा, "अन्तिम इच्छा क्या है ?" बोला, "प्रभु से अनुनय करना,
दिल में जो लगी, उसे कह कर फिर शान्तिपूर्वक है मरना।"
कुछ क्षण को बन्धन-मुक्त हुआ, ऊपर को देख हाथ जोड़े,
उसके मुँह से ये नपे-तुले कुछ शब्द निकल पाये थोड़े—

"प्रभु ! मैं मर-मर कर बार-बार, फिर-फिर इस धरती पर आऊँ,
तब तक—जब तक न गुलामी की हथकड़ियों को मैं तड़काऊँ।
यदि जन्म मिले नारी का तो, मैं विद्रोही सन्तान जनूँ,
जो इस धरती के दुश्मन हैं, मैं उनको सत्यानाश बनूँ।"

हो गई प्रार्थना थी पूरी, अब जीवन पूरा होना था,
धरती माता की गोदी में सर रख कर उसको सोना था।
निज मातृ-भूमि के वन्दन का नारा उसका अन्तिम स्वर था,
वह भूल गया, यश अविनश्वर, केवल शरीर ही नश्वर था।

■ ■ ■

वक्तव्य रुका तो सभा-भवन
गुञ्जित था जय-जयकारों से,
प्रतिध्वनित दिशाएँ हुईं सभी
'हो क्रान्ति अमर' के नारों से।

हो गया चित्र का अनावरण
अब होना नया प्रदर्शन है,
कुछ अमर-शहीदों के छाया—
चित्रों के पाना दर्शन है।

इस शुभ्र रजत-पट पर होगी विद्युत-प्रेरित अंकित छाया,
कर्मठ उत्साही युवकों के श्रम से ही यह अवसर आया।
यन्त्रालय में है भगतसिंह, जो करता उसका संचालन,
कितना उत्साह भरा मन में, कैसा सुगठित तेजस्वी तन।

हैं कई रात-दिन एक किये इस धुन में, इस मतवाले ने,
अपने घर के इस दीपक ने, दीपक के अमर उजाले ने।
जो बात ठान ले यह मन में, समझो वह बात हुई पूरी,
यह नहीं पास आने देता, हम कहते जिसको मजबूरी।

जो चित्र अलभ्य रहे अब तक, इसने वे सब हथियाये हैं,
प्रेरणा इसी दीवाने की जो ये दर्शक खिंच आये हैं।
यह धूल फाँकता फिरा, कभी इस घर जाकर, उस घर जाकर,
आने को सहमत किया उन्हें, मन्तव्य अनेकों समझा कर।

कैसा विचित्र व्यक्तित्व अरे! कैसा अद्भुत आकर्षण है,
निज रिपु को कुलिश-गर्जना-सा, स्वर अपनों को मधु-वर्षण है।
जिससे दो मीठी बात करे, समझो वह पानी-पानी है,
यह कितना पानीदार, यही होती सबको हैरानी है।

यह बात अगर कह दे कोई, तो क्या मजाल कोई टाले,
जो असम्भाव्य, यह उसको भी सम्भव कर दे बैठे ठाले।
इसकी आँखों के जादू से, कोई दिलवाला बच न सका,
वह खेल कौन-सा मुश्किल है जो यह मतवाला रच न सका।

इसकी आँखों में वह विद्युत, जो नहीं मचलते देर करे,
अपनों के लिए प्रकाश बने, दुश्मन को पल में ढेर करे।
जिसको अपनेपन से छू दे, समझो वह इसका अपना है,
जो कुछ भी है वह सत्य-सत्य, अपना तो केवल सपना है।

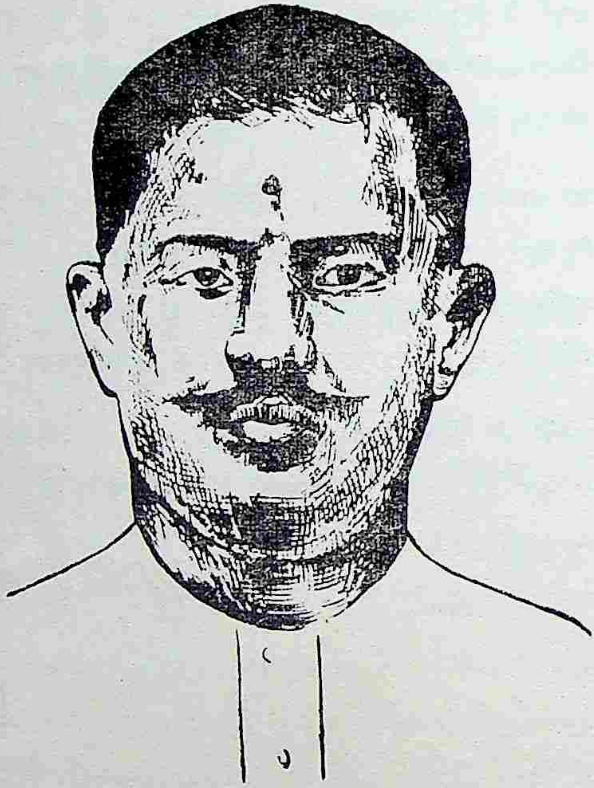
यह आज यहाँ का आयोजन, इसकी ही इच्छा का फल है,
विश्वास आज में है इसको, कल तो समझो कल ही कल है।
यह अपनों का विश्वास अडिग, औरों को अपनेपन-सा है,
अरि को घन की ज्वाला जैसा, अपनों को जीवन-घन-सा है।

इसके ही संगी साथी सब ये यहाँ काम में लगे हुए,
ये सब ही के सब, देश-भक्ति के पक्के रंग में रँगे हुए।
ये साथी इनके रामकृष्ण, हैं कुशल कार्य-कर्ता दल के,
निष्ठा के हैं ये धनी और जीवित आदर्श आत्म-बल के।

श्री धनवन्तरि, क्या बात कहें— ये कुशल खिलाड़ी हर फन के,
तूफान छिपाये अन्तर में, ये पोषक प्रबल संगठन के।
हो विषम परिस्थिति कैसी भी, ये अपना काम बना लायें,
ये क्रान्ति-संगठन की मशाल लेकर नूतन पथ दिखलायें ?

ये हैं साथी यशपाल जिन्हें है कर्म सदा आराध्य बना,
कोई भी इन्हें काम दे दो, ये नहीं करेंगे कभी मना।
कहिए—दरियाँ ढोकर लायें, कहिए—डट जाँय सफाई में,
ये अच्छा मार्ग सुझाते हैं अपने दल को कठिनाई में।

यदि भाषण देने खड़े हुए अनुभूत सत्य ही बोलेंगे,
लायेंगे तथ्य बटोर कई, अगणित रहस्य ये खोलेंगे।
यदि कोई बात अरुचिकर हो, इनसे चुप नहीं रहा जाता,
बल इन्हें बुद्धि का है, दल का अभिभावक इन्हें कहा जाता।



काकोरी-काण्ड के मुख्य सेनाधिप अमर शहीद श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल'

बिस्मिल वह क्रान्ति-दूत था जो विद्रोह जगाने आया था,
नौकर-शाही के शासन में जो आग लगाने आया था।
काकोरी का जो काण्ड हुआ, यह सब बिस्मिल की ही दम थी,
अँग्रेजी शासन से जूझा, क्या यह उसकी हिम्मत कम थी ?

जब फाँसी का आदेश सुना, तो वक्ष सिंह का फूल गया,
वह वेद-मंत्र जपते-जपते निर्भय फन्दे पर झूल गया।
ऐसे-ऐसे हैं पुत्र-रत्न भारत माता ने जन्माये,
जिनने अपने बलिदानों से भारत के गौरव चमकाए।

कर रहे व्यवस्था ध्वनि की जो, साथी एहसान इलाही हैं,
ऊपर से दिखते शान्त, किन्तु ये सजग क्रान्ति के राही हैं।
हिन्दू-मुस्लिम का भेद-भाव इनके मन में आया न कभी,
यह भेद-भाव जिसने डाला, वह मित्र इन्हें भाया न कभी।

...

चित्र-प्रदर्शन

श्री रामप्रसाद बिस्मिल

लो अब आरम्भ प्रदर्शन है, यह जन-समूह भी अकुलाता,
इस रजत पटल पर एक-एक कर चित्र सामने अब आता।
छा गया भवन में अंधकार, पट पर प्रकाश अनुशासित है,
योजना भावना की अनुकृति, इसलिए सिद्धि प्रत्याशित है।

उभरा यह जिसका चित्र, व्यक्ति वह कर्मठ और मनस्वी था,
मुख-मुद्रा ही कह देती, यह व्यक्तित्व बहुत तेजस्वी था।
यह भरा-भरा चेहरा इसका, ये काली मूँछें तनी-तनी,
ये चमकीली पैनी आंखें, ये भवें कुटिल अति घनी-घनी—

कहतीं हैं—यह महान साधक, अन्तिम क्षण तक बलिदानी था,
यह क्रांति पंथ का अनुगामी, जीवन इसका तूफानी था।
मुश्किल जिसको न काम कोई, जो मुश्किल को खुद मुश्किल था,
कुल का सपूत दृढ़ देश-भक्त, वह यही शेर-दिल बिस्मिल था।

बिस्मिल वह क्रान्ति-दूत था, जो विद्रोह जगाने आया था,
नौकरशाही के शासन में, वह आग लगाने आया था।
काकोरी का जो काण्ड हुआ, यह सब बिस्मिल की ही दम थी,
अंग्रेजी शासन से जूझा, क्या यह उसकी हिम्मत कम थी।



काकोरी-काण्ड का अमर शहीद वीर अशफाकउल्ला खाँ

यह चित्र आपके सम्मुख जो, यह भी साथी था बिस्मिल का,
सुन्दर विशाल क्या डीलडौल, अशफाक साफ अपने दिल का।
यह गौर-वर्ण उन्नत ललाट, पर्वत-सा तना हुआ सीना,
मरना भी इसने सिखलाया, यह सिखा गया हम को जीना।

फाँसी से बचने का इसने किंचित भी नहीं उपाय किया,
जब लोगों ने फुसलाया तो क्या अच्छा उत्तर उन्हें दिया—
"भारत-माता हित फाँसी पर मुस्लिम को भी चढ़ जाने दो,
मैं भी तो उसका बेटा हूँ, मुझको भी पुण्य कमाने दो।"

जब फाँसी का आदेश सुना तो वक्ष सिंह का फूल गया,
वह वेद-मंत्र जपते-जपते, निर्मम फन्दे पर झूल गया।
ऐसे-ऐसे हैं पुत्र-रत्न भारत-माता ने जन्माये,
जिनने अपने बलिदानों से भारत के गौरव चमकाए।

. . .

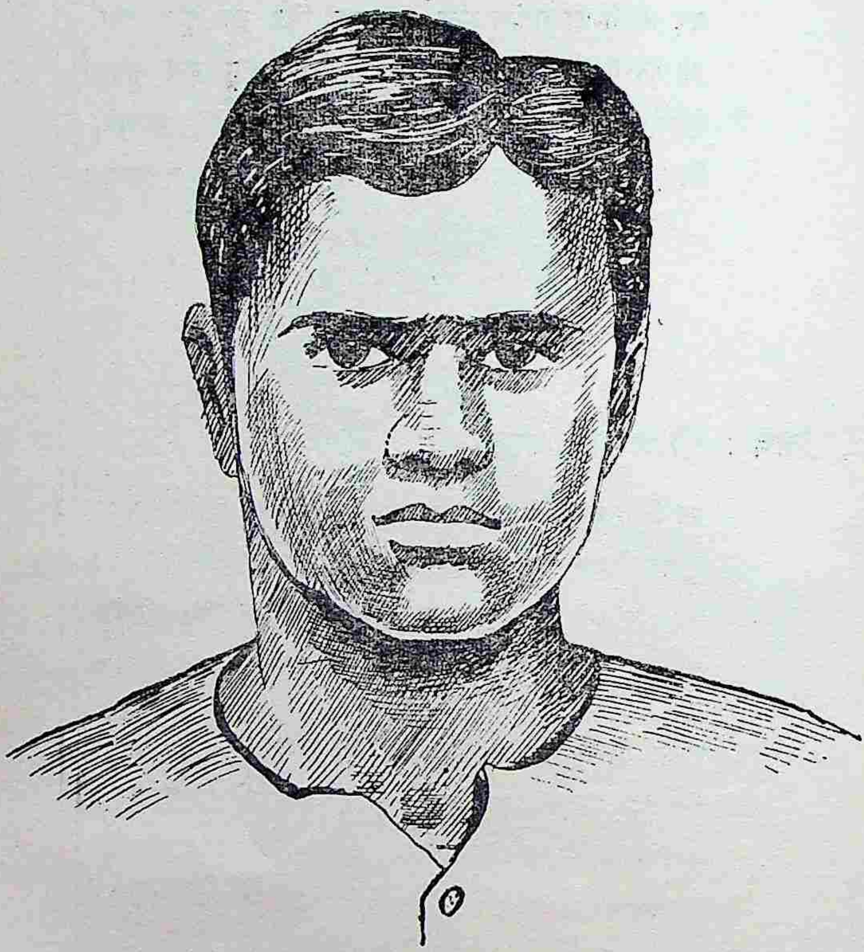
चित्र : श्री अशफाकउल्ला खाँ

यह चित्र आपके सम्मुख जो, यह भी साथी था बिस्मिल का,
सुन्दर विशाल क्या डील-डौल, अशफाक साफ अपने दिलका।
यह गौर वर्ण, उन्नत ललाट पर्वत-सा तना हुआ सीना,
मरवा भी इसने सिखलाया, यह सिखा गया हम को जीना।

इसके पौरुष का परिचय था काकोरी में सबने पाया,
जब नहीं तिजोरी टूट सकी, तब इसने उसे आजमाया।
यह क्रुद्ध वीर घन लेकर जब उद्दण्ड तिजोरी पर झपटा,
दन-दन करके घन मार-मार, कर दिया उसे बिलकुल चपटा।

जब बन्दी हुआ—हुआ गर्वित, फाँसी भी विचलित कर न सकी,
अँग्रेज हुकूमत, भय इसके दिल में किंचित भी भर न सकी।
फाँसी से बचने का इसने किंचित भी नहीं उपाय किया,
जब लोगों ने फुसलाया तो क्या अच्छा उत्तर उन्हें दिया—

"भारत-माता हित फाँसी पर मुस्लिम को भी चढ़ जाने दो,
मैं भी तो उसका बेटा हूँ, मुझको भी पुण्य कमाने दो।"
क्या अजब शान से अपने को उसने फाँसी पर चढ़ा दिया,
फन्दे को भी संकोच हुआ, जब उसने मस्तक बढ़ा दिया।



काकोरी-काण्ड का अमर शहीद वीर राजेन्द्र लाहिड़ी

यह चित्र लाहिड़ी का जिसने हँस कर जीवन बलिदान किया,
वह इस धरती के लिये मिटा, इस धरती का सम्मान किया।
विद्या का केन्द्र बनारस ही था क्रान्ति-केन्द्र बन गया उसे,
अध्ययन-काल में ही जीवन का प्राप्त हुआ पथ नया उसे।

बलिदान-भावना लिपट गई, उसकी बे-जोड़ जवानी से,
विद्रोह भड़क बैठा उर में, गंगा के पावन पानी से।
जो मोक्ष-दान करती आई, उस नगरी ने दी चिनगारी,
बन गया बनारस का बेटा माँ के हित विकट क्रान्तिकारी।

चित्र : श्री राजेन्द्र लाहिड़ी

यह चित्र लाहिड़ी का जिसने हँसकर जीवन बलिदान किया,
वह इस धरती के लिये मिटा, इस धरती का सम्मान किया।
विद्या का केन्द्र बनारस ही था क्रान्ति-केन्द्र बन गया उसे,
अध्ययन-काल में ही जीवन का प्राप्त हुआ पथ नया उसे।

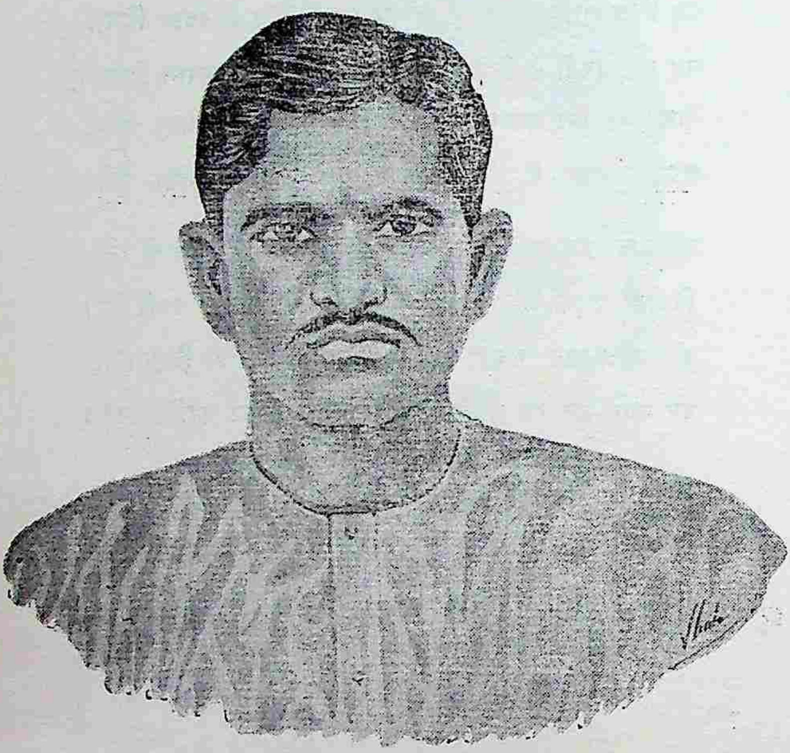
बलिदान-भावना लिपट गई उसकी बेजोड़ जवानी से,
विद्रोह भड़क बैठा उर में, गंगा के पावन पानी से।
जो मोक्ष-दान करती आई, उस नगरी ने दी चिनगारी,
बन गया बनारस का बेटा, माँ के हित विकट क्रान्तिकारी।

काकोरी की उस घटना में इसने भी फाँसी पाई है,
हो गया विदा नर वीर, किन्तु क्या अक्षय कीर्ति कमाई है।
यह वीर-प्रसू धरती अपनी, ऐसे बेटों की माता है,
जब ध्यान लाहिड़ी का आता, तो अन्तर भर-भर आता है।

चित्र : ठाकुर रोशनसिंह

अंकित व्यक्तित्व-चित्र जिसका, यह ठाकुर रोशनसिंह अमर,
काया का ही तो अन्त हुआ, है किन्तु आत्मा अविनश्वर।
जीवन के अगणित राग-रंग इसके मन में ललचा न सके,
जो इसके मन पर चढ़े रंग, वे अन्तिम क्षण तक जा न सके।

इस सिंह-पुरुष ने फाँसी का फन्दा हँसते-हँसते चूमा,
फिर हार समझ कर पहिन उसे, मस्ती के रँग में वह झूमा।
वह बता गया, भारत-माँ की है कोख न वीरों से खाली,
जलती भट्टी का ताप लिये, वीरों के शोणित की लाली।



काकोरी-काण्ड का अमर शहीद वीर रोशनसिंह

इस सिंह-पुरुष ने फाँसी का फन्दा हँसते-हँसते चूमा,
फिर हार समझ कर पहिन उसे मस्ती के रँग में वह झूमा।
वह बता गया भारत-माँ की है कोख न वीरों से खाली,
जलती भट्टी का ताप लिये, वीरों के शोणित की लाली।

अमर शहीद भाई बालमुकुन्द
और
सती रामरखी

प्रस्तुत अब चित्र जेल का यह, चित्रण बन्दी-जीवन का है,
जीवन उन्मुक्त कहाँ, वह तो बन्धन का — उत्पीड़न का है।
बन्दी इसमें कुछ देश-भक्त हैं घिरे हुए कुछ दीवाने।
न्यौछावर होने आये हैं, ये मुक्ति-शिखा पर पर्वाने।

ये अंध-खोह-सी कोठरियाँ, कब्रें जीवित इंसानों की,
अनुभूति कराई जाती है इसानों को हैवानों की।
ये लौह-सींखचे जड़े हुए, ये जंगी ताले पड़े हुए,
यम-दूतों के ये चचाजात भाई पहरे पर खड़े हुए

सिमटी-सी तंग कोठरी यह जो सम्मुख दिखलाई देती,
जैसे उदारता किसी कृपण की हो जमुहाई-सी लेती।
भाई श्री बालमुकुन्द यहाँ आकर शाही मेहमान बने,
वे लौह-सींखचों को पकड़े दिखलाई देते तने-तने

उनके ही निकट खड़ी बाहर जो खिन्न-मना-सी नारी है,
यह नव-विवाहिता भाई जी की सह-धर्मिणी बिचारी है।
इस बन्दी-गृह में यह अपने प्रियतम से मिलने आई है,
यह कमल-कली जो सूरज के दर्शन से खिलने आई है।

पर इसका सूरज तो खुद ही है अंधकार का ग्रास बना,
इसलिये कली को जीवन का मधुमास आज है त्रास बना।
है काल-कोठरी में बन्दी उसके सूरज की अरुणाई,
इसके तन की कारा में भी बन्दिनी बन गई तरुणाई।

कुछ दिन ही बीते हैं, इसके जीवन में नया वसन्त खिला,
अपनी क्षमताओं का परिचय परिणय के मिस है इसे मिला।
ताजी-ताजी दिखती अब भी शादी की मेंहदी की लाली,
उबटन की सुरभि बसी तन में वह दिखलाये क्यों कंगाली ?

गोरी कलाइयों में चुड़ले दिखते सुहाग के गुमसुम से,
है उनके मन की मौन-व्यथा छिप नहीं सकी हम से तुम से।
जब कमल-नाल मुर्झा जाये, पल्लव-दल की शोभा कैसी ?
जैसा मन होता है, मन की गति भी हो जाती है वैसी।

जब ग्रहण लगे ग्रहपति को तो फिर खिली-खिली-सी धूप कहाँ ?
दर्पण ही अंधा हो जाये तो फिर मुख देखे रूप कहाँ ?
इसलिये खिन्न है रामरखी सचमुच ही इस युग की सीता,
पति कारागृह में घुटा करे, गृह में क्या सुख ले परिणीता।

हैं लोग कहा करते—जब-तब वह इसी भाँति आ जाती थी,
निज वय से अधिक ज्ञान की वह बातें पति को समझाती थी।
उस रोज पूछ बैठी पति से—"कैसा क्या मिलता है भोजन ?"
पति बोला—"बालू-मिट्टी का होता रोटी में संयोजन।"

फिर क्या, वह भी बालू-मिट्टी आटे में नित्य मिलाती थी,
रोटियाँ बना कर उसी भाँति वह बड़े प्रेम से खाती थी।
पति के कष्टों का अनुभव ही अब उसके जीवन का क्रम था,
कल्पित न जेल-यात्रा रही, अनुभव से दूर हुआ भ्रम था।

फिर आगे कभी पूछ बैठी—"क्या मिलता यहाँ बिछावन है ?"
पति बोला—"कंबल पर सोता, आवरण वही मन भावन है।"
बस फिर क्या, वह भी मोटे-मोटे दो कंबल ले आई,
वह स्वानुभूति की नीति कंबलों पर भी उसने अपनाई।

कंबल ही उसे बिछावन था, कंबल उसका आच्छादन था,
भीषण गर्मी में भी उसका विचलित न हुआ किंचित मन था।
पति के जीवन जैसा अपने जीवन को ढाल रही थी वह,
कुल-बधू धर्म पति के व्रत का, घुल-घुल कर पाल रही थी वह।

उस दिन सुहाग का कुंकुम वह जब चली माँग में भर लेने,
जीवन का प्रिय उपचार एक, यह नित्य-नियम से कर लेने।
तो जाने क्यों उर काँप उठा, कर से वह डिबिया छूट गई,
हाथों से माथा पकड़ लिया, मानो किस्मत ही फूट गई।

भारी अपशकुन हुआ था यह, जो वह सुहाग-वंचिता हुई,
अब तक पीड़ा बिखरी-बिखरी पर वही आज संचिता हुई।
सन्देश मिल गया फाँसी का, बोली शव लेने आती हूँ,
अन्तिम दर्शन कर श्रद्धांजलि मैं उनको देने आती हूँ।

पर्वत विपत्ति का टूट पड़ा यह कितना भारी-भरकम था,
पर उससे वह विचलित न हुई, छू नहीं गया जैसे गम था।
सच है पीड़ा का चरम-बिन्दु उपचार स्वयं बन जाता है,
आती विपत्ति तो रक्षा का आधार स्वयं बन जाता है।

दुर्दिन के बादल, संकल्पों की आँधी से उड़ जाते हैं,
निश्चित संकल्पित साध्य रहे, साधन खुद ही जुड़ जाते है।
पर्वत विपत्ति का टूट पड़े, पर बाँध न संयम का टूटे,
दुख की धारा मुड़ जाती है, यदि साथ न धीरज का छूटे।

देवी के जीवन में यह जो डाइन विपत्ति आ गई नई,
पल भर में ही कर्तव्य-ज्योति उसके दृढ़ मन में चमक गई।
बिखरा कुंकुम भी उठा लिया, वह उजड़ी-उजड़ी माँग भरी,
सौन्दर्य-प्रसाधन से उसकी फिर लुटी-लुटी आभा निखरी।

वस्त्राभरणों से सज्जित हो, फिर दुलहिन बनी नवेली थी,
अंतर्पीड़ा सहचरी बनी, वह उसकी एक सहेली थी।
आँसू की झलक न आँखों में, पीड़ा उसने पी डाली थी,
सोलह शृंगार किये अपने, अब ली पूजन की थाली थी।

तुलसी-चौरे से लिपट गई, बोली—"मैया अन्तिम वर दो,
मैं जनम-जनम पाऊँ उनको, यह अभिलाषा पूरी कर दो।"
कुछ तुलसी-दल झड़ पड़े तभी, वर मिला, विनय स्वीकार हुई,
पुलकित हो पल भर में ही वह, अब मिलन हेतु तैयार हुई।

चौरे से वह टिक गई वहीं, बैठी ध्यानावस्थित होकर,
वह जनम-जनम उनको पाने चल दी, इस जीवन में खोकर।
बैठी की बैठी वह वैसी की वैसी ही रह गई वहाँ,
प्राणों का पंछी चला गया, तन का पिंजड़ा रह गया यहाँ।

थे उधर जेल-अधिकारी-गण, वह शव देने को अकुलाये,
कुछ लोग पुनः दौड़े-दौड़े देवी के आँगन में आये।
अर्चन में रत-ध्यानावस्थित वे उसे देख कर ठिठक गये,
पर वह निर्द्वन्द अवस्था लख, उभरे मन में कुछ भाव नये।

जा निकट ध्यान से देखा तो, देखा केवल तन ही तन था,
उड़ गई आत्मा घेरे से, जीवन का हुआ पलायन था।
उत्कण्ठा पिया-मिलन की थी, उसके मन में बलवती हुई,
निज देश-भक्त पति के सँग-सँग वह पति-परायण सती हुई।

उस लोक शीघ्र जा पहुँची वह, चिर-मिलन प्यार ही प्यार जहाँ,
अत्याचारी के नहीं पहुँच सकते हैं अत्याचार जहाँ।
बन्दी-गृह की यातना नहीं, अंधा है जहाँ विधान नहीं,
है मुक्ति, मुक्त सर्वत्र जहाँ परवशता नर्क समान नहीं।

बलिदानी पति के साथ-साथ उसने अपना बलिदान किया,
उसने सतीत्व का परिचय दे, निज संस्कृति का सम्मान किया।
कर दिया सिद्ध उसने, महान होती भारत की नारी है,
इसकी महानता पर जग की सारी संपत्ति बलिहारी है।

क्यों हृदय न यह स्वीकार करे, नारी गौरव-गरिमा नर की,
मन-वचन कर्म से यह सदेह छाया है उसके अन्तर की।
जग के मरुथल में जीवन की नारी ज्वलंत अभिलाषा है,
ममता की, त्याग-तपस्या की, यह श्रद्धा की परिभाषा है।

कल्पना पहुँचती नहीं जहाँ, गति इसकी वह ऊँचाई है,
सागर भी जहाँ समाहित हों, उर में इतनी गहराई है।
विधि के रचना-कौशल की यह उज्ज्वलतम पावन झाँकी है,
उर के सम्बन्धों की कीमत जग में नारी ने आँकी है।

था चित्र-वृत्त का अन्त हुआ, करुणा-प्लावित नारी-नर थे,
जो श्रद्धा उर में लहराती, उससे विगलित उनके स्वर थे।
पट से था चित्र अदृश्य हुआ, परिचय-वक्तव्य समाप्त हुआ,
आत्मोत्सर्ग का भाव प्रबल, जन-जन के मन में व्याप्त हुआ।

भावना अभीप्सित थी जो वह दिखलाई देती जन-जन में,
अद्भुत उमंग, बलिदानों की थी गूँज समाई मन-मन में।
यह आयोजन था कंकड़ जो डाला जन-हृदय सरोवर में,
जो लहर उठी बहु-मुखी हुई, फैलती गई वह घर-घर में।

कैसी विचित्र थी बात, अँधेरे में था उन्हें प्रकाश मिला,
अपनी क्षमताओं का उनको आभास और विश्वास मिला।
सच कहा—गुदड़ियों में अमूल्य, हैं हीरे लाल मिला करते,
काँटों में पलते हैं गुलाब, कीचड़ में कमल खिला करते।

पिता ने मारा
बन गया सितारा

"तुम किस दुनिया में रहते, कुछ पता नहीं चलता है,
भगत तुम्हारी दशा देखकर मेरा जी जलता है।
काम हाथ में लिया, उसे तुम अच्छी तरह सम्हालो,
आवारा बन घर की इज्जत मत इस तरह उछालो।"

"पापा! यह व्यापार दूध का, मुझको नहीं सुहाता,
जब सागर विप्लवी खून का, इस तन में लहराता।
वैसे अपने सभी काम, मैं करता अच्छे मन से,
किन्तु क्रान्ति यह छूट नहीं सकती मेरे जीवन से।"

"क्रान्ति-क्रान्ति की बातें कर मुझको चले बनाने,
छोटा बालक समझ, चले तुम मुझको क्रान्ति सिखाने।
मुझे पता, तुम पर क्या चक्कर, क्या है हाल तुम्हारा,
नाम क्रान्ति का लेकर, तुम बनते जाते आवारा।"

"घर बैठे-बैठे तो पापा क्रान्ति नहीं सम्भव है,
घर-घर अलख जगाना पड़ता, यदि अभीष्ट विप्लव है।
आवारापन कभी-कभी शुभ-फलदायी होता है,
वह क्या करके दिखलाये जो पड़ा-पड़ा सोता है।"

"देख रहा हूँ, अनुदिन तुम उद्दण्ड हुए जाते हो,
मुझे सिखाने बैठे, दुनिया मुझको दिखलाते हो।
क्रान्ति-क्रान्ति कह, किसी बुरे चक्कर में फँस जाओगे,
चाहोगे, तो भी कुचक्र से छूट नहीं पायोगे।

कुछ गुण्डे निज स्वार्थ-सिद्धि हित, हैं डाके डलवाते,
अपना उल्लू सीधा करने, क्रान्ति-क्रान्ति चिल्लाते।
तुम जैसे अन्धे, उनके फन्दे में फँस जाते हैं,
क्या होगा परिणाम, इसे वे जान नहीं पाते हैं।"

"अपना भला-बुरा तो पापा! पशु भी खूब समझते,
फिर हम तो मानव हैं, फन्दों में कब व्यर्थ उलझते।
इस पर भी, मैं तो अपने पुरखों के पथ पर चलता,
है आश्चर्य, आपका फिर भी पापा! क्यों जी जलता?"

"बन्द करो अपनी जबान, अब तुम बढ़ते ही जाते,
मुँहजोरी कर रहे बाप से, नहीं तनिक शरमाते।
एक शब्द भी बोले आगे, खाल खींच लूँगा मैं,
मुंहजोरी करने का अच्छा सबक तुम्हें दूँगा मैं।"

"आप भले ही खाल खींच लें, पर मैं चुप न रहूँगा,
अगर बात है सत्य, उसे मैं सौ-सौ बार कहूँगा।
सत्य प्रकट होकर ही रहता, वह न कभी रुकता है,
नहीं मौत की धमकी से भी वीर कभी झुकता है।"

* * *

और सत्य ही पिता छड़ी ले टूट पड़े बेटे पर,
तड़-तड़-तड़, दो-चार पीठ पर जड़ दीं छड़ियाँ कस कर।
छड़ी टूट कर गिरी न जब तक, कस कर हाथ जमाये,
क्रोध भड़कता गया और वे यह कह कर चिल्लाये—

"आवारा हो, गली-गली तुम फिरते मारे-मारे,
दो कौड़ी की अकल नहीं है, बनने चले सितारे।
अगर न मैं होता, तुम बाजारों में धक्के खाते,
मैं हूँ, जिसके कारण तुम लोगों में पूछे जाते।"

भगत न विचलित हुआ मार से, किंचित बुरा न माना,
रोष और आवेश पी गया, पुत्र-धर्म पहचाना।
चरण पिता के छुए और श्रद्धा से शीष झुकाया,
धीरे-धीरे उसने अपना यों मन्तव्य सुनाया—

"पापा ! दण्ड दिया जो मुझको, यह वरदान मुझे है,
पिता-पुत्र के सम्बन्धों का अच्छा ज्ञान मुझे है।
चाहें जितना मारें, यह सम्बन्ध नहीं छूटेगा,
टूट गई यह छड़ी, नहीं पर मेरा दिल टूटेगा।

सच है, आज आपके कारण मैं पूछा जाता हूँ,
सम्मानित हैं आप, लाभ इसका ही मैं पाता हूँ।
पर विश्वास रखें पापा ! ऐसे भी दिन आयेंगे,
लेकर मेरा नाम, आप जग में पूछे जायेंगे।"

...

और शब्द वे सिंह के, शोलों के उपमान,
सुनते ही अनुदिन रहे, वर्तमान के कान।

वर्तमान से ले उड़ा, फिर ये शब्द भविष्य,
थी भविष्य की याचना, हों ये प्राण हविष्य।

संकल्पों की पूर्ति हित, सारे बन्धन तोड़,
सदा-सदा को चल दिया, भगतसिंह घर छोड़।

कानपुर में क्रान्ति-सूत्रों का सङ्गठन

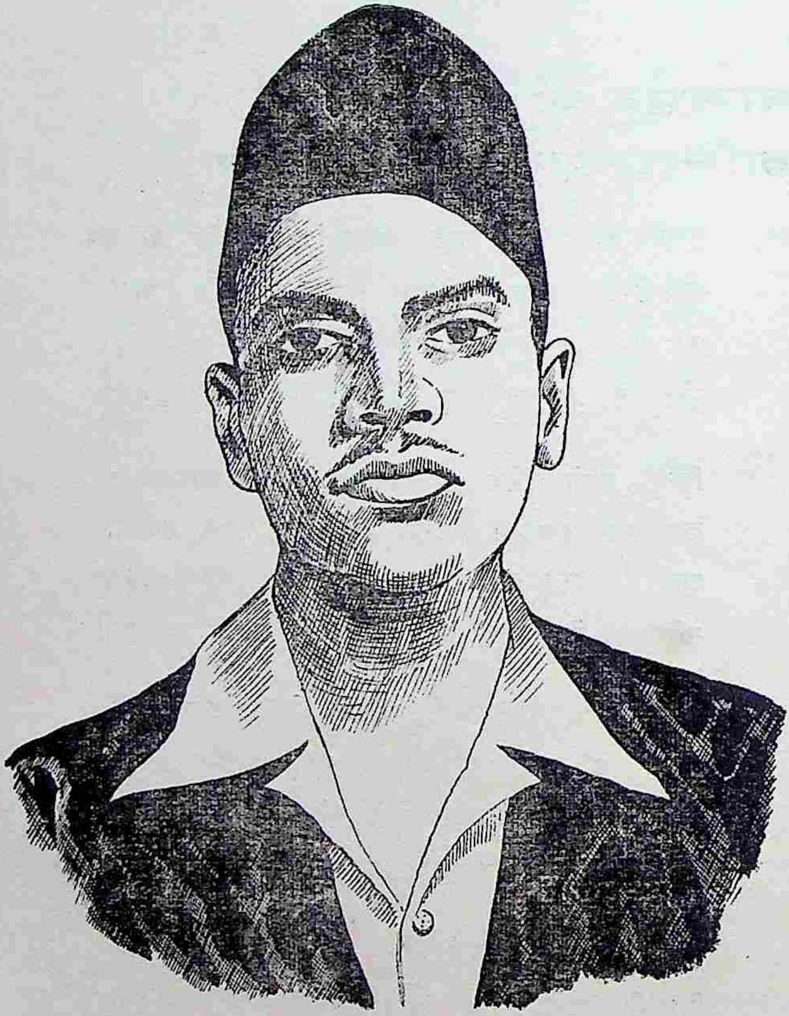
पूज्य तुलसी ने कहा—सम्बन्ध उससे तोड़ दो सब
राम-वैदेही सदृश आराध्य जिसको हों न प्यारे,
जो बने शुभ कर्म में बाधक, उन्हें अपना कहें क्यों ?
स्नेह के सम्बन्ध कटु वे, शत्रु वे प्रिय-जन हमारे।

किन्तु अपने सिंह का आराध्य तो था देश अपना
देश का स्वातंत्र्य, उसने लक्ष्य था अपना बनाया,
इसलिये घर-द्वार के सम्बन्ध उसने तोड़ डाले
मुक्ति के हित स्नेह का बन्धन नहीं उसको सुहाया।

पूर्व-परिचित सूत्र उसके, क्रान्ति के थे कानपुर में
जोड़ने वे सूत्र, जा पहुँचा वहाँ सरदार अपना,
क्रान्ति के पंथी उसे अपने सगे अब लग रहे थे
उन सभी पर मानता था वह सुदृढ़ अधिकार अपना।

शुष्कता में लहलहाई फिर सतेज हरीतिमा थी
विप्लवी आवेग का था फिर हुआ संचार भारी,
मातृ-भू की अर्चना हित रक्त का सब अर्घ्य देने
विकल नित-प्रति हो रहे थे मातृ-मन्दिर के पुजारी।

विप्लवी इस संगठन में अब नया ही खून आया
अब नये उत्साह का सागर तरंगित हो रहा था,
अब नये संकल्प उद्वेलित हुए अति वेग से थे
क्षुब्ध था तूफान, जो अब तक हृदय में सो रहा था।



वीर-भूमि महाराष्ट्र के सिंह-सपूत, अमर-शहीद श्री शिवराम राजगुरु

दिख रहे ये मल्ल से जो, कसरती जिनका बदन है,
राजगुरु हैं, ये शिवा की भूमि के उज्ज्वल सितारे।
छोड़ बचपन में सभी घर-द्वार अपने बन्धु-बांधव
ये भटकते अध्ययन के हेतु काशी जी पधारे।

संस्कृत के श्लोक कब तक घोंटते रहते वहाँ ये,
उठ रहीं जब क्रान्ति की थीं भावनाएँ क्षुब्ध उर में।
इस लिए सब पोथियां—सब ग्रन्थ गंगा में बहा कर
जम गये श्रीमान विप्लव के नगर ये कानपुर में।

मुक्ति सेना के सबल सैनिक नहीं निस्पन्द थे अब
कर दिखाने के लिये कुछ, खून उनका खौलता था,
लक्ष्य था—साम्राज्यशाही का पतन अपनी धरा से
सिद्धि के हित शक्ति हर बलवीर अपनी तौलता था।

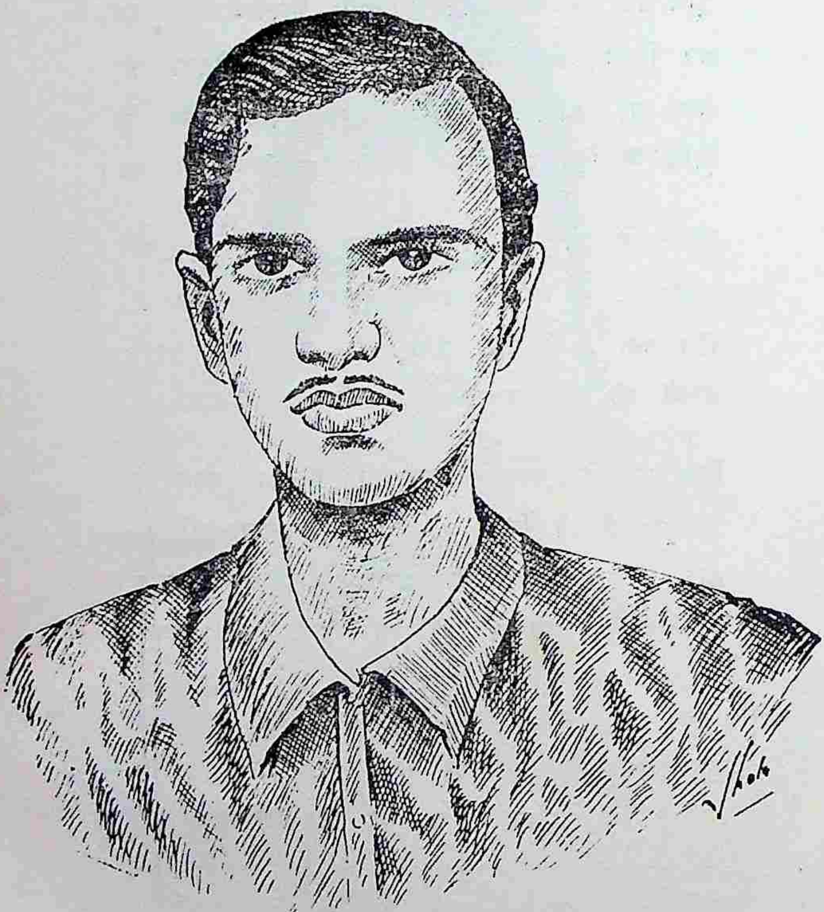
संगठन में जो नये सैनिक सबल भरती हुए अब
आइए ! मैं आपका उनसे तनिक परिचय करा दूँ,
कौन क्या है ? कौन कैसा, और कैसे भाव उर में
जानने को आप उत्सुक हैं, सभी बातें बता दूँ।

दिख रहे ये मल्ल-से, कसरती जिनका वदन है
राजगुरु हैं, ये शिवा की भूमि के उज्ज्वल सितारे,
छोड़ बचपन में सभी घर-द्वार अपने बन्धु-बान्धव
ये भटकते अध्ययन के हेतु काशी जी पधारे।

संस्कृत के श्लोक कब तक घोंटते रहते वहाँ ये
उठ रहीं जब क्रान्ति की थीं भावनायें क्षुब्ध उर में,
इसलिये सब पोथियाँ—सब ग्रन्थ गंगा में बहा कर
जम गये श्रीमान विप्लव के नगर ये कानपुर में।

मौन जिनकी साधना, आराधना निज देश की है
देह कुन्दन-सी चमकती, नाम कुन्दनलाल इनका,
देश-धरती के लिये सर्वस्व ये भी छोड़ आये
और दीवाने-वतन ये बन गये, यह हाल इनका।

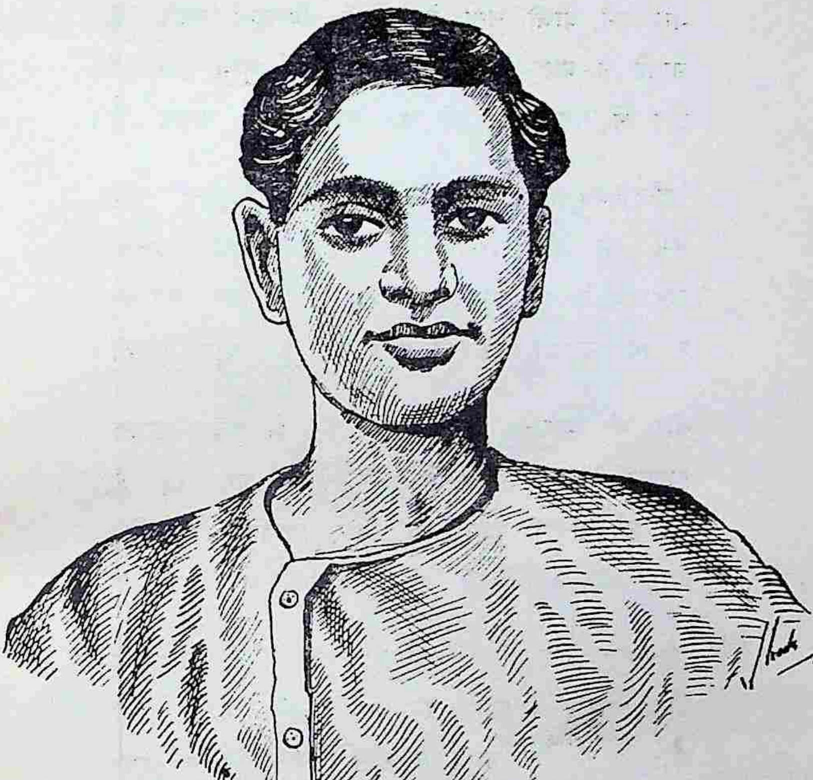
कल्पना के लोक में विचरण कभी करते नहीं ये
कर्म का जो क्षेत्र, ये उस क्षेत्र के कर्मठ बिहारी,
बात के हैं ये धनी, विश्वास निज दल के सुदृढ़ ये
ये प्रदर्शन के नहीं, कर्तव्य के सच्चे पुजारी।



केन्द्रीय-क्रान्तिकारी-समिति के कर्मठ सदस्य श्री कुन्दनलाल

मौन जिनकी साधना, आराधना निज देश की है
देह कुन्दन-सो चमकती, नाम कुन्दनलाल इनका,
देश-धरती के लिये सर्वस्व ये भी छोड़ आये
और दीवाने-वतन ये बन गये, यह हाल इनका।

कल्पना के लोक में विचरण कभी करते नहीं ये
कर्म का जो क्षेत्र, ये उस क्षेत्र के कर्मठ बिहारी,
बात के हैं ये धनी, विश्वास निज दल के सुदृढ़ ये
ये प्रदर्शन के नहीं, कर्तव्य के सच्चे पुजारी।



महान् क्रान्तिकारी श्री सुरेन्द्र पाण्डे

क्रान्ति-दल की सिद्धि के साधक सपूत सुरेन्द्र पाण्डे
कर्म की ही प्रेरणा देता सदा उत्साह इनको,
राष्ट्र हो अपना सबल, स्वातंत्र्य के पथ पर चले वह
है यही उद्देश्य जिसकी पूर्ति की है चाह इनको।

श्रौर ये हैं शुक्ल शालिगराम जो कर्मठ सिपाही
जान की बाजी लगा देना इन्हें बिलकुल सरल है,
मानते हैं बात नेता की किसी भी मूल्य पर ये
ठान लें संकल्प ये, तो वह सदा होता श्रटल है।

क्रान्ति दल की सिद्धि के साधक सपूत सुरेन्द्र पांडे
कर्म की ही प्रेरणा देता सदा उत्साह इनको,
राष्ट्र हो श्रपना सबल, स्वातंत्र्य के पथ पर चले वह
है यही उद्देश्य, जिसकी पूर्ति की है चाह इनको।

श्रौर भी श्रन्यान्य नेता, शक्ति के जो सबल साधक
कानपुर में क्रान्ति का दृढ़ संगठन ये कर रहे हैं,
कर रहे तैयार युवकों को समर स्वातंत्र्य के हित
त्याग की, उत्सर्ग की दृढ़ भावनाएँ भर रहे हैं।

पार-दर्शी दृष्टि इनकी, जा पहुँचती है हृदय में
कौन कैसा, भावनाएँ वह सभी की झाँक लेती,
मुक्ति के भीषण समर में कौन कितना साथ देगा
दृष्टि इनकी साधना के मूल्य को है श्राँक लेती।

विजय बाबू, दत्त श्रौर कपूर, शिव, श्राजाद, सब ही
हो गये ये पूर्ण सहमत सिंह के प्रस्ताव से हैं,
क्रान्ति का दृढ़ संगठन, श्रब देश-व्यापी हम बनाएँ
हो गये सहमत सभी सरदार के इस भाव से हैं।

क्रान्ति का दृढ़ संगठन, श्रब देश के हर प्रान्त में हो
श्रौर हों सम्बद्ध सब की शक्तियाँ मिल कर परस्पर,
एक कोने से उठे श्रावाज यदि उत्सर्ग की तो
साथ देने दूसरे कोने रहें कर्तव्य तत्पर।



अमर शहीद शालिगराम शुक्ल

श्री शालिगराम शुक्ल में कर्मठ और आज्ञाकारी सैनिक के सभी गुण थे। अपने नेता के आदेशों का पालन करते हुए आपने कानपुर में पुलिस की गोली के शिकार होकर अमर-पद प्राप्त किया।

यदि यहाँ या वहाँ हमने कर लिये थोड़े धड़ाके
आसुरी साम्राज्य की, तो नींव हिल सकती नहीं है,
शक्तियाँ अपनी नहीं यदि संगठित हम कर सके तो
बात यह निश्चित, हमें भी मुक्ति मिल सकती नहीं है।

अतः अपनी योजना को कार्य में परिणत करें हम
पूर्ति हो उद्देश्य की, इसके लिये ही अब पहल हो,
क्रान्ति के दृढ़ केन्द्र से हो शक्ति संचालित हमारी
देश-व्यापी योजना यह क्रान्ति की अपनी सफल हो।

यह दिल्ली है

दिल्ली, नगरी ऐश्वर्य और वैभव की यह
अपने विशाल भारत की यही राजधानी,
दिल्ली, इसके राजसी ठाट का क्या कहना
बम्बई और कलकत्ता भी भरते पानी।

यह दिल्ली, जो युग-युग से अपने अंचल में
गौरवशाली भारत का है इतिहास लिये,
दिल्ली, जिसका पत्थर-पत्थर इतिहास स्वयं
दिल्ली, जो अपनी संस्कृति का विन्यास लिये।

रंगीन और मादक सपनों की नगरी यह
साकार रूप यह वैभव के अरमानों की,
दिल्ली, नगरी यह यौवन के दीवानों की
दिल्ली. नगरी मतवालों की—मर्दानों की।

दिल्ली, जिसके अंचल में छिपा महाभारत
यह दिल्ली, जो अवशेष विकट चौहानी की,
यह दिल्ली, जिसका मुगलों ने शृंगार किया
दिल्ली, यह गाथा भारत की कुर्बानी की।

महकी गुलाब की सुरभि पसीने में जिसके
दिल्ली, जिसके शोणित में रही रवानी है,
जब कभी किसी ने इस पर बुरी नजर डाली
तो भड़क उठी इसकी बेदाग जवानी है।

दिल्ली, जिसने दिन सभी तरह के देखे हैं
ऐश्वर्य प्रवाहित होते जिसने देखा है,
दिल्ली, जिसकी सड़कों पर मानव रक्त बहा
शोणित से अपयश धोते जिसने देखा है।

जम गया फिरंगी शासन जब इस दिल्ली में
इसने उर से भीषण तूफान उठाये हैं,
आजादी की बलि-वेदी पर बनकर हविष्य
इसके बेटों ने अपने शीष कटाये हैं।

यह दिल्ली जब मचली थी सन सत्तावन में
साम्राज्यवाद को इसने कफन उढ़ाया था,
तब लाल किले पर अपना झण्डा लहराने
इसके बेटों ने अपना रक्त चढ़ाया था।

ललकार उठा था वृद्ध सिंह तब शाह जफर
"तलवार हिन्द की अब लन्दन तक जायेगी,
जमकर रहता है खून हिन्दियों का न कभी
तलवार हमारी इसकी याद दिलायेगी।"

सचमुच ही अपना कथन सिद्ध कर दिखलाया
आतंक बन गया था गोरों को शाह जफर
जब उसकी वृद्ध नसों में बिजली दौड़ पड़ी
तो लगा बरसने अँग्रेजों पर विकट कहर।

दुर्भाग्य! भाग्य ने जब उसके पलटा खाया
भीषण विपत्ति भी उसे न विचलित कर पाई,
अपने बेटों की मौत उसे स्वीकार हुई
पर बात सन्धि की जिह्वा पर न कभी आई।

दिल्ली की यह बलिदानी पावन परम्परा
क्यों नहीं गर्व से अपनाते दिल्ली वाले,
वे रहे जूझते सदा फिरंगी शासन से
झेलते रहे सीनों पर वे बर्छी-भाले।

कैसे रह सकते थे दिल्ली के दीवाने
अँग्रेज हुकूमत अपनी जड़ें जमाये फिर,
कैसे सहते वे, यह अत्याचारी शासन
सम्मान देश का रौंद-रौंद इठलाये फिर।

इसलिए प्रतिज्ञा फिर सबने यह दुहराई
इस अत्याचारी शासन को दफनाना है,
हत्यारों से समझौते होंगे सभी व्यर्थ
हिंसक के प्रति, प्रति-हिंसा ही अपनाना है।

क्रांतिकारियों का केन्द्रीय-संगठन

संकल्प यही जलता दिखलाई देता है
जो जमे हुए, इन दीवानों के अन्तर में,
जो क्रान्ति-वीर हमको बैठे दिख रहे यहाँ
फीरोजशाह के जीर्ण किले के खण्डहर में।

संगठन क्रान्ति का केन्द्रीय विकसित करने
भारत के कोने-कोने से ये आये हैं,
साम्राज्यवाद को जला भस्म कर देने ये
अरमानों के जलते अंगारे लाये हैं।

आमन्त्रित थे जितने सदस्य, आये सब ही
कारणवश नर-नाहर आजाद नहीं आया,
बहुमत का निर्णय मान्य मुझे होगा दिल से
सन्देश समिति को उसने अपना भिजवाया।

लो, उद्बोधन कर उठे आज के संयोजक
विजयकुमार सिन्हा—यह हम सब का सौभाग्य यहाँ जो एकत्रित,
अब नई नीति का निर्धारण करना हमको
अब केन्द्रीय-संगठन योजना हो चर्चित।

सबसे महत्व की बात यही, वह जा सकता
आतंकवाद की नीति न जिसे अभीप्सित है,
अन्यथा भंग यदि गोपनीयता की दल की
होगा वह गोली का शिकार, यह निश्चित है।

प्रस्ताव आप जो भी चाहें रख सकते हैं
अनुमोदन या विरोध जो भी हो, हो खुल कर।
मतभेद व्यक्त करने में हो संकोच नहीं
जो भी निर्णय होना, वह होगा मिल-जुल कर।

भगतसिंह—
प्रस्ताव कर रहा प्रस्तुत मैं अपना विनम्र
हो प्रजातन्त्र सेना का फिर से नामकरण,
यह शब्द जुड़े इसमें 'समाजवादी' पहले
यह करे हमारी रीति-नीति का अलंकरण।

इसके हित जो मैं तर्क दे रहा, वह यह है
रचना समाजवादी ही अपना ध्येय रहे,
है हमें तोड़ना वर्ग-भेद की दीवारें
समता समानता अपना सदा अजेय रहे।

जब होगा अपना शासन, यही नीति होगी
शासन में सारी जनता हाथ बँटायेगी,
अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा वह
अपनी शुभ-सम्मति शासन तक पहुँचायेगी।

फणीन्द्र घोष—
प्रस्ताव हुआ प्रस्तुत, इससे विरोध मुझको
दल करे नाम परिवर्तित, यह क्यों आवश्यक ?
जो नाम पुराना, वही चले, सब को प्रिय है
वह नाम हमारे मनोभाव का है ज्ञापक।

कुन्दनलाल—
यह रूढ़िवाद की गन्ध नहीं शोभित हमको
क्यों नहीं छूटती हमसे लीक पुरातन की,
क्यों हमें अन्ध-श्रद्धा अब भी पथ-भ्रष्ट करे ?
क्यों नहीं छूटती जड़ता है अपने मन की ?

भगतसिंह— यह एक तर्क हो मेरा और विचारणीय
यदि जनता का सहयोग नहीं हम पायेंगे,
कितने दिन यह आतंकवाद चल पायेगा ?
हम सब कितने दिन अपना ढोल बजायेंगे ?

इसलिये हमें विश्वास दिलाना जनता को
हम उसके हैं, उसके ही सदा रहेंगे हम,
जूझेंगे हम जीवन भर जनता के हित ही
यदि कष्ट मिलें भीषण, तो उन्हें सहेंगे हम।

हम प्राप्त कर सके जनता का विश्वास अगर
तो समझो यह, निश्चित ही जीत हमारी है,
जन-शक्ति प्रबल जग में सदैव होती आई
दानवी-शक्ति केवल जन-बल से हारी है।

फणीन्द्र घोष— इन कामों में जनता क्यों हस्तक्षेप करे ?
विप्लव क्या सम्भव हो सकता है जन-मत से ?
जनता को तो हम जैसे चाहें, हाँकेंगे
वह भेड़-चाल चलती है अपनी आदत से।

कुन्दनलाल— जन-बल के प्रति आक्षेप नहीं यह उचित मित्र
सहयोग हमें जनता का अति आवश्यक है,
हम तो केवल हैं हाथ-पैर भर जनता के
सब साधन-संकल्पों की जनता साधक है।

ब्रह्मदत्त— विश्वास दिला सकते हम कैसे जनता को ?
हम लोगों से जनता खुद ही कतराती है,
वह दूर भागती हम से, हौआ समझ हमें
हम लोगों से जनता बेहद घबराती है।

भगतसिंह— मैं इसीलिये कहता, हम उसका दिल जीतें
रखना होगा अपना पावन आचरण हमें,
व्यवहार हमारा जनता का विश्वास बने
सहयोग सदा जनता का करना वरण हमें।

आतंकवाद ही केवल अपना लक्ष्य नहीं
आतंकवाद तो केवल अपना साधन है,
इस साधन से अर्जित करना है मुक्ति हमें
जो साध्य हमारा, वह जनता का शासन है।

शासन, जिसमें शोषित-शोषक का वर्ग न हो
वह शासन जिसमें कोई भूखा सो न सके,
इस धरती पर हम को शासन लाना, जिसमें
श्रम की साँसों पर पूँजी हावी हो न सके।

जो स्वेद बहा, धरती से सोना उपजायें
उस सोने में हो उनकी भी साझीदारी,
उन लोगों के बच्चे भूखे-नंगे न रहें
उन लोगों को अपनी साँसें न लगें भारी।

ब्रह्मदत्त— इसका मतलब तो यह दिखता, इस धरती पर
तुम चाह रहे हो, साम्यवाद को ले आना,
जो साम्यवाद इस धरती के अनुकूल नहीं
इसको लाकर हमको न पड़े फिर पछताना।

भगतसिंह— मैं नहीं किसी भी वाद-वाद के चक्कर में
हो नाम-करण कुछ भी, हमको क्या करना है ?
समृद्धि हमें केवल अभीष्ट है जनता की
जनता को जीवित रखने, हम को मरना है।

निश्चित ही है, या तो हम जूझ मरेंगे सब
या फिर हम फाँसी पर लटकाये जायेंगे,
यदि मिली हमें यह मौत, सफल जीवन समझो
जो मर कर भी हम काम किसी के आयेंगे।

इस भाँति मर सका अगर एक भी हम में से
तो कोटि-कोटि जन को वह जाग्रत कर देगा,
साम्राज्यवाद को खा कर ही दम लेगी जो
बलिदान हमारा, ऐसी ज्वाला भर देगा।

इसलिये निवेदन, आग्रह, यह सब कुछ मेरा
अपने समाज के हित ही हम सब जियें-मरें,
उद्देश्य रहे अपना समाजवादी रचना
हम वाद-वाद की चिन्ता बिलकुल नहीं करें।

यदि पिता पेट भरता अपने घर में सबका
क्या उसे लगें कहने हम सभी साम्यवादी,
जाने क्यों अपनी कुछ विशिष्ट संतुष्टि हेतु
हो गये नाम कुछ रख देने के हम आदी।

इसलिये निवेदन फिर मेरा यह सानुरोध
हो प्रजातन्त्र-सेना अपनी समाजवादी,
यह परिवर्तन स्वीकार हर्ष से करें सभी
समझें न, नीति जा रही शक्ति से यह लादी।

सभी सदस्य— स्वीकार हमें ! स्वीकार हमें ! यह संशोधन
उद्देश्य रहेगा अब समाजवादी, दल का,
अपने समाज के दृढ़ विश्वास बनेंगे हम
शासन परिचय पायेगा अब अपने बल का।

विजयकुमार सिन्हा—हम हर्षित हैं, शुभ संशोधन स्वीकार हुआ
प्रस्ताव और भी नए-नए आमंत्रित हैं,
प्रस्ताव सर्व-सम्मति से ही स्वीकार करें
खुल कर दें अपने तर्क, न भाव नियंत्रित हैं।

मनमोहन बैनर्जी— हम हुए दीक्षित सभी, क्रान्तिकारी दल में
इसलिए धर्म के अब हम शिथिल करें बन्धन,
यह क्रान्ति स्वयं ही अब हमको नया धर्म
इसलिए और बन्धन से मुक्त रहे जीवन।

मतभेदों का कारण बन सकता धर्म हमें
यह ऊँच-नीच के भेद हृदय में भर सकता,
इन भावों से यदि हमको मुक्ति न मिल पाई
तो काम भला फिर अपना दल क्या कर सकता ?

इसलिए हमें कम से कम यह आवश्यक है
हम धर्म-चिन्ह धारण न करें कोई तन पर,
इस धरती के बेटे सब भाई-भाई हैं
दुर्भाव नहीं आने दें हम कोई मन पर।

फणीन्द्र घोष— हम धर्म-चिन्ह धारण न करें, यह प्रश्न जटिल
दें भगतसिंह इस जटिल प्रश्न का अब उत्तर,
दाढ़ी उनको ही मुड़वानी होगी अपनी
कटवाने होंगे केश उन्हें अपने प्रियतर।

भगतसिंह— अनुमान आपका बिलकुल ही असत्य प्रियवर !
क्या केश, कटा सकता हूँ मैं अपना मस्तक,
दाढ़ी क्या, अपनी इच्छायें सब मुड़वा दूं
यदि मातृभूमि के हित हो यह सब आवश्यक।

अब धर्म न कोई अन्य हमारे दल का है
है मातृ-भूमि की मुक्ति धर्म केवल अपना,
इसके हित हम सर्वस्व त्याग कर सकते हैं
संकल्पों की है पूर्ति मर्म केवल अपना।

इसलिए मान्य हम यह सुन्दर प्रस्ताव करें
अपने पथ में अब नहीं धर्म आड़े आये,
कर्तव्य हमारा मातृ-भूमि के प्रति है जो
अपने इस दल का वही धर्म अब कहलाये।

शिव वर्मा— अस्तित्व धर्म का जो मैंने समझा यह है
संकल्पों को बल देकर हमें उठाये वह,
पथ विचलित हों हम, तो वह हमें सचेत करे
यदि भूलें-भटकें हम, तो मार्ग दिखाए वह।

यदि धर्म स्वयं कर्तव्यों की इति बन जाए
तो धर्म हमें ऐसा कदापि स्वीकार नहीं,
शुचि कर्तव्यों की पूर्ति हेतु जब हम दृढ़ हैं
तो सह्य हमें पथ में कोई दीवार नहीं।

इसलिए समर्थन मेरा भी प्रस्ताव हेतु
हम धर्म-चिन्ह धारण न करें अपने तन पर,
इस धरती के बेटे हम भाई-भाई हैं
दुर्भाव नहीं आने दें हम कोई मन पर।

सभी सदस्य— हम सहमत हैं ! हम सहमत हैं ! प्रस्ताव मान्य
अब धर्म हमारा है धरती की आजादी,
अब जन-जन का उत्थान धर्म होगा अपना
अब धर्म हमारा अन्यायों की बर्बादी।

विजयकुमार सिन्हा—प्रस्ताव बहुत ही शुभ हमने स्वीकार किया
करने विचार, प्रस्ताव और भी आयें अब,
जो आवश्यक हो उद्देश्यों की पूर्ति हेतु
आचरण-संहिता ऐसी आज बनायें हम।

सुरेन्द्र पांडे— निज कार्य-कलापों की दृढ़ता से पूर्ति हेतु
हो अपने दल की नीति एक, यह आवश्यक,
वह नीति करे सब कर्तव्यों को निर्देशित
वह नीति हमारे सब कामों में हो व्यापक।

आतंकवाद ही अपनी नीति रहे अविचल
यदि हो विरोध, गोली से उसे उछालें हम,
यदि धनाभाव बाधक हो अपनी सिद्ध हेतु।
जो धनी लोग, उन सब पर डाके डालें हम।

सुखदेव— आतंकवाद ही रहे हमारा अस्त्र, किन्तु
हमको अभीष्ट हो व्यर्थ खून-खच्चर न कभी,
हत्यारों का पद पाना हमें अभीष्ट नहीं
वह पंथ घृणा का, हमको श्रेयस्कर न कभी।

भगतसिंह— सहमत हूँ मैं साथी के इस संशोधन से
हम नहीं खून-खच्चर हत्या के हामी हों,
आतंकवाद का है यह अर्थ कदापि नहीं
हम मानवता को तजें—निम्न-पथ-गामी हों।

हम मूल्य समझते जैसे अपने प्राणों का
औरों के प्राण हमें वैसे ही हों प्यारे,
आतंक हमारी नीति रहे पर ध्यान रहे
हम नहीं कहाये जायें हिंसक हत्यारे।

हत्या करना भी हमें क्षम्य हो केवल तब
जब राष्ट्रीय सम्मान दाव पर लग जाए,
अपराधी वह घर का हो या फिर बाहर का
अपने हाथों वह दण्ड मौत का ही पाए।

जो दगा करे अपने दल से, वह बचे नहीं।
विश्वासघात का दण्ड सदा ही गोली हो,
इस मृत्यु-दण्ड की रहे व्यवस्था सबको ही
घाती वह अपना सगा या कि हमजोली हो।

वैसे जब तक बन सके, खून-खच्चर टालें
हम हत्या से बचने के सभी उपाय करें,
पर जहाँ चोट हो राष्ट्रीय गौरव पर, तो
हम खून बहाते हुए किसी का, नहीं डरें।

जयदेव कपूर— आतंकवाद की नीति यही हो मान्य हमें
डाकों के प्रति भी यही नीति हम अपनायें,
जब तक संभव हो, जनता पर न हाथ डालें
शासन को ही हम अपना पौरुष दिखलायें।

जो मान-प्रतिष्ठा पर है डाके डाल रहा
हम भी तो उस शासन पर ही डाके डालें,
हम यही नीति अपनायें जैसे को तैसा,
सिद्धान्त यही हम अर्थ-व्यवस्था हित पालें।

सभी सदस्य— संशोधन ये दोनों ही हैं स्वीकार हमें
हैं विषय बहुत, उन सब पर शीघ्र विचार करें,
हम लोगों के प्रति जो जनता में भ्रम फैला
अच्छे कृत्यों से हम उसका परिहार करें।

जो क्रान्ति-संगठन हेतु और योजना बनी
वह यह थी जो उन सब लोगों ने स्वीकारी,
जो हुए सर्व-सम्मति से निर्णय, वे ये थे
यह था विधान जो निर्मित हुआ क्रान्तिकारी।

[१]

केन्द्रीय समिति हो एक क्रान्ति के कामों को
उसके सदस्य हम में से केवल सात रहें,
जो गोपनीय हो तत्व परम, अपने दल के
वे इन्हीं सदस्यों को ही केवल ज्ञात रहें।

[२]

जो काम बताया जाये जिसको, पूर्ण करे
कारण पूछे, इसका उसको अधिकार नहीं,
सन्देहों की उत्पत्ति परस्पर हो न कभी
हो आपस में ऐसा कोई व्यवहार नहीं।

[३]

दल का कोई संचालक होगा नहीं एक
जो कार्य हो रहा वितरित, सब स्वीकार करें,
अपने-अपने संभागों में संगठन सुदृढ़
कैसे होगा, इसका संघटक विचार करें।

[४]

पंजाब प्रान्त के संयोजक सुखदेव रहें
शिव वर्मा हों संयुक्त-प्रान्त के अधिकारी,
साथी फणीन्द्र का कार्य-क्षेत्र होगा बिहार
संगठित शक्ति हो सभी जगह विप्लवकारी।

[५]

अध्यक्ष केन्द्र के, साथी कुन्दनलाल रहें
सेना विभाग के मुख्याधिप आजाद बनें,
छापे-मारी की वे योजना बनायें सब
निज कार्य-सिद्धि के लिये अटल संकल्प ठनें।

[६ [

हों साथी विजयकुमार और श्री भगतसिंह
अधिकारी सब संभागों के संयोजन के,
जा-जाकर जोड़ें क्रान्ति-सूत्र भारत भर में
हैं कुशल खिलाड़ी दोनों ही अपने फन के।

[७]

घर-बार सदा को छोड़ें सब अपने-अपने
सब क्रान्ति-यज्ञ की करें भयंकर तैयारी,
जल जाय दासता का कलंक उस ज्वाला में
स्वातंत्र्य-भोर का उदय बने मंगलकारी।

सर्ग बाईस

साइमन कमीशन का बहिष्कार

हिसप्रस[1] की केन्द्रीय समिति का निर्णय था पौरुष के पथ पर,
वह पौरुष, था जिसे परीक्षा का मिल गया शीघ्र ही अवसर।
लन्दन से साइमन कमीशन, आया अपना जाल बिछाने,
वह भारत की नब्ज परख कर, आया कोई दवा बताने।

---

१. **हिसप्रस** = हि० स० प्र० स० = हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ। आगे चलकर 'संघ' के स्थान पर 'सेना' शब्द का प्रयोग होने लगा था, यथा :—

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी।

लाख भले-चंगे हो तुम, पर मैं तो दवा पिलाऊँगा ही,
और दवा यदि दे न सका, बातों की हवा खिलाऊँगा ही।
जीवित रख कर तुम्हें, रक्त का मुझे और शोषण करना है,
भरा कहाँ है घड़ा पाप का, उसको अभी और भरना है।

यम ही वैद्य-वेश में आये, फिर कैसा उसका स्वागत हो ?
क्यों न रोष के स्वर में उसको अर्पित घृणा और लानत हो ?
क्यों न आगमन पर उसके सब करें क्षोभ का क्रुद्ध प्रदर्शन ?
कुटिल यातनाओं के भय से, क्यों भावों का हो अवगुण्ठन ?

क्यों अपनी इस पुण्य-भूमि को यह पापी दल करे कलंकित ?
क्यों विरोध का दमन करें ये, हमें करें ये क्यों आतंकित ?
हुआ बम्बई में जो स्वागत, क्यों न सभी में हो वह वैसा ?
शठ के प्रति हम शठ न बनें क्यों, क्यों न नीति---जैसे को तैसा ?

बम से कभी उड़ा देते हम, किन्तु उन्हें जीवित रहना था,
जीवित रह कर कहीं मौत से अधिक कष्ट उनको सहना था।
इसीलिये साइमन कमीशन गया जहाँ भी, घृणा कमाई,
जिधर गया, उस ओर रोष की ज्वाला ही उसने भड़काई।

तो अब यह लाहौर आ गया, अपना शुभ सत्कार कराने,
वीर-भूमि पंजाब प्रान्त के वीरों से मित्रता निभाने।
अच्छा मित्र ! तुम्हारा स्वागत करता है पंजाबी पानी,
याद रखोगे तुम यह स्वागत, स्वागत की यह अमर कहानी।

देखो बाहर, स्वागत के हित कितना जन-समूह आया है,
देखो, काले झण्डों का यह सागर कैसा लहराया है।
मित्र साइमन ! अपने दल के साथ यहाँ का स्वागत पाओ,
लन्दन वालो ! यह लाहौरी तुम आतिथ्य ग्रहण कर जाओ।

चलो, तुम्हारे स्वागत को बाहर जनता तैयार खड़ी है,
क्या संकोच हो रहा तुमको, यह चिन्तन की नहीं घड़ी है।
देखो तनिक, सिंह बच्चे क्या गला फाड़ ललकार रहे हैं,
बाहर आओ ! सिंह बबर मतवाले तुम्हें पुकार रहे हैं।

चलो, तुम्हारे स्वागत को बच्चे-बूढ़े-जवान आये हैं,
गर्व चूर करने के मन में वे संकल्प ठान आये हैं।
देखो यह पंजाब-केसरी वीर लाजपत भी आया है,
छत्र नहीं इसके सर पर, लोगों के प्राणों की छाया है।

भेद-भाव को भूल सभी दल, आज एक होकर आये हैं,
अतिथि आ रहे लन्दन से, वे स्वागत के हित अकुलाये हैं।
भेद-भाव घर में, पर हम सब सदा एक बाहर वालों को,
मिल कर विफल रहे हम करते शत्रु-वर्ग की सब-चालों को।

आओ ! देखो ! भारत के प्राणों में क्या उन्माद भरा है,
तुम क्या आये, घाव हृदय का तुम्हें देख हो गया हरा है।
अब उन्माद हमारा, तुम पर आग हृदय की बरसायेगा।
भारत में मनुष्य रहते हैं, तुमको परिचय मिल जायेगा।

• • •

शासन के प्रतिबन्ध व्यर्थ थे, और व्यर्थ थीं सब धाराएँ,
उन्हें तोड़ बढ़ रहे लोग थे गूंज रहीं थीं सभी दिशाएँ।
शेर युवक हुंकार रहे थे, "चलो साइमन वापिस जाओ !"
और वृद्ध फुंकार रहे थे, "चलो साइमन वापिस जाओ !"

नारी कण्ठ पुकार रहे थे, "चलो साइमन वापिस जाओ !"
बच्चे भी फुफकार रहे थे, "चलो साइमन वापिस जाओ !"
"वापिस जाओ ! वापिस जाओ !" गूँज उठी यह ध्वनि अंबर में,
"वापिस जाओ ! वापिस जाओ !" उठी भावना हर अंतर में।

दल-नायक ने कहा "साइमन !" जनता बोली, "वापिस जाओ",
दल-नायक ने कहा, "कमीशन", जनता बोली, "वापिस जाओ ।"
"दुष्ट साइमन! क्रूर कमीशन" "वापिस जाओ ! वापिस जाओ ।"
जोर-शोर से हुआ प्रदर्शन, "वापिस जाओ ! वापिस जाओ ।"

भुजा उठा कर नेता बोला, "नहीं चाहिए हमें साइमन,"
उठी भुजाएँ जनता बोली, "नहीं चाहिए हमें कमीशन !"
"नहीं चाहिए हमें साइमन", "वापिस जाओ ! वापिस जाओ !"
"नहीं चाहिए हमें कमीशन !" "वापिस जाओ ! वापिस जाओ !"

'वापिस जाओ' की दृढ़ ध्वनियाँ, पड़ीं साइमन के कानों में,
जल-भुन कर रह गया कमीशन, आग लग गई अरमानों में ।
'वापिस जाओ' की ध्वनियाँ सुन, दल ने अपने तेवर बदले,
उछल-उछल कर गरज-गरज कर और इधर दीवाने मचले ।

रक्षक-दल से घिरा कमीशन धीरे-धीरे आगे आया,
वापिस जाओ ! वापिस जाओ ! इधर जोर से स्वर लहराया ।
रक्षक-दल के यत्न-विफल थे, पंथ सभी अवरुद्ध हो गये,
जब गौराङ्ग महाप्रभुओं ने देखा यह, वे क्रुद्ध हो गये ।

पा संकेत अधीक्षक का अब, रक्षक-दल झपटा, ले डंडे,
लगे निहत्थों पर करने अब भीषण वार क्रुद्ध मुस्तंडे ।
होने लगी लाठियों की अब वर्षा लोगों के मस्तक पर,
देश-भक्त पीछे न हटे पर, खाते गये मार डट-डट कर ।

वीर लाजपत गरज रहा था, "हम न हटेंगे ! हम न हटेंगे !
क्रूर साइमन सुन ले हम सब, यहीं डटेंगे ! यहीं डटेंगे !"
पर शासन को कहाँ सह्य था, यह लाला उसको ललकारे,
उसे सह्य कब था उसकी लू यह जनता इस भाँति उतारे ।



अमर शहीद लाला लाजपतराय

वह पंजाब केसरी

- जिसकी दहाड़ सुनकर ब्रिटिश साम्राज्य-वाद का कलेजा काँप उठता था।
- जिसकी अन्तिम ललकार कितनी सत्य निकली कि—
  "मेरे शरीर पर किये गये प्रहार ब्रिटिश-साम्राज्य के कफन में कीलों की भाँति सिद्ध होंगे"

देख अडिगता लालाजी की रक्षक-दल का धीरज छूटा,
अब जे० पी० सान्डर्स पुलिस का अफसर डंडा लेकर टूटा।
लगा धड़ाधड़ लालाजी पर वह निर्मम डंडे बरसाने,
लगा क्रूरता से वह उन पर अमिट पाशविक शक्ति दिखाने।

वीर लाजपत झेल रहा था दृढ़ता से उन आघातों को,
झेल रहा हो पर्वत जैसे दृढ़ता से झंझावातों को।
मन में गाँधी आ बैठा था, फिर वह कैसे हाथ उठाता ?
सत्याग्रह के आदर्शों को क्या न दाग इससे लग जाता ?

जनता दाँत पीसती जाती, हाथ रहे उसके खुजलाते,
पर नेता के अनुशासन को, सब दृढ़ता से रहे निभाते।
एक हाथ उठता नेता का, हाथ हजारों ही उठ जाते,
क्रूर कमीशन, रक्षक दल के, नहीं चिन्ह किंचित मिल पाते।

एक हाथ यदि उठ जाता तो क्रुद्ध भीड़ अरि पर अर्राती,
रख देती वह पीस पुलिस को, चटनी कर उसको खा जाती।
उठा नहीं पर एक हाथ वह, सभी हाथ बेकार हो गये,
हाथ रहे जब शान्त, सरों पर डंडे अधिक सवार हो गये।

लालाजी घिर गये पुलिस से, घेरे थे उनको हत्यारे,
हो प्रमत्त साण्डर्स भिड़ा था, डंडे उसने कस कर मारे।
लालाजी ने देखा, डंडे जनता पर भी बरस रहे हैं,
लोग न हाथ उठाते अपने, वे आज्ञा को तरस रहे हैं।

सोचा, क्यों ये लोग अकारण जल्लादों के डंडे खायें ?
क्यों न सभा करके विरोध में हम सब अपना रोष जताएँ ?
अतः दिया आदेश, "चलो सब, वापिस चलकर करो प्रदर्शन,
तोड़ो सब धारायें इसकी, हमको भी जाने यह शासन।"

लालाजी को पता नहीं था, कौन व्यक्ति वह जिसने मारा,
अतः घूर कर देखा उसको, होकर क्रुद्ध उसे ललकारा।
कहा उन्होंने, "ओ जालिम ! क्या अपना नाम बतायेगा तू ?
झुकना होगा आखिर, हमको कब तक और सतायेगा तू ?"

किन्तु दुष्ट ने कुटिल हँसी से, दिया प्रश्न का कोरा उत्तर,
एक युवक जो खड़ा वहाँ था, तड़प उठा यह कृत्य देखकर।
खून उतर आया आँखों में, लगा क्रोध से होठ चबाने,
अपनी आँखों से अंगारे लगा दैत्य पर वह बरसाने।

वह बड़बड़ा उठा "मत बतला क्या तेरा नाम छिपेगा,
समाचार तेरी दुर्गति का अखबारों में कभी दिखेगा।
वयोवृद्ध नेता पर जितने डंडे बरसाये हैं तूने,
गाँठ बाँध ले, तेरे सर पर बरसेंगे अब इनसे दूने।

भगतसिंह ही क्या मैं, इसका अच्छा बदला यदि न चुकाया,
निर्मम पशु को मानवता का पाठ न यदि मैंने सिखलाया।
मुझको चैन नहीं आयेगा, जब तक बदला चुक न सकेगा,
चैन नहीं आयेगा, तेरा मस्तक जब तक झुक न सकेगा।"

लाला लाजपतराय का जीवनोत्सर्ग

पंजाब-केसरी वीर लाजपत के तन पर
अँग्रेजी शासन ने डंडे बरसाये थे,
आघात क्रूर, उस वीर पुरुष ने संयम से
निज मातृ-भूमि के हित-चिन्तन में खाये थे।

सान्डर्स, काल का दूत उन्हें बन कर आया
दानव ने थे उन पर भीषणतम वार किये,
मर्मस्थल पर थे लगे प्रबल आघात कई
उस जालिम ने थे उन पर कई प्रहार किये।

उस दिन संध्या को हुई सभा जब आयोजित
घायल होकर भी वीर पुरुष हुंकारा था,
यह लगा कि जैसे नाग भयंकर आहत हो
अपने घातक को डस लेने फुंकारा था।

अंग्रेजों को सम्बोधित कर वह गरज उठा—
"मत समझो, यह तुमने मुझ पर है वार किया,
तुमने कुठार अपने पैरों पर ही मारा
साम्राज्यवाद को कफन स्वयं तैयार किया।

गर्जना वीर की रही गूँजती कानों में
शासन के गुरगों को न नींद तब तक आई,
उस वीर पुरुष ने की जब तक स्वीकार नहीं
कर जीवन का उत्सर्ग, मौत की पहुनाई।

हँसते-हँसते वह चढ़ा गया निज प्राणों को
अपनी धरती की आजादी की वेदी पर,
वह आजादी, जो बनी दीप की लौ जैसी
भावना शलभ की प्राणों में देती है भर।

यह मौत देश के लिये चुनौती बन बैठी
इसने भारत के प्राणों को झकझोर दिया,
स्वीकार चुनौती भगतसिंह ने कर डाली
उस सिंह पुरुष ने मन में यह प्रण ठान लिया—

"धरती की माटी को छूकर मेरा प्रण है
लालाजी का बदला हत्यारे से लूंगा,
जिसने इनको मारा, मैं उसका खून बहा
साम्राज्यवाद के पंडों को शिक्षा दूँगा।

है एक मास की अवधि, पूर्ति होगी प्रण की
या तो मेरी गोली का वह शिकार होगा,
अन्यथा आत्म-हत्या ही मेरे लिये मार्ग
असफल होकर यह जीवन मुझे भार होगा।"

यह भगतसिंह का प्रण क्या था, मानो उसने
इतिहास महाभारत का ही दुहराया हो,
इतिहास काल-क्रम के अन्तर में जैसे वह
उलटे क्रम से इस नूतन युग में आया हो।

था किया जयद्रथ-वध का प्रण तब अर्जुन ने
प्रतिशोध उसे बेटे के वध का लेना था,
अब भगतसिंह को पितृ-तुल्य लालाजी के
वध का प्रति-उत्तर उसी भाँति ही देना था।

वह घूँट खून का पीकर कैसे रह जाता
उसको तो हत्यारे का शोणित पीना था,
प्रतिशोध अनल से झुलसा जाता था तन-मन
यह तपन बुझाने ही अब उसको जीना था।

सान्डर्स समाया रहता उसकी आँखों में
योजना उसी के वध की रहती थी मन में,
था क्षीण हो रहा चन्द्र अवधि का क्रम-क्रम से
पर गति आती जाती थी उसके चिन्तन में।

सान्डर्स-वध

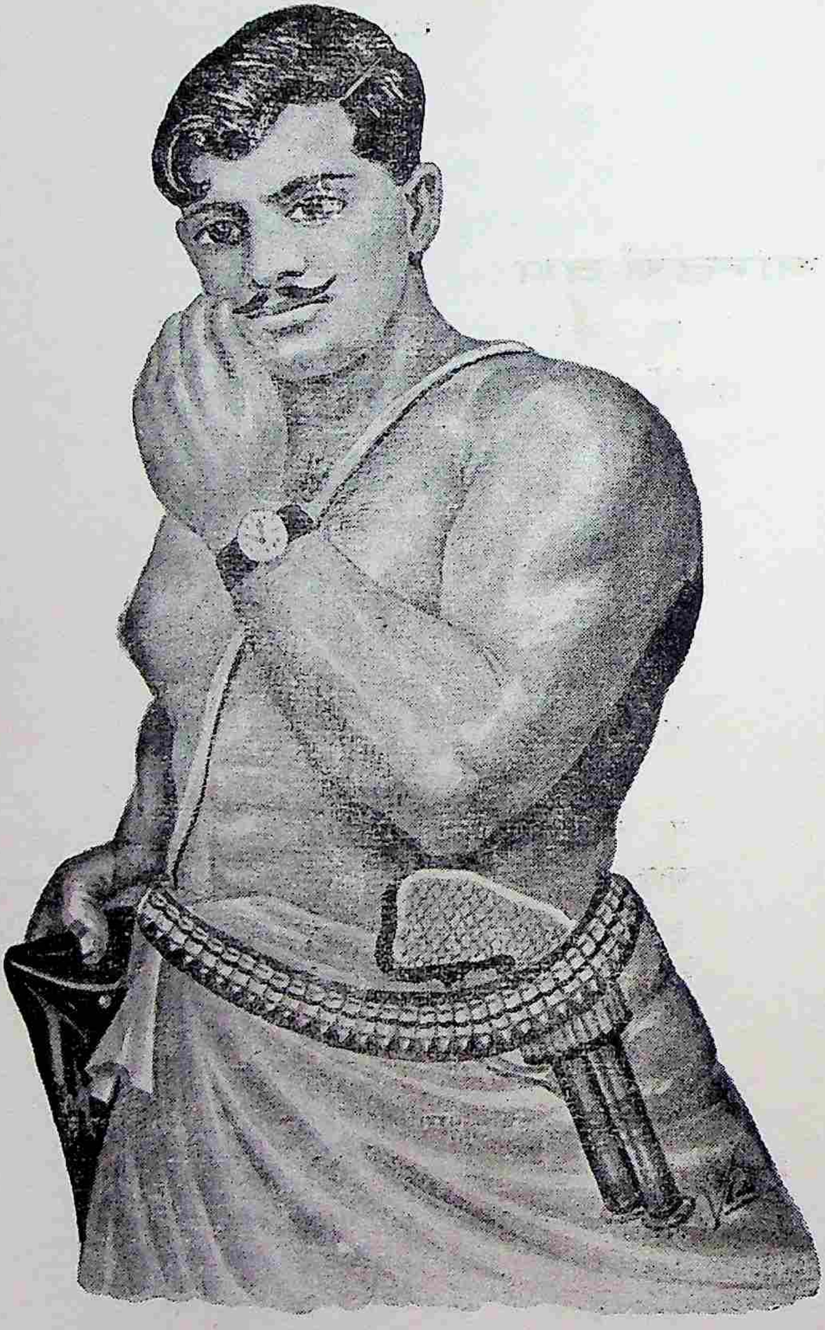
क्या एक मास की अवधि बीतते देर लगे
अन्तिम साँसें ले रहा आज यह अन्तिम दिन,
सान्डर्स आज भी जीवित, चिन्तित भगतसिंह
हैं एक मास के दिन बीते प्रतिदिन गिन-गिन।

यदि आज वधिक का वध न हुआ, होगा अनर्थ
संकल्पी अपने प्राण विसर्जन कर देगा,
संकल्प विफल हो, यह लज्जा होगी असह्य
जीवित रह कर वह नहीं कभी अपयश लेगा।

वह लगा प्राण-पण से है इसी योजना में
आखेट आज उस नर-भक्षी का होना है,
है राष्ट्रीय अपमान निधन लालाजी का
अपयश हत्यारे के शोणित से धोना है।

पा भगतसिंह का आमंत्रण, आये साथी
योजना-बद्ध हो रही मोरचा-बन्दी है,
संकल्प प्रखर कितना इन लोगों के दिल में
दिख रही हौसले की क्या आज बुलन्दी है।

अपनी भाषा में आप भले ही बोलें यह
इनने घेरा लाहौर पुलिस के दफ्तर को,
पर सच तो यह है, इने-गिने दीवानों ने—
है घेर लिया जाकर यम दूतों के घर को।



हिन्दुस्तान समाजवादी-प्रजातंत्र सेना का प्रधान सेनापति अमर शहीद
चन्द्रशेखर आजाद

संकल्प-साधना क्या प्रदीप्त मुख-मण्डल पर
क्या प्रखर-भावना-युक्त वक्ष चट्टानी है,
नर के तन में साक्षात सिंह का यह स्वरूप
जो इसे मिली बस उसका नाम जवानी है।

है एक ओर जन-पथ पर जयगोपाल खड़ा
संकेत उसे देना सान्डर्स आगमन का,
हैं वहीं राजगुरु-भगतसिंह भी दुबक रहे
अब घोष गूंजने को ही यहाँ दनादन का।

मौजर साधे आजाद खड़े हैं कुछ हट कर
प्रतिक्रमण हुआ यदि, तो प्रतिरोध करेंगे ये,
जो आयेगा, वह होगा गोली का शिकार
आजाय काल भी स्वयं, न कभी डरेंगे ये।

लो, मस्त चाल से अब सान्डर्स चला बाहर
वह फट-फटिया पर चढ़ा, इधर संकेत मिला,
पहचान गये साथी श्री जयगोपाल उसे
वह बढ़ा इधर अब इनका भी रूमाल हिला।

लो हुई धाँय ! यह वार राजगुरु का पहला
सान्डर्स गिरा, उठने का विफल प्रयास किया,
फिर धाँय ! धाँय ! पिस्तौल भगत की गरज उठी
उस नर-भक्षी को उसने भू पर सुला दिया।

फिर धाँय ! धाँय उसका तन छलनी कर डाला
निश्चेष्ट हो गया तड़प-तड़प गोरा अफसर,
प्रतिशोध-प्रतिज्ञा दोनों की ही पूर्ति हुई
उस अभिमानी का रक्त बह उठा धरती पर।

सुन धाँय-धाँय का स्वर कुछ रक्षक दौड़ पड़े
कर धाँय-धाँय अब आगे मिस्टर फर्न बढ़े,
गोलियाँ उगलती थी उनकी पिस्तौल विकट
वे बढ़े उधर थे भगतसिंह जिस ओर खड़े।

अब गरज उठी पिस्तौल भगत की उत्तर में
झट लेट भूमि पर, फर्न पैंतरा मार गया,
फिर उठा, निशाना ज्यों ही उसने साधा, अब
निकटस्थ राजगुरु ने दिखलाया दाव नया।

झट झपट, हुमक कर उसने कस कर लात जड़ी
पिस्तौल फर्न की झटका खाकर दूर गिरी,
कस लिया राजगुरु ने उसको निज बाँहों में
यह लगा फर्न के सर पर भी अब मौत घिरी।

क्रोधांध राजगुरु ने निज सबल भुजाओं में
भरकर उसको, झट उठा भूमि पर दे मारा,
क्या प्रबल धमाका हुआ, होश खो बैठा वह
अब नये शत्रु ने इन दोनों को ललकारा।

गोलियाँ-गालियाँ दोनों ही छोड़ता चला
वह चननसिंह था भगतसिंह का प्रतिद्वन्दी,
शत्रुता पुरानी फिर उसके दिल में उभरी
सोचा, अपने प्रतिद्वन्दी को कर लूँ बन्दी।

पर गरज उठा नर-नाहर अब आजाद तड़प—
"वापिस जाओ ! अन्यथा ढेर हो जाओगे,
इस काल-मुखी की गोली एक बहुत तुमको
तुम सदा-सदा को धरती पर सो जाओगे।"

पर जिसके सर पर मौत घिरे, वह क्यों माने
अब चननसिंह दूनी तेजी से लपक पड़ा,
आजाद धाँय ! कर बैठे, गूँजी काल-मुखी
गोली खाकर वह दैत्य नहीं रह सका खड़ा।

अर्रा कर वह गिर पड़ा, ढेर हो गया वहीं।
यह वीर-कृत्य करके, वीरों का दल खिसका,
अवरोध करे, था किसने माँ का दूध पिया
अबरोध मौत का करे, भला साहस किसका ?

अपमान राष्ट्र का धुला शत्रु के शोणित से
था भगतसिंह के प्रण का भार हुआ हलका,
था शौर्य प्रबलतम जितना अन्तस्तल में, वह
सौगुना दीप्त होकर, मुख-मण्डल पर झलका।

विज्ञप्ति विजय की लपटों जैसी लपक पड़ी
हर्षोल्लास छा गया देश के घर-घर में,
हर छाती चौड़ी हुई और मस्तक ऊँचा
उन्माद विजय का ध्वनित हुआ सब के स्वर में।

सर पटक-पटक लाहौर पुलिस थक गई किंतु
सान्डर्स-काण्ड का कोई वीर न हाथ लगा,
इतना विशाल साम्राज्य लगा वह लुटा-पिटा
वह निष्प्रभ दिखलाई देता था ठगा-ठगा।

था जाल बिछ गया जासूसों का, खोज बिना
चिड़िया का बच्चा भी हो, शहर न छोड़ सके,
इस विजय-पर्व से कोई हर्षित हो न सके
कोई भी अपनी मूँछ न तनिक मरोड़ सके।

फिर भी आँखों में धूल झोंक कर क्रांति वीर
जासूसों का वह जाल तोड़ कर चले गये,
रह गई पीटती लीक पुलिस, पर वे भुजंग
वह लीक और केंचुली छोड़कर चले गये।

आजाद ठेठ मथुरा के चौबे बन बैठे
था चला तीर्थाटन को वह पंडों का दल,
श्रीकृष्ण हरे ! श्रीकृष्ण हरे ! गाते-गाते
वह मण्डल उनका गया सुरक्षित दूर निकल।

था भगतसिंह जँच गया राजसी अफसर बन
उस ठाट-बाट, उस आन-बान का क्या कहना ?
हूबहू अर्दली बना राजगुरु था उसका
बस भगतसिंह की अजब शान का क्या कहना ?

दुर्गा भाभी[1] का विकट हौसला तो देखो
अफसर-पत्नी का किया सफलता से अभिनय,
बालक शचीन्द्र को लिया भगत ने गोदी में
निज लक्ष्य ओर बढ़ चले सभी होकर निर्भय।

सन्देह पुलिस को हो जाता, गोली चलती
माँ-बालक दोनों के जीवन की खैर न थी,
सर पर मँडराती मौत साथ ले चले सभी
मन बहलाने को की उनने यह सैर न थी।

दुर्गा भाभी का त्याग न भूला जायेगा
यह देश-भक्त के लिए ढाल बनकर निकली,
भगवतीचरण जिसको देहातिन समझे थे
वह क्रान्तिकारिणी अब कराल बन कर निकली।

---

१. दुर्गा भाभी :—श्रीमती दुर्गादेवी प्रसिद्ध क्रांतिकारी अमर शहीद भगवतीचरण की पत्नी हैं। आजकल आप लखनऊ में रह रही हैं। भगवतीचरण भगतसिंह को बचाने के प्रयास में रावी के तट पर बम-विस्फोट से शहीद हो गये।



महान् क्रान्तिकारिणी श्रीमती दुर्गादेवी बोहरा जिसको
ढाल बनाकर भगतसिंह सान्डर्स को गोली से
उड़ाकर लाहौर से बच निकला था ।

नारी दुर्गा का रूप सदा धरती आई
इस धरती पर जब ऐसा अवसर आया है,
उस समय स्वयं दुर्गा नारी बन कर निकली
की भगत सिंह के सर पर शीतल छाया है ।

है मान-दंड अब तक न बना कोई जग में
जो नाप सके नारी के मन की ऊँचाई,
सब छान लिये दुनिया के सागर मानव ने
पर रही अछूती नारी उर की गहराई ।

है मान-दण्ड अब तक न बना कोई जग में
जो नाप सके नारी के मन की ऊँचाई,
सब छान लिये दुनिया के सागर मानव ने
पर रही अछूती नारी उर की गहराई।

संकल्प मचलते जब नारी उर में ज्वलंत
युग करवट लेता है, इतिहास बदलते हैं,
इसके स्नेहिल उर में ढलते सौ-सौ वसन्त
इसके उर में मानव के सपने पलते हैं।

नारी दुर्गा का रूप सदा धरती आई
इस धरती पर जब ऐसा अवसर आया है,
इस समय स्वयं दुर्गा नारी बन कर निकली
की भगतसिंह के सर पर शीतल छाया है।

चल पड़ा मेल कलकत्ता को, ले इन सबको
पहले दर्जे के डब्बे में था किया सफर,
अर्दली राजगुरु भृत्य-वास में जा बैठा
इस तरह धड़ल्ले से छोड़ा लाहौर शहर।

कलकत्ता में भगवतीचरण आ मिले इन्हें
बोले, "दुर्गा ! कितनी महान् तुम, अब जाना,
तुम भारतीय नारी की हो प्रतिमूर्ति ! पूर्ण
तुमको पहली ही बार आज है पहचाना।"

दो ज्वाला-मुखी गले लगाकर मिले

क्या राम और हैं भरत पुनः अवतरित हुए
मिल रही गले यह भाई-भाई की जोड़ी,
कितने प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध उभय
है स्नेह-प्रदर्शन की कैसी होड़ा-होड़ी।

मिल रहे गले मानो ये हैं दो ज्वाला-गिरि
दोनों उर में ज्वालाएँ विकट छिपाये हैं,
दोनों ज्वलंत अंगारों से अरमान लिये
उर से लग शीतलता पाने अकुलाये हैं।

या ब्रिटिश राज्य के विस्तृत भाग्य-गगन पर ये
दो धूमकेतु हैं एक साथ ही उदित हुए,
साम्राज्यवाद का सर्वनाश दिख रहा इन्हें
इसलिये गले लग कर दोनों ही मुदित हुए।

बंगाले का विद्रोह एक साकार स्वयं
साकार दूसरा यह पंजाबी विप्लव है,
दो सिंहों का यह स्नेह-सम्मिलन क्या कहना
दो तूफानों का एक साथ प्रादुर्भव है।

तूफान बड़ा जो दिखता, वह अपना सुभाष
जो छोटा है, वह भगतसिंह कहलाता है,
दो सिंह-सूरमा विद्रोही बेटे जन कर
कितनी प्रमुदित गर्वित यह भारत-माता है।

लो, मौन मुखर हो उठा, मिली वाणी को गति
"योजना पूर्ण, सान्डर्स मार कर आया हूँ,
अपमान भार था लदा हमारी साँसों पर
वह भार राष्ट्र का उतार कर आया हूँ।"

"जो वीर-कृत्य है हुआ, गर्व उस पर मुझको
सान्डर्स-काण्ड, पर भगतसिंह ने नहीं किया,
था भगतसिंह तो उस दिन इस कलकत्ता में
था न्यायालय ने अर्थ-दण्ड कुछ उसे दिया।

ले उड़ा साइकिल गलत हाथ को वह उस दिन
टोका तो उलटा पुलिस मैन को धमकाया,
धर पकड़ हुआ प्रस्तुत जब न्यायालय में तो
कुछ जुर्माना देकर ही पिण्ड छुड़ा पाया।"

"मिल गया कौन-सा भगतसिंह तुमको भैया ?
मैं समझ गया, यह सब करतूत तुम्हारी है,
मुझको निर्दोष बताने नाटक रचा गया
इस बुद्धि तुम्हारी पर सचमुच बलिहारी है।"

"पगले ! मैंने ही नकली दाढ़ी-केश लगा
था भगतसिंह का किया सफलता से अभिनय,
यह भी कह दिया कि मैं लाहौर निवासी हूँ
इस तरह साक्ष्य बन गया तुम्हारा न्यायालय।

यदि पकड़े भी जाओ, अब क्या चिन्ता तुमको
तुम कलकत्ता में थे, यह माना जायेगा,
आरोपी के आरोप सभी कट जायेंगे
सान्डर्स-काण्ड में शासन मुँह की खायेगा।"

"भैया ! अवसर आने दो, देखा जायेगा
अरमान और कुछ ही हैं मेरे अंतर में,
देखना यही, कब होती उनकी सफल पूर्ति
उस सिद्धि हेतु ही खोज रहा हूँ अवसर मैं।

दो मुझको स्नेहाशीष हाथ मस्तक पर रख
संकल्प किया है जो मैंने, वह निभा सकूँ,
कृतकार्य हुआ तो गले मिलेंगे फिर हम-तुम
अन्यथा मौत अपनी से दुनिया हिला सकूँ।"

"पगले भाई ! ईर्ष्या मुझे होती तुझ से
तू लिये हुए उर में कितने संकल्प प्रखर,
यदि भाग्य तुझे भी इस पथ पर ले जाये तो
फिर और भाग्य क्या हो सकता इससे बढ़कर।

प्रार्थना करें हम दोनों, हो स्वीकार विनय
हम मातृ-भूमि की आजादी का वरण करें,
अन्यथा, फूल जीवन का जिस माँ से पाया
अर्पित कर उसको बलि-पथ का अनुसरण करें।"

या कहें, नई भट्ठी मिल-जुल कर दहकाने
यह आग आगरा में, झाँसी से आई है,
जब सुना, आगरा बना मुक्ति का यज्ञस्थल
झाँसी ने भी अपनी आहुति पहुँचाई है।

झाँसी, जो सत्तावन की मुक्ति-साधना में
अंग्रेजी शासन पर बिजली-सी अर्राई,
तलवार बुन्देलों की मचली, तो दुश्मन की
वीरता धीरता पत्ते जैसी थर्राई।

जब बनी भवानी मर्दानी रानी लक्ष्मी
तो शत्रु-शीष गाजर-मूली से काटे थे,
युद्धस्थल था खलिहान बन गया लाशों का
मैंदान, बाग-वन शत्रु-शवों से पाटे थे।

उस झाँसी ने फिर भेजे कुछ अपने बेटे
स्वातंत्र्य-समर में फिर आहुतियाँ दो, जाओ!
जो खून बना था लावा सन् सत्तावन में
है वही खून तुम में यह जाकर दिखलाओ।

तो वही खौलता खून लिए निज रग-रग में
आगरा-आग के घर, दीवाने आए हैं,
आगरा इन्हें अपनी साँसों का बल देगा
ये अपने अंगारे दहकाने आये हैं।

ये मलकापुर—नाम सदाशिव है इनका
कर गरल-पान, देते ये मधु का दान सदा,
कर्मठ सैनिक की ये ज्वलंत भावना लिए
दल करता आया है इन पर अभिमान सदा।



महान् क्रान्तिकारी श्री भगवानदास माहौर जो भुसावल बम-काण्ड में पकड़े गये थे और जिन्होंने जलगाँव की अदालत में मुखबिर फणीन्द्रनाथ पर गोली चलाई थी।
आजकल झाँसी के बुन्देलखंड कॉलिज में हिन्दी के प्राध्यापक हैं।

भगवानदास माहौर क्रान्ति-दर्शी पूरे
ये आग और आँधी दोनों ही साथ लिये
हो आवश्यक, ये जान झोंक दें या ले लें
हैं देश-भक्ति के इतने ऐसे जाम पिये।

इनके उर में वह कर्म-धर्म की अमर ज्योति
जिसको न आँच आँधी-तूफानों से आये,
करती रहती यह ज्योति सभी के उर ज्योतित
जिस उर को छू दे, भाव विप्लवी दहकाये।

साधना मौन ही इनकी कार्य-प्रणाली है
विश्वास नहीं है किंचित इन्हें प्रदर्शन में,
हर एक साँस का सदुपयोग ये करते हैं
निज देश-धरा के ये सच्चे शुभ-चिन्तन में।

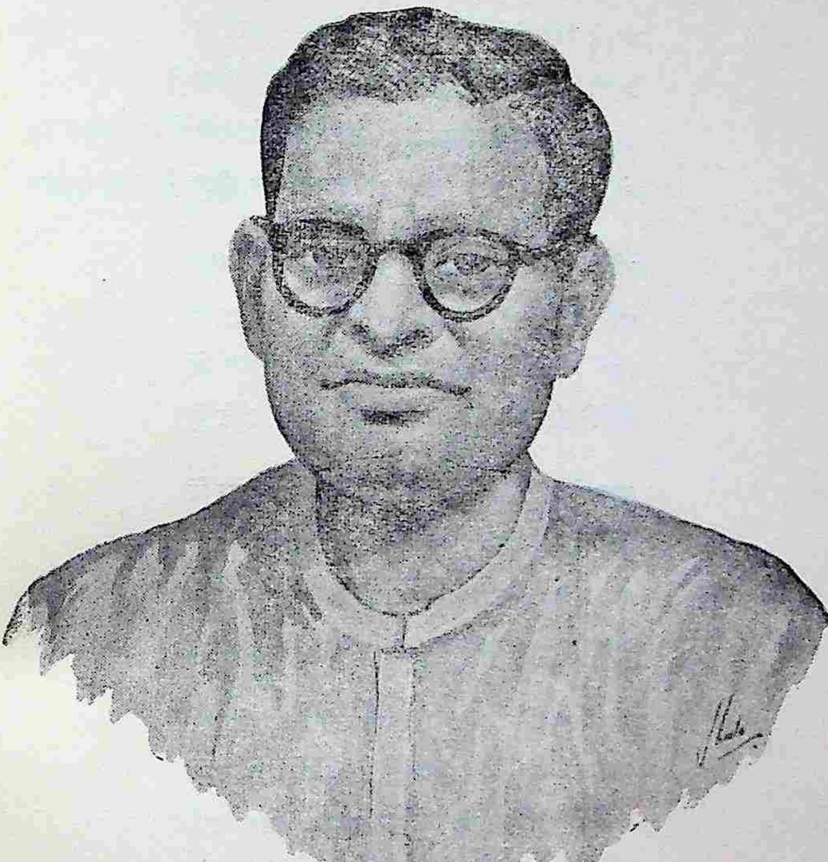
भगवानदास माहौर क्रान्ति-दर्शी पूरे
ये आग और आँधी दोनों ही साथ लिये,
हो आवश्यक, ये जान झोंक दें, या ले लें
हैं देश-भक्ति के इनने ऐसे जाम पिये।

इनके उर में वह कर्म-धर्म की अमर-ज्योति
जिसको न आँच आँधी-तूफानों से आए,
करती रहती यह ज्योति सभी के उर ज्योतित
जिस उर को छू दे, भाव विप्लवी दहकाये।

इनसे मिलिए, श्री विश्वनाथ वैशम्पायन
इस धरती के दीवाने, ये मतवाले हैं,
ये चलें, स्वयं तूफान किनारा कर जायें
तूफान कई, ये स्वयं हृदय में पाले हैं।

इनकी साँसों में संकल्पों की वह आँधी
जो छिन्न-भिन्न सब मेघ विकल्पों के करदे,
यदि करे गर्जना इनके सम्मुख कुलिश स्वयं
तो विकट घोष इनका भी, उसका उत्तर दे।

आगए यहाँ, सब भगत की सुन पुकार
यह क्रान्तिकारियों का अड्डा अब इनका घर,
काँपेंगे तब काँपेंगे दुश्मन किन्तु अभी
ये स्वयं शीत से काँप रहे सब थर-थर।



महान् क्रान्तिकारी श्री विश्वनाथ वैशम्पायन जो योगेशचन्द्र चैटर्जी
को जेल से छुड़ाने के प्रयत्न में सम्मिलित होने भगतसिंह
के आह्वान पर झाँसी से आगरा गये थे।
आजकल रायपुर आपकी कर्म-भूमि है।

इनसे मिलिए, श्री विश्वनाथ वैशंपायन
इस धरती के दीवाने ये मतवाले हैं,
ये चलें, स्वयं तूफान किनारा कर जायें
तूफान कई ये स्वयं हृदय में पाले हैं।

इनकी साँसों में संकल्पों की वह आँधी
जो छिन्न-भिन्न सब मेघ विकल्पों के कर दे,
यदि करे गर्जना इनके सम्मुख कुलिश स्वयं
तो विकट घोष इनका भी उसका उत्तर दे।

ओढ़ने-बिछाने भला कहाँ से लायें ये
अपनी धुन में कैसा खाना, कैसा पीना ?
ये बिरवे, जो चट्टानों पर भी हरे रहें
जो सुख-सुविधा में जिये, भला वह क्या जीना ?

झीनी चादर की पर्तों में अखबार बिछा
बर्फीली रातों में ये सुख से सोते हैं,
शुभ संकल्पों की गर्मी इनके शोणित में
ये किसी शीत से नहीं पराजित होते हैं।

कुछ वे हैं, जो मीठे सपनों की छाया में
बैठे-बैठे बातें करते बलिदानों की,
क्या सी ! सी ! करके रात बिता सकते हैं वे
गरमाया करती धूप जिन्हें मुस्कानों की।

जो देश-भक्ति की डींग मारते घर में रह
सच तो यह है, है देश-भक्ति व्यापार उन्हें,
क्या चिन्ता उनको, यदि यह धरती बिक जाये
धरती तो मिट्टी है, सोने से प्यार उन्हें।

क्या मूल्य आँक सकते हैं वे इन हीरों का
घर-बार छोड़ जो बने वतन के दीवाने,
हैं स्वप्न न जिनके, बनें कँगूरे महलों के
हैं स्वप्न—नींव के पत्थर हों वे अनजाने।

भगतसिंह और आजाद का मल्ल-युद्ध

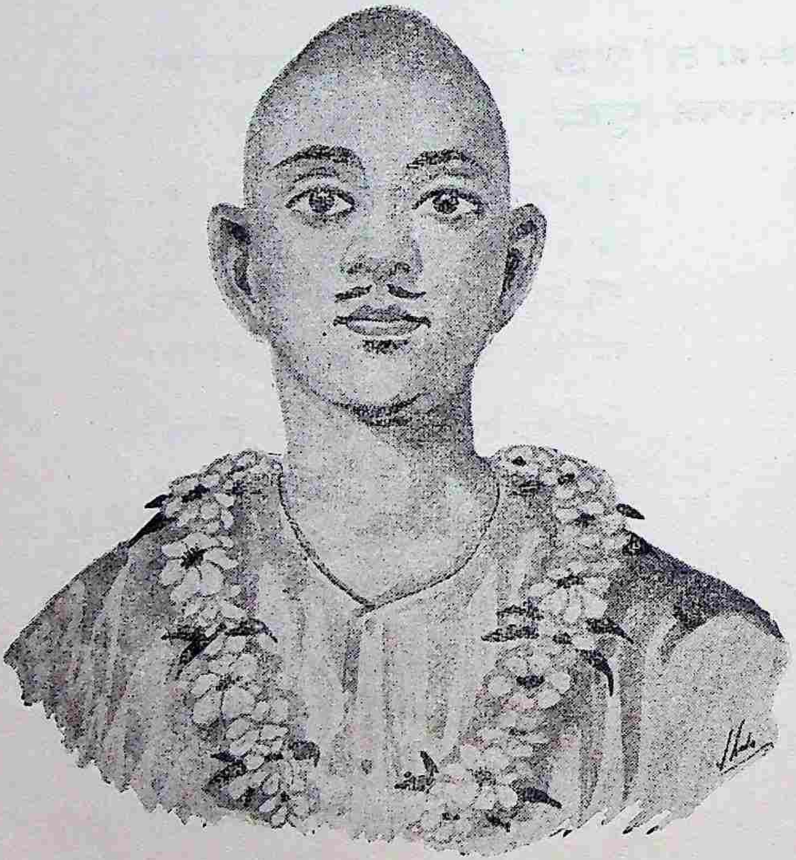
क्यों गुत्थम-गुत्था भगतसिंह-आजाद अरे !
क्या बात हुई जो ये आपस में जूझ पड़े,
क्यों इनके साथी इन्हें बचाते नहीं अरे !
क्यों देख रहे हैं सभी तमाशा खड़े-खड़े।

क्यों दचक-पटक हो रही परस्पर ही इनमें ?
क्यों एक-दूसरे को दोनों ही रगड़ रहे ?
भाई-भाई से प्रेम अधिक इन दोनों में
अनहोनी क्यों, जो ये आपस में झगड़ रहे ?

हों आप नहीं चिन्तित, यह तो है मल्ल-युद्ध
ये नहीं शत्रुता से भिड़ रहे परस्पर हैं,
युद्धाभ्यास, यह तो इनकी दिन-चर्या है
ये स्वयं खोजते रहते ऐसे अवसर हैं।

ये कूद-फाँद या भाग-दौड़ सब करते हैं
आजाद निशाना-बाजी इन्हें सिखाते हैं,
क्या लक्ष्य बड़ा, यदि एक लोंग भी रख दो तो
अपनी गोली से ये वह लोंग उड़ाते हैं।

सुखदेव बहुत माहिर है मुक्केबाजी में
जिस पर तबियत आ जाये, यह मुक्का जड़ दे,
तिलमिला जायगा एक बार तो दानव भी
कचकचा अगर यह उसके मुँह पर थप्पड़ दे।



अमर शहीद सुखदेव

अमर शहीद सुखदेव जिसे भगतसिंह और राजगुरु के साथ २३ मार्च १९३१ को लाहौर में फाँसी लगाई गई।

सुखदेव को क्रान्ति-संगठन में कमाल हासिल था।

श्रीमान को सुगंधित फूलों का हार पहिनने का बड़ा शौक था। ये अपनी झोंक के लिये मशहूर रहे हैं।

जा रहा एक दिन था लाहौरी पहलवान
क्या जड़ा नाक पर मुक्का जा इसने कस कर,
तिलमिला गया, आँखों में अँधियारा छाया
वह बैठ गया झट वहीं थाम कर अपना सर।

सुखदेव भाग सकते थे, किन्तु नहीं भागे
जब होश उसे आया तो वह इन पर झपटा,
वह डील-डौल में इनसे दूना ही होगा
मुक्के बरसा कर करने लगा इन्हें चपटा।

झट बीच-बचाव किया आकर कुछ लोगों ने
पूछा, 'क्यों तुमने यह विचित्र व्यवहार किया ?"
बोले, "अपना मुक्का मुझको अपनाना था
इसलिये नाक पर मैंने सहसा वार किया।

यह नुस्खा मैंने पढ़ा एक पुस्तक में था
यदि तनिक पिट लिया तो मेरा क्या बिगड़ गया,
यदि जड़े नाक पर मुक्का, शत्रु न सह सकता
यह सिद्ध परीक्षण से अनुभव हो गया नया।"

ठोकना-पीटना-पिटना सब आवश्यक हैं
जीवन में आते बड़े काम ये अनुभव हैं,
इसलिये अकारण बैठे-ठाले बहुधा ही
ये करते रहते ऐसे कई उपद्रव हैं।

दिखने में छोटे किन्तु राजगुरु खोटे हैं
दिख रहे गाँठ-गोबी से ये कैसे तगड़े,
मारना-पीटना हो, इनको आगे कर दो
है शौक इन्हें, ये स्वयं कमाते हैं झगड़े।

आ बैल ! मार मुझको, इनका सिद्धान्त अटल
आ गया बैल, तो ये ही उसे खदेड़ेंगे,
घूँसों-मुक्के-दाँतों के ये प्रयोग-वादी
पैने नाखूनों से ये खाल उधेड़ेंगे।

ये दण्ड-बैठकें पाँच-पाँच सौ भरें नित्य
खाने को यदि टिक्कर मिल जायें तो बस है,
जिसको दबोच दें, चीं-चीं करता रहे पड़ा
इस अलबेले नाटे जवान में यह कश है।

पटकरी फर्न को खिला चुका है यह भाई
हफ्तों तक उसने अपना सेक किया होगा,
जब-जब उसकी हड्डियाँ दुखी होंगी तब-तब
'डेविल' कह कर ही इसका नाम लिया होगा।

माहौर, इन्हें सब हनूमान जी कहते हैं
यदि याद दिला दो बल की, तो पर्वत ला दें,
वह 'कुठे गुन्तला' गीत बहुत प्यारा इनको
यदि करे मनावन भगतसिंह, तो ये गा दें।

भिड़ जाते जब-तब ये भी सरदाराँ से हैं
पूछो मत, किसकी लगती अधिक पिटाई है,
ये और सदाशिव पंजा खूब लड़ाते हैं
इन फन में इनसे मात भगत ने खाई है।

तो, ऐसे ये अभ्यास किया करते प्रतिदिन
आजाद-भगत कर रहे अभी दोनों जैसे,
क्या जोर-शोर से जोर-आजमाई होती
ये दिखा रहे हैं दाव कठिन कैसे-कैसे।

लग रहा कि जैसे भीम और अर्जुन दोनों
आपस में भिड़ कर रहे शक्ति का हैं संचय,
उन्नीस न पड़ता एक-दूसर से कोई
अतुलित बलशाली दिखते हैं ये योद्धा द्वय।

लग गया दाव, आजाद धमक बैठे ऊपर
वे भगतसिंह को रगड़ रहे हैं धरती पर,
जैसे ही वह उठने का करता है प्रयास
ये धर-दबोचते उसको, बाहों में कस कर।

पर यह क्या ? देखो भगतसिंह उठ खड़ा हुआ
अब दोनों ही हैं ताल ठोकते खड़े-खड़े,
अब खड़े-खड़े दोनों फिर गुत्थम-गुत्था हैं
गुत्थम-गुत्था थे दोनों जैसे पड़े-पड़े।

देखो ! देखो ! यह भगत बाज-सा झपट पड़ा
प्रतिद्वन्दी को दोनों हाथों पर उठा लिया,
झक-झोर-झुला ऊपर ही ऊपर हाथों में
पूरी ताकत से दूर धरा पर पटक दिया।

आजाद भूमि पर अर्राये, धरती काँपी
गिरते ही क्षण झट तेज कमानी से उछले,
बाँहों में भरकर भगतसिंह को धर खींचा
अब दोनों भाई-भाई थे मिल रहे गले।

थपथपा पीठ बोले—"मैं तुझको मान गया
'रणजीत' नाम से मैं अब तुझे पुकारूँगा,
तुझ जैसे स्नेहिल वीर-बली भाई से मैं
है चाह नहीं जीतूँ, सदैव ही हारूँगा।"

वल्लाह !
क्या लजीज खाना है

क्या धमा-चौकड़ी मचा रखी इन लोगों ने
ये कूद विटप-शाखा से रहे धमा-धम हैं.
यह खेल 'झपट-डंडा' सब मिल कर खेल रहे
कर रहे धमाधम जैसे फूट रहे बम हैं।

हो चुका खेल, लो अब तप रहे रसोई ये
पिल पड़े सभी, सब अपनी कला दिखाते हैं,
ये पाक-शास्त्र में भीम और नल के दादा
इनसे रसोइये बड़े-बड़े शरमाते हैं।

आजाद भीम जैसे आटे पर टूट पड़े
कर दिया उसे गीला, अब बगलें झाँक रहे,
है भगतसिंह रस लेता उन्हें चिढ़ाने में
गुरु[1] दाल बनाते हैं, बातें भी फाँक रहे।

खद-बद खद-बद कर रही दाल खप्पर में है
था मिर्च-मसाला जितना वे सब डाल चुके,
"बेशर्म कहीं की ! नाम न लेती घुलने का
हम थक-थक कर पच-पच कर तुझे उबाल चुके।"

---

१. गुरु=राजगुरु। राजगुरु को बातें करते रहने का बहुत शौक था। आजाद के शब्दों में, उन्हें लुक-लुक करने की बहुत आदत थी। राजगुरु सोते-सोते भी बातें करते थे और चलते-चलते भी सो लेते थे।

लो, इधर तान छिड़ गई, विजय बाबू गाते
कर वाह ! वाह ! माहौर दाद देते जाते,
हैं सेक रहे शिव शर्मा बैठे राम-रोट
आनन्द गीत का साथ-साथ लेते जाते।

तैयार रसोई, टूट पड़े सब साथी अब
रख लिया बीच में उठा दाल का वह खप्पर,
सुरसा जैसी है भूख, किन्तु हिस्से में तो
आ सके सभी के केवल दो-दो ही टिक्कर।

सर्वोदय के उस महा-पात्र में हाथ डाल
प्रारम्भ हो गया शीघ्र सर्व-भक्षण का क्रम,
यह कौन कहे, है मिर्च तेज या नमक नहीं
खा-पीकर तो होना है आखिर सभी हजम।

सुखदेव—राजगुरु, दोनों पहलवान पूरे
दो टिकियों से ये तृप्त नहीं हो पायेंगे,
चूहे पेलेंगे दण्ड पेट में दोनों के
भूखे रह कर ये औरों के सर खायेंगे

यह ताड़ गया सब भगतसिंह सूझा उपाय
बोला, "देखो ! लखनवी नजाकत बतलाता,
जिस तरह नवाबों को मैंने खाते देखा
उस तरह देखिए ! मैं भी खा कर दिखलाता।"

यह कह कर उसने एक निबाला तोड़ लिया
आकार बड़ा क्या होगा चींटी के सर से,
फिर धीरे-धीरे उसे दाल की हवा लगा
मुँह में रख कर बोला, यह हैरत के स्वर से—

"वल्लाह ! मिला है खाना यह कितना लजीज
सुखदेव ! राजगुरु ! तुम भी इसका स्वाद चखो,
भर गया पेट मेरा इसकी खुशबू से ही
लो ये चपातियाँ एक-एक तुम लोग रखो।"

इस तरह उन्हें अपना हिस्सा दे, ली डकार[१]
सचमुच ही जैसे हो डट कर खाना खाया,
क्या सूझ-बूझ, क्या चतुराई से बात बना
खुद भूखा रह, वह, काम दोस्तों के आया।

१. भगतसिंह बिना कुछ खाए ही, तृप्ति का बहाना करके उठ गया और साईकिल लेकर आगरा शहर जा पहुँचा। आगरा के साहित्यिकों ने मिल कर उसे नौ-सौ (९०० रु०) रुपये दिये। भगतसिंह ने कुछ भोजन-सामग्री तथा ये रुपये ले जाकर चन्द्रशेखर आजाद के हाथों में रख दिये। जब कभी भोजन सम्मिलित रूप से नहीं होता था तो आजाद भोजन के लिये प्रत्येक सदस्य को अलग-अलग पैसे बाँट देते थे। जब कभी भगतसिंह को सिनेमा देखना होता था तो वह आजाद से पैसे ठगा करता था। आजाद अपने हिस्से के पैसों में से कुछ उसे देकर बिना खाए या गुड़-चना खा कर ही रह जाते थे।

हृदय का ज्वार
प्यार की फटकार

अंधड़ उठता तो टिक कर रहता नहीं कहीं
जिस ओर गया, वह भारी धूम मचाता है,
चक्रित होते रहना ही उसका जीवन है
झकझोर विश्व-जीवन को वह रख जाता है।

क्यों रहे बैठकर वह भी एक जगह, जिसके
जीवन में यौवन का भारी अंधड़ आए ?
क्यों नहीं मचाए धूम सभी में घूम-घूम ?
क्यों नहीं विश्व-जीवन को वह भी थर्राए ?

जब यौवन की साँसों में गर्मी होती है
तो तापमान शीतल लगता अंगारों का,
यौवन का अंधड़ वेगवान होता इतना
वह वेग थाम लेता सागर के ज्वारों का।

जब अपनी पर आता है खून जवानी का
नक्शा रख देता है वह बदल जमाने का,
धड़कनें पर्वतों के उर की बढ़ने लगतीं
संकल्प मचलता जब अल्हड़ मर्दाने का।

तो यौवन का उन्मादी अंधड़ भगतसिंह
संकल्प प्रखर लेकर क्यों एक जगह टिकता ?
बलिदानों की साधना उसे जब थी अभीष्ट
वह समझौते के किसी मोल पर क्यों बिकता ?

घूमा करता था चक्र-वात सा वह घर-घर
वह आजादी का अलख जगाया करता था,
उसके पौरुष में संजीवन था कुछ ऐसा
वह मुर्दों में जीवन लहराया करता था।

हो कोई भी, वह उसका होकर रह जाता
छू देता वह जिसको अपने अपनेपन से,
मानव तो आखिर हाड़-माँस का पुतला है
पाहन भी मृदु होते उसके संवेदन से।

साहित्य, धर्म या राजनीति के महारथी
लोहा माना करते थे उसके पानी का,
जीवंत चेतना का बेजोड़ महा-दानी
था प्रखर रूप पौरुष का और जवानी का।

आचार्य प्रवर श्री चतुरसेन[1] से वह उस दिन
भिड़ गया बड़े अधिकार-भाव से घर जाकर,
अपनी झोली भी भर ली अपने दल के हित
फिर उलझ पड़ा, फटकार प्यार की बरसा कर—

---

१. स्व० आचार्य चतुरसेन के शब्दों में ही पढ़िए—
"गाहे-बगाहे वह युवक मेरे पास आ जाता है। विचित्र आदमी है। कभी बच्चों की तरह बेसिर-पैर की बातें करता है, कभी खूब गंभीर हो जाता है, और कभी गुस्से में आता है तो छोटे-बड़े किसी को भी नहीं बरकाता। मुँहफट ऐसा कि कभी-कभी मुझे ही फटकार बैठता है। लेकिन मुझ से बातें ऐसे करता है जैसे सगे पिता से। फटकारता है मुझे कायर कहकर। इतने बड़े साहित्यिक होकर भी आप कुछ नहीं करते, यही उसका कहना है।"
—'वातायन' से साभार

"बाबू जी ! जादूगर हैं आप लेखनी के
फिर क्यों समाज की जड़ता नहीं भगाते हैं ?
बलिदान माँगती है जब अपनी आजादी
क्यों नहीं लेखनी से बलिदान जगाते हैं ?

सामर्थ्य सार्थक होता तभी लेखनी का
जब वह समाज के मुर्दों में जीवन भर दे,
वह जीवन, जो पर्याय बने ज्वाला-गिरि का
विस्फोट, भस्म अन्यायों को जिसका कर दे।

क्यों नहीं लेखनी धूप उगलती पौरुष की
जब अपनी धरती पर दुश्मन की छाया हो,
क्यों नहीं लेखनी असि का धर्म करे धारण
जब अन्यायों ने अपना शीष उठाया हो।

साहित्यकार को मधुर स्वप्न क्यों छलते हैं ?
जब शत्रु मूंग अपनी छाती पर दलता हो,
क्यों नहीं शर्म से कहीं डूब मरता वह कवि
जो गीत प्यार के लिखे, देश जब जलता हो।

इसलिये कलम के धनिको ! जादूगरो उठो
कर्तव्य देश-धरती के प्रति तुम पहचानो,
हों छिन्न-भिन्न अभिमानी शीष शत्रुओं के
अपने स्वर से तुम ऐसे गोले संधानो।"

"बाबू जी ! जादूगर हैं आप लेखनी के
फिर क्यों समाज की जड़ता नहीं भगाते हैं ?
बलिदान माँगती है जब अपनी आजादी
क्यों नहीं लेखनी से बलिदान जगाते हैं ?

सामर्थ्य सार्थक होता तभी लेखनी का
जब वह समाज के मुर्दों में जीवन भर दे,
वह जीवन, जो पर्याय बने ज्वाला-गिरि का
विस्फोट, भस्म अन्यायों को जिसका कर दे।

क्यों नहीं लेखनी धूप उगलती पौरुष की
जब अपनी धरती पर दुश्मन की छाया हो,
क्यों नहीं लेखनी असि का धर्म करे धारण
जब अन्यायों ने अपना शीष उठाया हो।

साहित्यकार को मधुर स्वप्न क्यों छलते हैं ?
जब शत्रु मूंग अपनी छाती पर दलता हो,
क्यों नहीं शर्म से कहीं डूब मरता वह कवि
जो गीत प्यार के लिखे, देश जब जलता हो।

इसलिये कलम के धनिको ! जादूगरो उठो
कर्तव्य देश-धरती के प्रति तुम पहचानो,
हों छिन्न-भिन्न अभिमानी शीष शत्रुओं के
अपने स्वर से तुम ऐसे गोले संधानो।"

घूमा करता था चक्र-वात सा वह घर-घर
वह आजादी का अलख जगाया करता था,
उसके पौरुष में संजीवन था कुछ ऐसा
वह मुर्दों में जीवन लहराया करता था।

हो कोई भी, वह उसका होकर रह जाता
छू देता वह जिसको अपने अपनेपन से,
मानव तो आखिर हाड़-माँस का पुतला है
पाहन भी मृदु होते उसके संवेदन से।

साहित्य, धर्म या राजनीति के महारथी
लोहा माना करते थे उसके पानी का,
जीवंत चेतना का बेजोड़ महा-दानी
था प्रखर रूप पौरुष का और जवानी का।

आचार्य प्रवर श्री चतुरसेन[1] से वह उस दिन
भिड़ गया बड़े अधिकार-भाव से घर जाकर,
अपनी झोली भी भर ली अपने दल के हित
फिर उलझ पड़ा, फटकार प्यार की बरसा कर—

१. स्व० आचार्य चतुरसेन के शब्दों में ही पढ़िए—
"गाहे-बगाहे वह युवक मेरे पास आ जाता है। विचित्र आदमी है। कभी बच्चों की तरह बेसिर-पैर की बातें करता है, कभी खूब गंभीर हो जाता है, और कभी गुस्से में आता है तो छोटे-बड़े किसी को भी नहीं बरकाता। मुँहफट ऐसा कि कभी-कभी मुझे ही फटकार बैठता है। लेकिन मुझ से बातें ऐसे करता है जैसे सगे पिता से। फटकारता है मुझे कायर कहकर। इतने बड़े साहित्यिक होकर भी आप कुछ नहीं करते, यही उसका कहना है।"
—'वातायन' से साभार

"बाबू जी ! जादूगर हैं आप लेखनी के
फिर क्यों समाज की जड़ता नहीं भगाते हैं ?
बलिदान माँगती है जब अपनी आजादी
क्यों नहीं लेखनी से बलिदान जगाते हैं ?

सामर्थ्य सार्थक होता तभी लेखनी का
जब वह समाज के मुर्दों में जीवन भर दे,
वह जीवन, जो पर्याय बने ज्वाला-गिरि का
विस्फोट, भस्म अन्यायों को जिसका कर दे।

क्यों नहीं लेखनी धूप उगलती पौरुष की
जब अपनी धरती पर दुश्मन की छाया हो,
क्यों नहीं लेखनी असि का धर्म करे धारण
जब अन्यायों ने अपना शीष उठाया हो।

साहित्यकार को मधुर स्वप्न क्यों छलते हैं ?
जब शत्रु मूंग अपनी छाती पर दलता हो,
क्यों नहीं शर्म से कहीं डूब मरता वह कवि
जो गीत प्यार के लिखे, देश जब जलता हो।

इसलिये कलम के धनिको ! जादूगरो उठो
कर्तव्य देश-धरती के प्रति तुम पहचानो,
हों छिन्न-भिन्न अभिमानी शीष शत्रुओं के
अपने स्वर से तुम ऐसे गोले संधानो।"

धड़ाधड़ कौन करे

होता है जिसमें गर्म खून, वह नहीं कभी
अत्याचारी के अन्यायों को सहता है,
फट पड़ता है उसके अंतर का ज्वाला-गिरि
आक्रोश उफन कर लावा जैसा बहता है।

फिर आग और यौवन के धनी क्रान्तिकारी
शासन के काले कानूनों को क्यों सहते ?
क्या लाल रक्त में नहीं कालिमा लग जाती
जो काला था, यदि वे न उसे काला कहते।

जो युगों-युगों से दलित रहे श्रम के साधक
यह सह्य नहीं, वे और अधिक पीसे जायें,
यह सह्य नहीं, शासन के बड़े शिकंजे में
जकड़े रह कर वे साँस न सुख की ले पायें।

यदि श्रम-विवाद[१] कानून बन गया, लानत है
रोकेंगे, हम अपनी आवाज उठायेंगे,
यदि शासन ने जन-मत को रौंदा तो हम भी
कर धूम-धड़ाका अपनी बात सुनायेंगे।

---

१. **श्रम-विवाद**=केन्द्रीय असेम्बली में ट्रेड डिस्प्यूट बिल (Trade Dispute Bill) सदस्यों द्वारा अस्वीकृत हो चुका था पर वायसराय की विशेष आज्ञा से उसे कानून के रूप में स्वीकृत किया जाने वाला था। इस कानून का कुपरिणाम श्रमिकों पर पड़ने वाला था, इसी कारण इसे श्रम-विवाद के नाम से पुकारा गया है।

हैं श्रमिक, साधना करते जो निर्माणों की
इनकी साँसों में युग के स्वप्न पला करते,
सच्चे अर्थों में ये इस युग के भागीरथ
इनके श्रम के बल से साम्राज्य चला करते।

यदि श्रम-साधक के हाथ उठें, तो स्वर्ग गढ़ें
वे चाहें तो पाताल फोड़ पानी ला दें,
वे चाहें मरुथल नन्दन-वन सा लहराये
पसलियाँ पर्वतों की वे चाहें, चर्रा दें।

फिर युग के इन निर्माताओं का शोषण क्यों ?
क्यों इन्हें स्वार्थ की फिर कोई सुरसा हड़पे ?
जो श्रम, गंगा की पावनता में घुला-मिला
फिर क्यों उसके पुजारियों का जीवन तड़पे ?

यदि अपनी साँसें देकर जीवित रख न सकें
यह तो हो, हम इनकी साँसों को बचने दें,
जो माँस शेष हैं इनके सूखे हाड़ों पर
वह नर-भक्षी गिद्धों को नहीं खुरचने दें।

इसलिये हमारा निर्णय है, हम जूझेंगे
यह श्रम-विवाद, कानून न बनने पायेगा,
अध्यक्ष घोषणा करे, पूर्व ही सभा-भवन
बम गोलों के विस्फोटों से थर्राएगा।

शासन के बहरे कान नहीं जन-मत सुनते
इसलिए धड़ाका करके उसे सुनायेंगे,
है नहीं सूझता जन-हित का पथ शासन को
ज्वाला सुलगा कर हम वह पथ दिखलायेंगे।

विस्फोट करेंगे, किन्तु पलायन नहीं कभी
पकड़े जाकर हम स्वयं जेल में जायेंगे,
आवाज हमारी जनता तक न पहुँच पाती
अब न्यायालय द्वारा हम वह पहुँचायेंगे।

देखें दुनियाँ के लोग, आग हम में कितनी
वे ब्रिटिश राज्य-शासन का नंगापन देखें,
संकल्प-साधना देखें वे दीवानों की
वे क्रान्ति-यज्ञ की लपटों का नर्तन देखें।

है प्रश्न, कौन हम में से बम विस्फोट करे ?
हठ भगतसिंह की है, वह खुद ही जाएगा,
छटपटा रहा वह वीर कर्म की पीड़ा से
काले कानूनों पर वह गाज गिराएगा।

है किन्तु हमारा मत, हम उसको बचा रखें
आजाद और वह दोनों ही अनिवार्य हमें,
आजाद कलेजा विकट, भगत मस्तिष्क प्रखर
दोनों का जीवन-रक्षण पावन कार्य हमें।

वैसे इस दल में जितने क्रान्ति-वीर, सब में
होड़ा-होड़ी है विकट आत्म-उत्सर्जन की,
दुर्द्धर्ष सभी हैं किसी विषमता से भिड़ने
है प्रखर आग भर रही सभी में यौवन की।

पर दो योद्धा ये शेष रहें तो सौ योद्धा
इस क्रान्ति-संगठन में प्रतिदिन आ जायेंगे,
ये चले गए तो यह धक्का होगा असह्य
इसलिए इन्हें जब तक हो सका, बचायेंगे।

जायेंगे श्री बटुकेश्वर और विजय बाबू[1]
है खून नहीं, दोनों के तन में लावा है,
तो सावधान अन्यायी शासन ! अब तुझ पर
दो सिंह-सपूतों का होने को धावा है।

●

१. पूर्व निर्णय के अनुसार क्रान्तिकारियों की केन्द्रीय समिति द्वारा बटुकेश्वर-दत्त और विजयकुमार सिन्हा को केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकने भेजा जाने वाला था। भगतसिंह के अनुरोध से समिति को फिर अपना निर्णय बदलना पड़ा जिसका वर्णन आगे के पृष्ठों में मिलेगा।

सुखदेव और भगतसिंह में झरपट

तूफान कौन-सा उमड़ रहा इसके उर में ?
इसके मन पर यह किस विषाद की छाया है ?
आ गई कौन-सी जीवन में दुर्भाग्य-निशा ?
जो खिला-खिला मुख-कमल आज मुर्झाया है।

सुखदेव आज डूबा किस दुख के सागर में ?
क्यों पर्वत जैसा भारी आज हुआ मन है ?
है गहन-वेदना कौन घुल गई साँसों में ?
निश्वासों से जो पीड़ा का ही निस्वन है।

रोहित आँखें सूजी-सूजी फूलीं-फूलीं
कह रहीं स्वयं, इनसे भारी बरसात हुई,
मन में निदाघ, आँखों में वर्षा बसी हुई
इसके जीवन में है ऐसी क्या बात हुई ?

क्या कहा, झगड़ बैठा है भगतसिंह से यह
जो अनहोनी, क्यों मन उस पर विश्वास करे ?
ये चिर-अभिन्न दो मित्र, नहीं संभव दिखता
कोई इनमें से पंकिल पावन न्यास करे।

पर हाँ, सच्चे दो मित्र उलझते भी देखे
मन में धूमिलता किन्तु न देखी जाती है,
मित्रता वही, जो बने प्रेरणा सत्पथ की
नैराश्य-तिमिर में यह प्रकाश दिखलाती है।

सुखदेव व्यथित है, भगतसिंह को क्या सूझी
बलिदान-पर्व में जो पीछे रहने वाला,
उद्भूत कौन-सा ग्रहं हुग्रा इसके मन में
उज्ज्वल यश पर जो लगा रहा धब्बा काला।

वह इसी बात को ले, जा उलझ पड़ा उससे
हो रही वार्ता क्या इन दोनों में, सुनिये,
दो हृदय कर रहे भावों के मोती विकीर्ण
यदि लगें ग्रापको उपयोगी, तो कुछ चुनिए।

"बलिदानों का ग्रामंत्रण है जब मिला तुम्हें
क्यों भगतसिंह तुम वह ग्रामंत्रण ठुकराते ?
क्यों नहीं गुँजाते जाकर तुम्हीं विधान-भवन ?
क्यों ग्राज धड़ाके से तुम इतने कतराते ?

मस्तिष्क संगठन के तुम माने जाते हो
नेतृत्व तुम्हारे हाथों में ग्रपने दल का,
क्या कारण है फिर जो तुम पीछे हटते हो ?
व्यवहार स्वयं से ही तुम करते हो छल का।

नेता केवल मौखिक उपदेश नहीं देता
नेता वह, जो खुद ग्रागे चल कर दिखलाये,
तैयार रहे जो जान झोंकने, नेता वह
जो ग्रपना मस्तक छिपा न पीछे रह जाए।"

सुखदेव ! मुझे ग्राश्चर्य बहुत ये बातें सुन
मैं नेता कब, दल का केवल सैनिक भर हूँ,
केन्द्रीय समिति ने रोका, मैं रुक गया, ग्रगर
वह कहे मौत से भिड़ने ग्रब भी तत्पर हूँ।

विस्फोट स्वयं मैं करूँ, चाहता था मैं भी
था मेरा ही प्रस्ताव, सभी को समझाया,
पर सब अमान्य थे तर्क, संघ-संचालन हित
मैं रहूँ यहीं, है यही समिति ने ठहराया।"

"मैं देख रहा हूँ, अपनी क्षमताओं के प्रति
है अहंभाव तुम में अनुदिन बढ़ता जाता,
कर दिया विवश, कटु सत्य कहूँगा मैं खुल कर
अब भगतसिंह सरदार मौत से भय खाता।"

"सुखदेव ! अधिक क्या कहूँ, बड़ी निर्ममता से
तुमने मेरे भावों पर वज्र-प्रहार किया,
जीवन से प्रिय है मुझे अधिक दल का निर्णय
अनुशासन-वश इसलिए उसे स्वीकार किया।

अधिकार-भाव से किन्तु कहा जो कुछ तुमने
मैं धन्यवाद ही उसके हित तुमको दूँगा,
कुछ और अधिक मत कहो, यही मेरा निर्णय
केन्द्रीय समिति के निर्णय को मैं बदलूँगा।"

तो कारण यह, सुखदेव दुखी जिसको लेकर
जाने कितना रोया है, कितना रोयेगा,
है ज्ञात, भगत-सा मित्र न मिलने पायेगा
असली हीरे-सा खरा मित्र वह खोयेगा।

पर सत्य यही, कर मित्र-धर्म पालन उसने
जो पथ महान, वह भगतसिंह को दिखा दिया,
यह भगतसिंह था, निर्णय में परिवर्तन हित
केन्द्रीय समिति को जाकर जिसने विवश किया।

निर्णय था, देने साथ दत्त बटुकेश्वर का
अब भगतसिंह ही सभा-भवन में जायेगा,
दल का क्या, निर्णय भगतसिंह का ही था यह
वह अपने हाथों अपनी मौत बुलायेगा।

●

अन्तिम विदाई

आगई विदा-बेला, लो जाता भगतसिंह
दुर्गा भाभी उसकी आरती उतार रही,
करुणा, ममता, वेदना, तृषा, आशीष स्नेह
आँखों में भर-भर कर वह उसे निहार रही।

अवरुद्ध कण्ठ, वाणी-हतप्रभ, भावना प्रखर
क्या कहे किस तरह कहे बात अपने मन की,
घुट रहीं भावनाओं का धुँआ न लक्षित हो
क्या ही विचित्र गति है यह इनके जीवन की।

जा रहे कहाँ, क्यों जाते, पूछ नहीं सकती
अनुबंध यही, अनुशासन है दृढ़ यह दल का,
फिर आज विदा के अन्तिम क्षण वह क्या कह कर
भावों से बोझिल मन का भार करे हल्का।

पर जहाँ मुखर-वाणी की गति कुंठित होती
ये नयन, मौन रह कर भी सब कुछ कह जाते,
दो उर, मन की सब बातें कह-सुन लेते हैं
अवरोध और प्रतिबंध धरे ही रह जाते।

दुर्गा भाभी के मौन अचंचल दृग कहते
"भैया ! तुम मुझ से अन्तिम विदा लिये जाते,
यह पावन मुख-छवि दर्शन को दुर्लभ होगी
वेदना धरोहर ही तुम मुझे दिये जाते।

माँ और बड़ी माँ, इनमें से माँ को छोड़ा
जो अपनी सब की माँ, तुम उसके लिये चले,
मातृत्व निछावर हो सारा, तुम वह सपूत
तुम धवल-कीर्ति के मंथित मक्खन से उजले।

साकार गर्व हो मातृ-भक्ति के तुम महान
तुम हो सदेह उद्घोष संगठित विप्लव के,
वर्चस्व देश के पौरुष के तुम हो ज्वलंत
तुम प्रखर रूप हो दलित भाग्य के उद्भव के।"

उर की यह भाषा मूक-दृष्टि की लिपि में पढ़
था इसी भाँति अब भगतसिंह का भी उत्तर,
वाणी का सब वरदान मिल गया आँखों को
सौ-सौ भावों को लिये दृष्टि हो गई मुखर।

"भाभी क्यों भावुकता का आज प्रदर्शन यह ?
दो विदा, नहीं शोभित उर का यह आन्दोलन,
कर्तव्य-भावना पर यह कैसा सम्मोहन
शोभित न अकिंचन का यह इतना अभिनन्दन।

माँ नहीं यहाँ, तुम ही माँ हो, दो विदा मुझे
स्नेहिल उर का पावन आशीष लुटाओ तुम,
जो दूध पिया है माँ का, उसकी लाज रखूँ
माँ बनकर भाभी ! मन में यही मनाओ तुम।

तब संकट में था तुमने मेरा साथ दिया
आपत्ति-धर्म में पति-पत्नी का वह अभिनय,
इस मातृ-भूमि के हित वह करना पड़ा हमें
फिर भी तुम में था लक्षित सच्चा मातृ-हृदय।

चिड़िया जैसे बच्चे को पंखों में भरले
जब बढ़े नाग कोई, करने उसका भक्षण,
सिंहनी दबा दाँतों मे शावक ले जाये
वैसे ही मुझको मिला तुम्हारा संरक्षण।

मातृत्व तुम्हारा मिला, उसी के रक्षण हित
मैं तुम से अन्तिम विदा आज लेकर जाता,
यदि जन्म मनुज का मिले पुनः प्रार्थना यही
मैं बनूँ पुत्र, तुम मेरी पूजनीय माता।"

मन का यह भाव समझकर मातृ-स्वरूपा ने
मन ही मन अपना संचित स्नेहाशीष दिया,
तब एक भुजा को काट, दूसरी से उसने
निज उष्ण रक्त से भगतसिंह का तिलक किया।

आगई सुशीला दीदी, लिपट गई, बोली—
"भैया ! मुझसे भी अन्तिम विदा लिये जाओ,
अनुरोध आज अन्तिम मेरा स्वीकार करो
इस बड़ी बहन पर यह उपकार किये जाओ।

परिधान नया यह पहनो, जीर्ण मुझे देदो
स्मृति-चिह्न तुम्हारा यह हम सब को गर्व बने,
भारत की सब बहिनों का स्नेहाशीष तुम्हें
बलिदान तुम्हारा सब को पावन पर्व बने।

संतरे और रसगुल्ले तुमको प्रिय भैया !
हम दोनों के हाथों, जितनी रुचि हो, खा लो,
फिर कब-कब तुमको खिला-पिला पायेंगे हम
अनुरोध हमारा अन्तिम है यह, अपना लो।"

लाड़ला वीर कुछ कह न सका, मन भारी था
साभार किन्तु उस आग्रह को स्वीकार किया,
गम्भीर मौन श्रद्धा के भाव समर्पित कर
स्नेहानुरोध का उसने भी सत्कार किया।

फिर चरणों की वन्दना नमित नयनों से कर
वह चला गया कर्तव्य और बलि के पथ पर,
सावन की बोझिल बदली से ये नयन इधर
अब बरस पड़े झर-झर-झर-झर-झर-झर-झर।

दिल्ली असेम्बली में बम के धड़ाके

नीर सरिताओं का सिंधु में समाहित ज्यों
आये सदस्य
देश के विभिन्न भागों से ।
भर गया विधान-भवन
दिल्ली का केन्द्रीय
ज्वार भावनाओं का दोलित कराल यह ।
प्रश्न है ज्वलन्त यही
श्रम का विवाद यह
धारण करेगा क्या
रूप कानून का ?
इसे ठुकराया सदस्यों ने बार-बार
किया अभिव्यक्त उद्दाम विक्षोभ निज ।

किन्तु
सम्भावना की एक लहर दौड़ रही
जन-भावनाओं के शंकित धरातल पर—
शासन
विशेष निज शक्ति का प्रयोग कर
निश्चय ही स्वीकृत करेगा कानून यह ।
यही एक आशंका सब के विचारों में
कौंध रही बार-बार विद्युत के दाह-सी ।
रोष, क्षोभ, शंका-कुशंका के भाव लिये
पहुँचा विधान-भवन
दर्शक समूह भी ।

कैसी खचाखच भरी हैं दीर्घाएँ सब
बोझिल है वातावरण
लिये व्यग्रता ।
शान्त रहो ! शान्त रहो ! कार्य आरम्भ हुआ
सुनो ! सुनो ! वार्ताएं गरमा-गरम अब ।
प्रश्नों के छोड़ते पटाखे सदस्य-गण
और अस्पष्ट उत्तरों की धुंध पाते है ।
तैरती विषैली वायु
नीचे से ऊपर तक
करती प्रभाव
दर्शकों का दम घुटता है ।

देखो ! देखो ! आसन से उठे ये प्रधान जी
शासन के निर्णय का अब उद्घोष है—
"यद्यपि अस्वीकृत सदन ने किया है
किन्तु
श्रम-उद्योग का विवाद कानून अब ।"
गूँजे ये शब्द घोर ज्यों ही सदन में
गूँज उठा बम का धड़ाका विकट एक ।
धड़ड़ ऽ ऽ ऽ धूँ ऽ ऽ का
धमाका कराल
और दुसरा धमाका भी
फिर से
धड़ड़-धूँ ।

भाग-दौड़ मची
प्राण ले-लेकर भागे लोग
टेबिल के नीचे जॉन शुष्टर दिखाई दिये ।

साइमन-दल भी दुबक गया नीचे ही
वीरता महान थी वरेण्य उन्हें श्लाघनीय ।
प्राणों से मूल्यवान
वस्तु कहाँ कोई और ?
प्राण न बचाते क्यों फिरंगी वीर यत्न से ?
किन्तु निश्चिन्त
मुस्कराते श्री पटेल रहे ।
त्याग-मूर्ति नेहरू
महामना मालवीय ।

धीरे-धीरे धुंध जो धुँये की हटी
देखे गए
दीप्त मुख-मण्डल दो
फूल से खिले हुए ।
कैसी अवर्णनीय
मनोहारी दिव्य-ज्योति
मृदु-मुस्कान खेलती थी मुख-द्वय पर ।
हुआ उद्घोष अब—
"इन्कलाब ! जिन्दाबाद !
इन्कलाब ! जिन्दाबाद ! इन्कलाब जिन्दाबाद !
साम्राज्यवाद का हो
सर्वनाश ! सर्वनाश !
संगठित दुनिया के
श्रमिक अजेय हों ।

लाल-लाल पर्चों की वर्षा सदन में
करते हैं वीर-द्वय
खड़े निःशंक हो ।

लिखा है—

"बम के धड़ाके ये किए गए
शासन के कान
बहरे ये प्रार्थनाओं को।
सुनें और समझें वे
बम के धड़ाके नहीं
यह उद्घोष है हमारे आक्रोश का।
भारत के प्राणों का यह भू-कम्प एक
और भी अनेक विस्फोट बाट जोहते।

सेना समाजवादी यह जो हमारी उठी
सह्य नही इसे अपमान राष्ट्रीय अब।
सह्य नहीं इसे साम्राज्यवाद का कलुष
यह कटिबद्ध अब घोर प्रतिकार को।
देकर अनेक नाम
न्याय-नीति या विधान
डाले हैं नकाब
इन्हें बे-नकाब करना है।
बे-नकाब करके दिखाना संसार को
काले कारनामे इस गोरी सरकार के।

हम हैं प्रयत्नशील उज्ज्वल भविष्य-हेतु
लाना विहान हमें पूर्ण स्वातन्त्र्य का।
लक्ष्य नहीं—
मानव का रक्त हो प्रवहमान
मानते पवित्र हम जीवन मनुष्य का।
किन्तु पशुता का व्यवहार जो करेंगे नर
हमें संकोच नहीं रक्त भी बहायेंगे।

भारत का रक्त अभी ठण्डा हुआ है नहीं
साक्ष्य दुनिया के लिये
रहे रक्त-क्रान्ति यह।"

लाल-लाल पर्चों ने
यह उद्घोष किया
दोनों वीर खड़े निश्चिन्त निर्विकार थे।
आई पुलिस
सार्जन्ट आये
किन्तु वे
रहे ललकारते
न आगे बढ़ा एक भी।
दोनों ने अब पिस्तौल निज फेंक दिये
और कहा—
"प्रस्तुत हैं—करो गिरफ्तार अब।"
बन्दी सपूत इस भाँति स्वयमेव हुए
दत्त बटुकेश्वर
भगतसिंह वीरवर।

राज्य और शासन पर
छाया भगतसिंह
छाया जन-मन पर भगतसिंह सूरमा।
वक्ष फूल-फूल उठे
मस्तक थे ऊँचे सब
धन्य-धन्य लाड़ले हमारे वीर-वर द्वय।
चन्दा और सूरज की
जोड़ी चिरंजीव रहे
दत्त और भगत
सपूत मातृ-भूमि के।

'इन्कलाब जिन्दाबाद'
नारा अब हमारा यह
कण्ठ-कण्ठ बोलेंगे
"इन्कलाब ! जिन्दाबाद !"

न्याय की नाट्य-शाला

क्यों हम खड़े हैं यहाँ न्याय-नाट्य-शाला में ?
प्रश्न यही जन-जन के मन में उभरता
प्रश्न एक
उत्तर नहीं है किन्तु कोई एक
उत्तर अनेक
प्रश्न-कर्ता अनेक हैं।
प्रश्न यही हमसे स्वयं करते हैं हम
उत्तर है—
हमें कर्तव्य खींच लाया है
कोटि-कोटि प्राणों की वन्दनीया मातृ-भूमि
अर्चना को उसकी बनाये प्राण फूल हैं।

पूत चरणों पर हम अपने समर्पण से
ज्योति कर्तव्य की ज्वलंत कर जायेंगे।
आयेंगे बार-बार
जायेंगे बार-बार
इसी भाँति मातृ-ऋण अपना चुकायेंगे।
फूल जब प्राणों को हमने बनाया है
धूल बन जाने में जीवन सफल है।
धूल धरती की वह
स्वर्ग से महान जो
जिसकी समाई हुई गंध
साँस-साँस में।

क्यों हम खड़े हैं यहाँ ?
प्रश्न यह जनता का
सोचते हैं कुछ—
छोकरे हैं, चले आये हैं ।
फाँसी के फन्दे का नाम ये सुनेंगे तो
होश इन्हें आयेगा
और पछतायेंगे ।
सोचते हैं कोई-कोई
जोश है जवानी का
जौहर दिखाने की मन में उमंग है ।
और इसी जोश में प्रचण्ड एक पर्वत से
खण्ड-खण्ड होने चले हैं दीवाने ये ।

कोई सोचते हैं
देश-भक्ति की तरंगों में
पंथ छोड़ इनने कुपंथ अपनाया है ।
बुरे कर्म का है फल होता सदैव बुरा
कर्म अपने ही इन्हें यहाँ खींच लाये हैं ।
ऐसे भी लोग कुछ
मन में जो सोचते हैं
जो कुछ भी किया सब ठीक ही तो किया है
जकड़े गये हैं अधिकार के शिकंजे में
जो आ पड़ेगी
उसे हौसले से झेलेंगे ।

और न्याय-मन्दिर में बैठे गौरांग-प्रभु
आवरण असित
प्रतीक लिये डर का—

सोचते हैं न्याय की तुला है हाथ अपने ही
भूलना है इन्हें और हमको भुलाना है।
फन्दे को चूमेंगे
हमने भी सोच लिया
जब ये झुलाने तुले हुए हम सब को।
निश्चय ही न्याय पूर्ण रूप से मिलेगा
जब
न्याय की तराजू है अन्धे के हाथ में।

शासन ने घोर अपराधी है बताया हमें
और अपराध षडयन्त्र का लगाया है।
फेंका गया बम
जो है दिल्ली असेम्बली में
क्या वह हमारा ही किया हुआ कृत्य है ?
यदि यह सत्य है तो
प्रश्न दूसरा भी यह
बम फेंकने का क्या कारण विशेष है ?
शासन के प्रश्न ये
न्याय की समस्या यही
करना प्रकाशित है निज कर्तव्य को।

बम फेंकने की
जो है घटना घटित हुई
सत्य वह
किन्तु न्याय-योजना असत्य है।
बम फेंकते है हमें देखा किसी ने नहीं
यह वक्तव्य एक तोता-रटन्त है।
सार्जण्ट टेरी ने छीनी पिस्तौल—
यह बाल-कल्पना की उड़ान मात्र लगती है।

पिस्टल रही हो हाथ
कोई वीर आज तक
सामने की कौन कहे
पीछे नहीं आया है।

बम क्यों फेंके गये ?

बम क्यों फेंके गए
यह प्रश्न सामने है
उत्तर है—
शासन की प्रेरणा का फल है।
दमन
कुचक्र
अधिकार-गर्व शासन का
प्रेरक हैं ये ही हमारे विद्रोह के।
व्यक्ति से न शत्रुता है
शत्रुता कुशासन से
देश यह हमारा और शासन तुम्हारा हो ?
खून से पसीने से बाग लहलहायें हम
और फल आयें तो तुम उन्हें तोड़ लो।

जीवन हमारा
सभी का पवित्र हमें
मानवता पावन है और हमें पूज्य है।
हमने घृणा के बीज बोना है न सीखा कभी
मानवता पूजी है सदैव आत्म-मन्दिर में।
न्याय की त्रिवेणी ने हमको कलंक कहा
पागलों की संज्ञा प्रदान हमें की है।

पागल नहीं हैं
पर्वाने-दीवाने हम
पोंछने चले हैं पर-तन्त्रता कलंक को।

हमने विरोध किया
ऐसे साम्राज्य का
जिसकी शैतानियों के क्रूर कारनामे हैं।
चाहती है
हम अपदस्थ हों प्रतिष्ठा से
भारत का कोई लाल कब यह चाहेगा ?
तानाशाह शासन ने राष्ट्र की पुकारों को
कह कर प्रलाप
ठुकराया है सदैव ही
जन-मत पुनीत भावनाएँ सदा रौंदी गईं
कहाँ ?
वहाँ
विधि का विधान जहाँ होता है।

यह शासन क्या है ?

पूछता है मन
यह शासन है वस्तु क्या ?
उत्तर है—
यह अपमान सम्मान का।
बोझ-सा लदा है भारतीय आत्माओं पर
ढोल की छिपाए पोल निज अंतराल में।
चिन्ह शैतानी शरारत का लिए यह
मित्रता के नाम
यह जीवित कलंक है।

खूँन के कमायें हम
और यह फूंक उसे
हम को ही आँख दिखलाये लाल-लाल कर।

'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल'
मौत का शिकंजा है
शासन का अस्त्र यह शोषण-निमित्त है।
शासन को पता क्या
नित्य दीर्घाओं से
हमने विचार सुने पक्ष के विपक्ष के।
धारणा बनी है
यह शासन विदेशी
यह स्मारक है बड़ा भय और आतंक का।
घोंटता है गला
निरुपाय श्रमिकों का यह
और बनता है कब्र जीवित इंसानों की

शासन के कान खोले गये हैं

जन-मत को रौंद-रौंद
गाज भी गिराई गई
भारत के मान-सम्मान पर बार-बार
पेट को पकड़
हाय ! हाय ! कर रोते रहें
गाज कानूनों की गिरी है मजलूमों पर।
वह कानून जो कि लाठी है शासन की
श्रमिक की भैंस दुह
हाँकती है मार-मार !

शिकवे-शिकायत सुनेगा आज कौन ?
सब
बैठे हैं कान बन्द किये
आँख मूँद कर।

अस्थि-दान
रक्त-दान
श्रमिक बिचारे करें
इस साम्राज्य के भवन-निर्माण को।
और उन्हें पैरों से रौंदा जाय नित्य प्रति
आह निकले तो वह
घोर अपराध है।
जुल्मों की चोट लगे
और आक्रोश
क्यों लावा-सा उठे नहीं
उर को विदीर्ण कर ?
प्रार्थनाएँ
याचनाएँ
कचरे की टोकरी में डाली जाँय
और दुत्कार भी पिलाई जाय।

मानव जो चीर उर
वेदना दिखाये तो
देखे न आँख
कान बहरे सुनें नहीं
बहरे हैं शासन के कान
खोलने को उन्हें
बम के धड़ाके इसलिये अनिवार्य थे।

सतयुगी अहिंसा के दिन लद गये

बल के प्रयोग से दलित असहाय हों
तब यह कृत्य हिंसा की परिभाषा है ।
बल का प्रयोग शुभ-कार्य के निमित्त हो
हिंसा नहीं है
एक साधन है साध्य का ।
बल के प्रयोग का अभाव सर्वथा ही रहे
ऐसी अहिंसा
कल्पना है सतयुग की ।
बल का प्रयोग अनिवार्य हमें हो गया
हमें सतयुग की अहिंसा नहीं चाहिए ।

लक्ष्य अति पावन है
अपने सु-राज का
साधन हमारा क्यों अहिंसा कहलायेगा ?
हिंसा की हिंसा
अहिंसा का रूप है
और यह अहिंसा हमारा अस्त्र आज है ।
हिंसा न होगी वह
पाशविक शक्तियों को
शक्ति का प्रयोग कर राह पर लायेंगे ।
क्योंकि उपचार सब व्यर्थ सिद्ध हुए
अब
औषधि है शेष
मात्र दंड के विधान की ।

भारतीय सागर तरंगित है क्षोभ से
खतरे का चिह्न मात्र
हमने है टाँग दिया।
शासन का पोत ले
स्वदेश लौट जाओ तुम
डूबे न यह भारतीय तूफान में।
हमने बताया है—
क्रान्ति चिनगारी एक
आज जो उठी है
कल शासन को खायेगी।
ढायेगी जुल्मों को
जुल्मी कुशासन को
दिव्य-ज्योति भारत के लिये बन जायेगी।

क्रान्ति जो जगाई थी राणा प्रताप ने
आज भी सुलगती है
वह उर-उर में।
क्रान्ति के पुजारी थे
गुरू गोविन्दसिंह
प्राण थे जगाये नये इस सुप्त देश में।
क्रान्ति के उपासक थे
क्षत्रपति शिवा वीर
आततायियों को बन गये महाकाल वे
मुस्तफा कमाल ने कमाल दिखलाया कभी
चेतना थी भरी खरी
निज देश-धर्म में।

क्रान्ति मंत्र फूंक-फूंक जॉर्ज वाशिंगटन
मुक्ति के बने थे दूत स्वर्णिम विहान में।

गेरीबाल्डी ने और लेनिन ने क्रान्ति-मंत्र
सिद्ध कर बदला था अपने समाज को।
और उद्घोष
रोषपूर्ण है हमारा आज
क्रान्ति-अर्चना के लिये हम कटि-बद्ध हैं।
क्रान्ति से जियेंगे
हम क्रान्ति को जियेंगे अब
साँस-साँस बोलेगी—
'क्रान्ति चिर-जीवी हो।'

हमारे इरादे

प्रेरणा कहाँ से मिली
हमने बताया अभी
और अब इरादों की व्याख्या अपेक्षित है।
बात बार-बार एक कहते रहे हैं हम—
हम भी उपासक हैं विश्व-बन्धुत्व के
पूज्य है
अवर्णनीय
और वन्दनीय भी
मानव का जीवन पवित्र हम मानते।
जानते हैं—
लेना उसे पातक महान है
उसका संरक्षण ही अर्चना स्वयं है।

मानव की सेवा में प्राणों का त्याग हम
हँस कर करेंगे
कर्तव्य की पुकार पर।

सेवक हैं देश के
सिपाही न भाड़े के
सीखा नहीं है
जान लेना निर्दोष की ।
किन्तु
आरोप जो लगाया—
बम फेंका गया
निश्चय ही फेंका गया
हम स्वीकारते ।
बम से विनाश किसी जीवन का हुआ नहीं
घायल भी कोई नहीं आघात से ।

कुछ को खरोंचें मात्र लगी हैं
नगण्य जो
सिद्ध है
किसी के प्राण लेना न अभीष्ट था
'बम शक्ति-शाली थे'
होता यदि सत्य यह
भवन सभा का शमशान बन जाता तो ।
बेंच और लकड़ी के चौखटे की मध्य-भूमि
रिक्त जो पड़ी थी
लक्ष्य उसको बनाया गया
हमला नहीं था प्राण-घातक कदापि यह
मिथ्या ही हम पर लगाया आरोप है ।

हत्या ही लक्ष्य यदि हमने बनाया होता
जॉन साइमन होते पहले शिकार तो ।
जन-मन घृणा के हो शिकार वहाँ बैठे थे
उनको शिकार क्या बनाते हम गोली का ।

विज्ञ जो विशेषज्ञ शासन के
कहते हैं—
बम विस्फोट एक जादू और मंतर था।
ठीक ही तो कहा—
वह जादू और मंतर था—
दो-दो बम फटे
पर मरा नहीं एक भी।

विचार अमर हैं

चट्टानी वक्ष तोड़
निर्झर उभरता है
झर-झर-झर
भर-भर-भर
बहता प्रमत्त हो।
क्यों न उद्दण्ड शिला-खण्ड हों प्रचण्ड अति
मर्दन-मद-मान कर
रौंद-रौंद चलता है।
निर्झर का स्वप्न-भंग होता कदापि नहीं
बनता प्रवाह नदी-नद का अबाध है।
यह प्रवाह
धारा के रूप में प्रवर्तित हो
जीवन का दान करता है विश्व-जीवन को।

क्रान्ति का प्रगल्भ उत्स
उत्थित प्रमाद-सा
उद्वेलित हो उठे प्रकुप्त अंतराल से—
कौन उत्पीड़न-दमन रोक पाया उसे ?
कारा का बाँध क्रान्ति-धारा को व्यर्थ है।

क्रान्ति

जो हमारे लिए दिव्य प्रेरणा है एक
और परिचायिका हमारे उष्ण रक्त की—
कैसे रुकेगी वह ?
कैसे चुकेगी वह ?
कैसे झुकेगी अन्याय के प्रहार से ?

सूली के फूलों से
फाँसी के भूलों से
स्वप्न-भंग क्रान्ति के न होते
नहीं होंगे कभी ।
पुण्य के प्रवाह से
शेरों की राह से
संकल्पी चाह से
फलेंगे और फूलेंगे ।
क्रान्ति-पंथ हमने चुना है जान-बूझ कर
इसे छोड़ देना कल्पना का स्वप्न-मात्र है ।
प्राण पर तुली हुई
खून में घुली हुई
क्रान्ति है हमारे लिये जीवन की साँस-सी ।

क्रान्ति के उपासकों ने
क्रान्ति का प्रतीक
बम फेंक उद्घोष करदिया नव-क्रान्ति का ।
आत्म-सम्मान सह
अपने समर्पण से
रक्षण किया है सिद्धान्त का
सगर्व आज ।

दो इकाइयाँ नगण्य
हम जैसी लील कर
न शासन को गर्व हो कि राष्ट्र दब सकेगा अब ।
किन्तु राष्ट्र उगलेगा
ज्वाला और लावा अब
होगा विनाश
सर्वनाश
साम्राज्य का ।

अंधाधुंध कारादेश
लौह-सींखचे न कभी
रोकने में थे समर्थ राज्य-क्रान्ति फ्रांस की ।
विप्लव की गूंज
साइबीरिया की खानों से
ऐसी उठी
दबी नहीं रूसी तलवार से ।
खूनी इतवार और भाड़े के सैनिकों से
कुचली स्वतंत्रता न गई आयर्लैण्ड की ।
कैसे फिर भारत में
काले कानून कई
क्रान्ति-ज्वाल लीलने में होंगे समर्थ कभी ।

क्रान्ति क्या है ?

पूछा न्याय-मन्दिर ने
हम से
है क्रान्ति क्या ?
क्रान्ति
भावनाओं का एक उन्माद है ।

यह उन्माद
उन्माद ध्वंसकारी नहीं
मंडन की क्रोड़ में लिये है कर्मशीलता ।

गृह
परिवार
या समाज की विषमतायें
स्वार्थ-लिप्सायें जब विद्रूपित होती हैं—
पीड़ित
प्रताड़ित
दलित भावनाएँ तब
उत्थित हो जूझती हैं
यही जन-क्रान्ति है ।

क्रान्ति
यह विरोध प्रतिशोध व्यक्तिगत नहीं
धर्म नहीं यह पिस्तौल और बम का ।
रूप खून-खच्चर का क्रान्ति है कदापि नहीं
लोक चेतना की यह बुलन्द आवाज है ।
क्रान्ति
अन्याय के लिये है न्याय का प्रहार
क्रान्ति
संघर्षशील नीति है अनीति को
क्रान्ति
आलोक है समाज और जीवन का
कुत्सित कुरीतियों के लिये अभिशाप है ।

प्रकृति और मानव के जीवन का धर्म क्रान्ति
क्रान्ति उपचार एक
सत्य के अजीर्ण का ?

मोह

मद

मत्सर

असत्य स्वार्थ-लिप्सादि

अति परिमाण में सुपाच्य नहीं सत्य को।

विकृत हो सत्य स्वर्ण-खोट के समान है

क्रान्ति उसे शोधक है

तीव्र तेजाब-सा।

ज्वाला में तपा-गला

विकृति की खोट जला

सत्य को निखार क्रान्ति कुन्दन बनाती है।

प्राकृत उद्वेग

क्रान्ति मानव के चिन्तन का

गुंफित विचारों का यह विस्फोट है।

उर एक ज्वाला-मुखी है

क्रान्ति लावा है

अनय, असंयम, असत्य के विनाश को।

क्रान्ति

तीव्र आँधी जो उठ कर उड़ाती,

समाज राजनीति-जन्य थोथे कुविचारों को।

क्रान्ति के झकोरे उस धूल को उड़ाते हैं

जमती जो शनैः शनैः

न्याय कानून पर।

क्रान्ति

उद्घोषणा है समता समानता की

क्रान्ति

चिर शत्रु यह वर्ग और भेद की।

क्रान्ति को न सह्य इंसान हैवान बने
ऐड़ी पर चोटी का तीव्र आक्रोश हो।
क्रान्ति
विध्वंसक पैशाचिक व्यवस्था की
जिनसे मनुष्य है मनुष्य को निचोड़ता।
क्रान्ति
अधिकार-वाद के विरुद्ध नारा है
करता जो शंख-नाद व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का।

क्रान्ति
आवेश की क्षणिक उपलब्धि नहीं
भूमिका है क्रान्ति
न्याय-नीति के प्रबन्ध की।

क्रान्ति
दिव्य-ज्योति एक
जिसके प्रकाश में
धुंधवित वर्तमान उज्ज्वल भविष्य है।
क्रान्ति
भू-कंप एक
जिसके प्रकंपन से
होते पद-लुण्ठित मुकुट दर्प-दम्भ के
क्रान्ति-गर्जना का घोष
जिसको श्रवण कर
आततायियों के कलेजे काँप उठते हैं।

क्रान्ति एक दर्पण है जिसमें विकृति भी
आकृति का भव्य रूप धारण कर दिखती है।
क्रान्ति पोंछती है लेख मानव की कुत्सा के
लिखती सु-अंक विश्व-जीवन के भाल पर।

क्रान्ति
यज्ञ-शाला की वेदी पवित्र
जहाँ
स्वाहा के सरगम में जीवन का होम है
क्रान्ति
मस्तकों के दानियों का पुण्य-पर्व एक
जीवन है क्रान्ति
क्रान्ति यौवन की धूप है ।

श्रौर क्रान्ति-देवी के चरणों के वन्दन को
प्राणों के फूलों का करके समर्पण
वाट जोहते हैं उत्कण्ठा से उस क्षण की
साधना को सिद्धि का मिलेगा वरदान जब ।
दिव्य-ज्योति में विलीन
जीवन की ज्योति कर
हम
पर्वानों के प्रण को निभायेंगे ।
आत्म-संगीत के स्वरों की गूँज होगी यही—
"मुक्त राष्ट्र हो अमर !"
"क्रान्ति चिर-जीवी हो !"



महान् क्रांतिकारी डॉक्टर गयाप्रसाद

डॉ० गयाप्रसाद लाहौर षडयंत्र केस के अभियुक्त के नाम से प्रसिद्ध हैं। क्रान्तिकारियों को अपने यहाँ आश्रय देना तथा अस्पताल की आड़ में बम बनाने के लिये रासायनिक सामग्री जुटाना इनका काम था। सहारनपुर के बम के कारखाने का संचालन आपने किया और वहीं पकड़े गये।

व्यापक धर-पकड़, और ऐतिहासिक अनशन

बहरे कानों ने सचमुच कुछ भी सुना नहीं
वह न्याय-तुला शासन की फिर डगमगा गई,
आजन्म कैद, दोनों सिंहों को दण्ड मिला
बलिदान-भावना और अधिक जगमगा गई।

पर यह तो केवल पटाक्षेप था नाटक का
था शेष अभी होने को और करुण अभिनय,
साण्डर्स काण्ड के सूत्र हाथ लग बैठे कुछ
था भगतसिंह पर हावी अब फिर न्यायालय।

सुखदेव बनाते बम थे पकड़े गये, और
सान्डर्स-काण्ड के वे भी अब अभियुक्त बने,
शासन की आँखों में डोरे थे लाल-लाल
दिखते थे उसके तेवर बिलकुल तने-तने।

जयदेव और शिव वर्मा भी बच नहीं सके
डॉक्टर प्रसाद,[1] साथी यतीन्द्र[2] धर लिये गये,
साथी श्री कुन्दनलाल, राजगुरु, अजय,[3] विजय[4]
थे सब ही के सब अब बन्दी कर लिये गये।

---

१. डॉक्टर गयाप्रसाद—ये सहारनपुर बम फैक्टरी में पकड़े गये थे। शिव वर्मा की गिरफ्तारी भी वहीं हुई थी।

२. यतीन्द्रनाथ दास।

३. अजय घोष।

४. विजयकुमार सिन्हा।

इस गर्म खून पर अब कानून हुआ हावी
हावी थीं उन पर अब विधान की धाराएँ,
आती न नींद थी शासन को जिनके कारण
उन सब की नींद चुराती थीं अब काराएँ।

बालू-मिट्टी-संयुक्त रोटियाँ खा लेते
पर असम्मान सहने के वे न रहे आदी,
शासन के पंडों को सुधारते थे बाहर
वे बने यहाँ अब जेलों के सुधारवादी।

हम मानव हैं, फिर यह व्यवहार न हो पशुवत्
हम नहीं लुटेरे, चोर, उचक्के, डाकू हैं,
हम अपराधी हैं नहीं, युद्ध के बन्दी हैं
हम शासन से जूझे हैं, वीर लड़ाकू हैं।

इसलिये प्राप्त हों सुविधाएँ हम को वैसी
यह भेद-भाव, पशुवत् व्यवहार न हमें सहन,
हैं अस्त्र नहीं, जो शासन का सामना करें
अब अस्त्र हमारा यहाँ एक ही है—अनशन।

अनशन ? हाँ सचमुच अनशन अपनाया सब ने
बिलकुल ही उनने छोड़ दिया खाना-पीना,
जब तक जीवन, सम्मान नहीं जाने पाये
अपमान सहन कर जिये, भला वह क्या जीना।

पर शासन तो था तुला उन्हें जीवित रखने
जीवित रख कर तिल-तिल कर उन्हें सुखाने को,
था तुला हुआ, धीरे-धीरे उन लोगों को
वह मृत्यु और जीवन के बीच झुलाने को।

इसलिए एक पर आठ-आठ मुस्तंडे चढ़
बल से, नलियों द्वारा रस उन्हें पिलाते थे,
था उन्हें मारना, धीरे-धीरे रगड़-रगड़
इसलिये दूत यम के ये, उन्हें जिलाते थे।

बेड़ियों और हथकड़ियों में ही न्यायालय
ले जाते इन भूखे प्यासे कृश-गातों को,
देवता न्याय-मन्दिर के पिघले नहीं कभी
लख उनके तन पर हुए क्रूर आघातों को।

थे सिंह आन पर दृढ़, झुकने तैयार न थे
सम्मान-सुरक्षा बनी धरोहर जीवन की,
घिस रही रेख थी जीवन की धीरे-धीरे
बढ़ रही रेख थी पर उन सब के अनशन की।

यतीन्द्रनाथ दास का आत्म-बलिदान

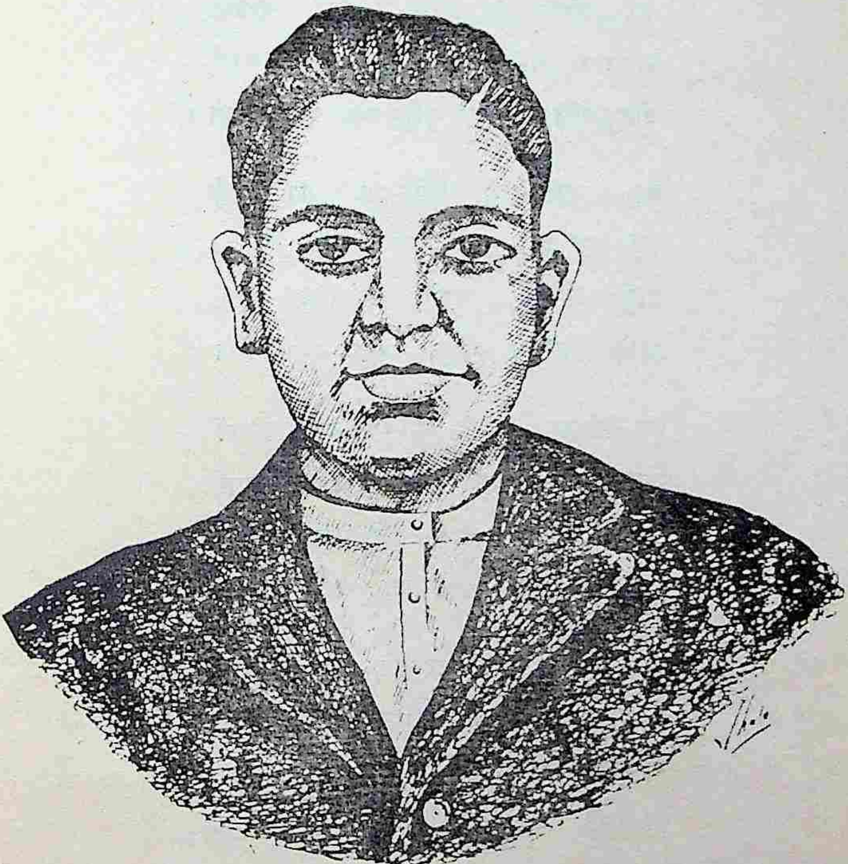
चुक गया स्नेह, रह गई अकेली बाती
अब बुझने को ही दिखती लौ जीवन की,
अब लक्ष्य-बिन्दु तक आ पहुँची रेखायें
साथी यतीन्द्र के जीवन की अनशन की।

घटती जाती हैं घड़ियाँ, पल घटते हैं
हो गई साँस की गति भी अति प्रश्लथ है,
धड़कनें हृदय की भी अब डूब रही हैं
अवरुद्ध हो गया नाड़ी का भी पथ है।

यह कौन कह उठा—"परमेश्वर यदि तुम हो
कुछ तनिक और इस साथी को जीवन दो,
कर दो सतेज फिर इसकी श्लथ साँसों को
कुछ और धड़कनें, नाड़ी को थिरकन दो।"

ये शब्द सुने, सचमुच ही जीवन लौटा
बुझने वाली लौ अकस्मात फिर भभकी,
जो आग रह गई थी अंतर में बाकी
पूरी प्रचण्डता से वह अब फिर धधकी।

"क्यों दुआ माँगते हो तुम परमेश्वर से ?
स्वीकार न होगी मुझे भीख जीवन की,
जग में केवल परमेश्वर कर्म हमारे
हम में ही रहती शक्ति सृष्टि-नियमन की।



अमर हुतात्मा साथी यतीन्द्रनाथदास

वीर-भूमि बंगाल का लाड़ला वह यतीन्द्र

- जिसने भगतसिंह और उसके साथियों को बम बनाना सिखाया।
- जिसने जेलों में होने वाले अमानुषिक अत्याचारों के विरुद्ध दीर्घ अनशन करके जेल में ही प्राण त्याग कर दिये।
- लाहौर से कलकत्ता तक जिसकी शव-यात्रा ने शहीदों के सम्मान का चिर-विश्रुत आलेख तैयार कर दिया।

इसलिये मुझे जाने दो, विदा करो तुम
मेरे जीवन के लिये न दुआ मनाओ,
बलिदान माँगती है भारत की धरती
जीवन-बलि देकर मुक्ति-पर्व घर लाओ।"

यह कहते-कहते मुक्ति-पंथ का पंछी
उड़ गया तोड़ कर पिंजड़ा अपने तन का,
आहुत जीवन को वरण कर लिया उसने
जीवित रहस्य देकर जीवन-दर्शन का।

हम भी इस शव के अन्तिम दर्शन कर लें
जनता भी देखो कैसी उमड़ी आई,
यह वीर आज कंधों पर चढ़ जायेगा
फूलों से यह अर्थी जा रही सजाई।

आँखें हैं जो झर-झर-झर बरस रही हैं
हैं प्राण विकल, जो फूट-फूट कर रोते,
भारत-माता का लाल लुट गया देखो
नर-नारी, छाती कूट-कूट कर रोते।

जा रहा लाड़ला यह सपूत माता का
जा रहा वीर यह, इस धरती का बेटा,
इस धरती का सम्मान उठाया जिसने
जा रहा वही कंधों पर लेटा-लेटा।

देखो, कैसे ये बच्चे बिलख रहे हैं
ये युवक गिर रहे हैं पछाड़ खा-खाकर,
माताओं की यह दशा न देखी जाती
क्या उमड़ रहा है दूध, फूल बरसा कर।

बहनों ने अपना प्यारा भैया खोया
है कौन ? उन्हें जो धीरज दे, समझाये,
करुणा ही जब रोदन करने बैठी हो
क्यों पाहन का भी हृदय न भर-भर आये।

जो सुनता है, सब छोड़ साथ चल देता
यह देश-भक्त की अर्थी है जो जाती,
कोई न हाथ, जो नहीं फूल बरसाता
कोई न आँख, जो नहीं अश्रु बरसाती।

मत कहो, जा रहा है यह शव कलकत्ता
मत कहो, उसे देता लाहौर विदाई,
बंगाले की खाड़ी के घर मातम है
यह देख पंच-नद की छाती भर आई।

जा रही चीखती रेल, वीर का शव ले
व्याकुलता से छाती धड़-धड़ा रही है,
सिसकियाँ छोड़ती, वह कैसे क्या बोले
वाणी कुंठित, जिह्वा लड़खड़ा रही है।

दिल्ली आई, लो यह जन-सागर उमड़ा
चल-समारोह यह शव का गया सजाया,
छज्जे अटारियों से फूलों की वर्षा
सब ही ने श्रद्धा-स्नेह-भाव बरसाया।

ये स्निग्ध-स्वच्छ पथ, बरसा यहाँ न पानी
फिर क्यों इन पर कीचड़ पड़ रहा दिखाई,
यह कीचड़ जन-पद से कुचले फूलों का
जनता ने इतनी पुष्प-राशि बरसाई।

अब पुनः यात्रा, नगर कानपुर आया
जन-गंगा की क्या बाढ भयंकर आई,
है परिधि दृष्टि की जितनी, उस सीमा तक
नर-मुण्ड पड़ रहे केवल हमें दिखाई।

छटपटा रही है गाड़ी चल देने को
पर लोग न चलने देते उसको गज भर,
शव के दर्शन हों सुलभ, तभी जा सकती
ये लेटे कितने लोग रेल के पथ पर।

इस देश-भक्त के अन्तिम दर्शन करता
दिखलाई देता हमको यहाँ जवाहर,
गंभीर, मौन, निस्सीम वेदना उर की
चित्रित दिखती है जन-नायक के मुख पर।

व्यक्तित्व कौन यह अन्य एक तेजस्वी
ये कोई पंडित-प्रवर दिखाई देते,
यह माला-छापा-तिलक सुशोभित आनन
शव-दर्शन कर, ये दीर्घ आह भर लेते।

पहचान गये नेहरू, इन पंडित जी को
आगये अरे ! ये स्वयं चन्द्रशेखर हैं,
आजाद उपस्थित हैं अन्तिम-दर्शन को
कितने दिलेर, कितने निःशंक-निडर हैं।

क्या लम्बी-चौड़ी पगड़ी बाँध रखी है
उसके नीचे रख लिया छिपा कर बम है,
पिस्तौल, बगल-बन्डी के नीचे शोभित
आगये धड़ल्ले से, साहस क्या कम है।

मंत्रोच्चार कर रहे शान्ति के हित ये
रक्षक-दल तत्पर होकर भीड़ हटाता,
क्या पता पुलिस को, वह पथ जिसे बनाती
उसका शिकार ही उसके आगे जाता।

सर फोड़ रही वर्षों से पुलिस पकड़ने
पर ये हैं जो उसको चकमा दे जाते,
ये पुलिस अफसरों से जा हाथ मिलाते
पर साफ निकल जाते हैं, हाथ न आते।

सैकड़ों पुलिस वाले आगे-पीछे हैं
पर देश-भक्त के करते ये शव-दर्शन,
कैसे संभव है, मन में इच्छा जागे
फिर रोक सके इनका पथ कोई बन्धन।

• • •

इस तरह सभी की श्रद्धांजलियाँ लेकर
प्रारम्भ यात्रा का अब फिर से क्रम है,
अवरुद्ध हुआ हर कण्ठ हिचकियों से है
हर आँख आज दिखलाई देती नम है।

यह कलकत्ता बन गया शोक का सागर
सागर अपनी मर्यादा छोड़ रहा है,
है असहनीय पीड़ा इसके अन्तर में
तट से टकरा कर यह सर फोड़ रहा है।

इस तरह देश के इस दीपक ने बुझकर
बुझते अरमानों में भी ज्योति जगादी,
यह ज्योति जगी, तो मची धूम कुछ ऐसी
उसने बलिदानों की ज्वाला सुलगादी।

जिन-जिन जेलों में क्रान्ति-वीर थे, सब ने
प्रारम्भ कर दिया फिर से क्रम अनशन का,
मच गई खलबली दुनिया भर में भारी
हिल गया तख़्त अत्याचारी शासन का।

था भगतसिंह जिसने सोलह हफ्ते का
अनशन करके सारे जग को चकराया,
हो गईं प्राप्त सुख-सुविधाएँ जेलों को
शासन का सर उसने इस तरह झुकाया।

सर्ग तेवीस

लार्ड इर्विन की ट्रेन की धज्जियाँ उड़ गईं

यह तरुण-तपस्वी निर्जन-वन में कौन यहाँ
एकान्त-साधना-लीन, जीर्ण इस खण्डहर में ?
किस सिद्धि हेतु मादक जीवन से ले विराग
यह ढाल रहा जीवन को संयम के स्वर में ?

यह प्रखर-शीत, हड़-कंप झकोरों का गर्जन
यह ध्यान-मग्न केवल कोपीन किये धारण,
जल रही कौन-सी आग विचारों में इसके ?
कर रहा कौन से मंत्रों का यह उच्चारण ?

चल पड़ा भक्त-दल, योगी से ले शुभाशीष
यह कौन नया प्रिय भक्त सामने आता है ?
स्वर में अगाध श्रद्धा भर, अभिनन्दन करके
योगी के चरणों में यह शीष झुकाता है।

"हो मनोकामना पूर्ण" सुभग वर मिलता है
अब दिख पड़ते हैं तपसी के अध-खुले नयन,
कर दृष्टि-पात सब ओर, पूछता है योगी—
"क्या कुछ खाने को लाया है बेटे सोहन !"[1]

यह क्या रहस्य ? बेटा सोहन बड़बड़ा रहा
पत्नी का भाई कह, करता है सम्बोधन,
कैसा योगी ? पूड़ियाँ मिठाई हड़प रहा
संबोधन का भी रस लेता है मन ही मन।

तो क्या ये कोई धूर्त और पाखंडी हैं ?
जो सिद्ध और साधक का करते हैं अभिनय,
किसको ठगने यह स्वाँग रचाया है इनने
क्यों पाप कमाते हुए न होता इनको भय ?

जी नहीं ! धूर्त ये नहीं, नहीं पाखण्डी भी
हाँ इन को साधक-सिद्ध कहें तो उत्तम है,
है बहुत बड़ा विध्वंस साध्य इन दोनों का
उस सिद्धि हेतु ही तो यह दारुण संयम है।

---

१. सोहन = यशपाल का, क्रान्तिकारी दल का नाम। प्रत्येक क्रान्तिकारी छद्म नाम से पुकारा जाता था।



महान् क्रान्तिकारी इन्द्रपाल

वह इन्द्रपाल

- जिसने वाइसराय लार्ड इर्विन की ट्रेन को बम से उड़ाने में सहयोग दिया था ।
- जो महात्मा के वेश में रेलवे लाइन के निकट एक जीर्ण खण्डहर में पन्द्रह दिन तक पड़ा रह कर गाड़ियों के आने-जाने के समय का निरीक्षण करता रहा था ।

योगी बन बैठा क्रान्ति-वीर यह इन्द्रपाल
यशपाल भक्त बन कर विनम्रता दिखलाते,
जब देखा, कोई और नहीं है इधर-उधर
ये दोनों ही फिर अपनी-अपनी पर आते।

भारत के वाइसराय लार्ड इर्विन, शिकार
होने वाले हैं बहुत शीघ्र इनके बम के,
योजना यही तो बनी साधना है इनकी
ये इसीलिए तो इस निर्जन में आ धमके।

प्रतिक्रिया शोक की इनके मन में क्रोध बनी
साथी यतीन्द्र का इनको बदला लेना है,
जो चला रहा है दमन-चक्र शासन, उसको
इस दमन-नीति का अच्छा उत्तर देना है।

बम-बाजी करके भगतसिंह को मुक्त करें
योजना दूसरी यह इन लोगों के मन में,
ये जटा रहे सब साधन अपनी सिद्धि हेतु
ये सब ही के सब लगे हुए इस चिन्तन में।

• • •

योजना पूर्ण थी उड़ी ट्रेन श्री इर्विन की
पर बाल-बाल बच गये, नया जीवन पाया,
साम्राज्य दानवी, सूरज के पथ-सा विशाल
इन क्रान्तिकारियों के मारे अब थर्राया।

'अज्ञेय'
तब भी और अब भी

यह कौन आत्म-रत महा-सिद्धि का संयोगी ?
दिख पड़ता है अपने में ही डूबा-डूबा,
जब सारी दुनिया हर्ष हिलोरों में दोलित
क्यों राग-रंग से इसका मन इतना ऊबा ?

बाहर प्रसरित हैं जन-कोलाहल की लहरें
यह लीन यहाँ प्रच्छन्न सत्य के चिन्तन में,
दिल्ली की सड़कों पर जन-मानस उमड़ रहा
यह स्वयं बना बन्दी अपनी ही उलझन में !

यौवन के इन उन्मद रंगीन क्षणों में क्यों
इसके मन में जीवन के प्रति विराग जागा ?
वह महा-सिद्धि है कौन ? साधनाहित जिसके
इसने जीवन-यौवन का सम्मोहन त्यागा ।

किन गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन में रत हो
यह भूल रहा है अपना ही अस्तित्व स्वयं,
यह परम-तत्व का अन्वेषक योगी महान्
कर रहा प्रकट यह इसका ही व्यक्तित्व स्वयं ।

क्या सत्-चित् का आनन्द रूप हम कहें इसे ?
या यह सदेह है परम सत्य का ज्ञान गहन ?
या यह है मानव में कोई असली हीरा ?
या ऋषि-कुल का यह श्रेय-अजेय वात्स्यायन ?



साहित्य एवं विज्ञान का क्रान्तिकारी स्वप्न
श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

वह अज्ञेय

- जो भारत-माता की पुकार पर अपने उच्च अध्ययन को तिलांजलि देकर क्रान्ति की लपटों में कूद पड़ा।
- जिसने भगतसिंह को जेल से छुड़ाने के प्रयास में सम्मिलित होकर दिल्ली में बम के कारखाने का संचालन किया।
- जिसने आज भी काव्य के क्षेत्र में क्रान्ति मचा रखी है।

योगी का पूछें नाम नहीं, हम गुण पूछें
हम परम-ज्ञान का इसको सच्चा श्रेय कहें,
है नाम-धाम से हमें काम ही क्या करना ?
इसलिए उचित है, हम इसको अज्ञेय कहें।

तो क्या करने बैठे अज्ञेय महाशय ये ?
किस आत्म-बोध को खोज रहे सूनेपन में ?
वह तत्व कौन सा, उलझ रहे हैं ये जिसमें ?
है ज्योति कौन-सी जो जागी इनके मन में ?

चिन्तन में मन, कर कर्म-साधना में रत हैं
जम रहे यहाँ ये जाने अपनी किस धुन में,
ये वस्तु उठाते एक, दूसरी धर देते
ये लगे हुए हैं जाने किस उधेड़-बुन में।

उपकरण जुटाये ये जाने कैसे-कैसे
जैसे कोई अद्‌भुत प्रयोग ये करते हैं,
ये एक हाथ में नली काँच की लिए हुए
कोई द्रव उसमें नाप-नाप कर भरते हैं।

फिर किसी अन्य द्रव में ये उसे मिला देते
इस भाँति रसायन यह कोई बन जाता है,
बन गया रसायन, पर अब कुछ अभिनव पदार्थ
यह देखो, आगे बनने का क्रम आता है।

लो, धुँआ लगा उठने, तैयार रसायन ये
हैं किसी घोल में धीरे-धीरे मिला रहे,
हों आत्म-सात दोनों ही द्रव, इसलिए उन्हें
ये नली डाल कर चक्रित गति से हिला रहे।

यह धुँआ विषैला, पीले-पीले रंग का है
उठ कर इनकी साँसों की गति को रोक रहा,
"मत करो काम यह, मृत्यु यहाँ संभावित है"
यह धुँआ इन्हें, यह बार-बार कह टोक रहा।

पर ये भी अपनी धुन के पूरे पक्के हैं
जो काम हाथ में लिया, नहीं वह छोड़ेंगे,
यह धुँआ मौत का भय इनको क्यों दिखलाता ?
आगई मौत, तो ये उसका पथ मोड़ेंगे।

वैसे सचमुच हैं सभी मृत्यु के योग यहाँ
जितने पदार्थ है, विस्फोटक ही हैं सारे,
फिर भी देखो, ये उनसे जम कर जूझ रहे
छिप गई मृत्यु जैसे इनके भय के मारे।

जी हाँ, पदार्थ ये विस्फोटक ही तो हैं सब
तैयार करेंगे मिल कर ये सब भीषण बम,
ये ब्रिटिश राज्य से लोहा लेने को उद्यत
निर्माण बमों का इसीलिए इनका उद्यम।

विध्वंस यज्ञ में सहयोगी सह-कर्मी हैं
यशपाल और श्रद्धेया बहिन प्रकाशवती,
साम्राज्यवाद का नाश बना सह-धर्म इन्हें
ये बने प्राण-पण से भीषण विस्फोट-व्रती।

श्री विमल जैन, साथी श्री गिरवरसिंह, और
कैलाश आदि भी आहुत करते यह ज्वाला,
तप-त्याग-साधना धन्य ! धन्य ! इन वीरों की
धरती के हित प्राणों को संकट में डाला।



महान् क्रान्तिकारिणी श्रीमती प्रकाशवती

श्रीमती प्रकाशवती ने क्रान्ति की मशाल अपने छात्र-जीवन से ही हाथ में ले ली थी। देश-हित के कार्य के लिये आपने अपने पारिवारिक सुखों का परित्याग कर क्रान्ति के कण्टकाकीर्ण पथ को अपनाया। महान् क्रान्तिकारी तथा विश्व-विख्यात उपन्यासकार श्री यशपाल से आपका विवाह जेल के अन्दर होना एक अभूतपूर्व घटना है।

श्रीमती प्रकाशवती ने दिल्ली की बम-फैक्ट्री के संचालन में उल्लेखनीय कार्य किया था।

लाहौर जेल पर होगा अब इनका धावा
जा भगतसिंह को बन्धन-मुक्त करेंगे ये,
जायेंगे अपने-अपने कफ़न साथ लेकर
संकल्प यही, मारेंगे या कि मरेंगे ये।

धरती की चिता और आसमान का कफन

उपवन के सुमनों ने सम्मान सदा पाया
किसने जाना कब कौन कहाँ वन-फूल खिला,
किसने जाना कब महका, कब वह मुर्झाया
कब बिखर धूल में वह अनदेखा फूल मिला।

अन-बूझे रहते सदा नींव के पत्थर हैं
अपनी छाती पर बोझ रखे प्रासादों का,
अभिनन्दन करते प्राप्त कँगूरों के पत्थर
तोरण वन्दनवारों के गर्व-प्रमादों का।

इस भारत-उपवन में कितने वन-फूल खिले
वे अनदेखे—अनजाने ही चुपचाप झड़े,
माताओं के लाढ़ले लाल जाने कितने
आजादी की मंजिल के नीचे दबे पड़े।

बन रहा नींव का पत्थर ऐसा ही, देखो
यह एक लाढ़ला लाल विश्व ने अनदेखा,
शायद कृतघ्न इतिहास भूल जाये इसको
अंकित न करे इसके उत्सर्गों का लेखा।

देखो, इसकी लाश पड़ी रावी-तट पर
लोहू-लुहान, जर्जरित, उपेक्षित, क्षत-विक्षत,
उड़ गये हाथ, आँतें सब बाहर निकल पड़ीं
आहत होकर हो गई देह कैसी विकृत।

इस निर्जन में, यह देश-भक्त की लाश पड़ी
हो गया विदा यह क्रान्ति-वीर भगवतीचरण,
कर जीवन का उत्सर्ग देश की धरती को
कर लिया वीर ने आज मृत्यु का स्वयं वरण ।

साम्राज्यवाद पर गिरने को जो बना, किन्तु
फट गया भूल से इसके हाथों में वह बम,
आक्रोश-वलित विस्फोट हुआ उसका ऐसा
जीवन की बलि के साथ हुआ उसका उपशम ।

वह लाल जिसे जाने कितने अरमानों से
माँ की पागल ममता ने दुलराया होगा,
ठण्डी रातों में गरम धड़कनों पर रख कर
जिसका माथा साँसों से गरमाया होगा ।

जिस आँखों के तारे को चन्दा कह-कह कर
माँ की आशाओं का सूरज चमका होगा,
लख जिसकी भोली दुग्ध-धवल मुस्कानों को
माँ का आनन दर्पण जैसा दमका होगा ।

यह लाश पड़ी उसकी ही क्षत-विक्षत होकर
रावी के इस सुनसान और निर्जन तट पर,
सिन्दूर लुट गया उस सुहागिनी का, जिसकी
धड़कनें विहँस उठती थीं इसकी आहट पर ।

दुर्भाग्य और इससे बढ़ कर क्या हो सकता
हो गये अरे ! काले मुंह उसके सपनों के,
वह कंधों पर चढ़ कर दो गज भी जा न सका
पा नहीं सका वह दो आँसू भी अपनों के ।

चुपचाप साथियों ने दी उसको जल-समाधि
थे विवश, मृत्यु का करते कैसे विज्ञापन,
हो जाता भंडाफोड़ न क्रान्ति-योजना का ?
इसलिए आँसुओं को पीकर की मृत्यु सहन।

इस भाँति लाल वह भारत-माँ का विदा हुआ
भगवतीचरण बन ज्योति-किरण बलिदानों की,
झड़ गया महकता एक फूल वह अनदेखा
बलि देकर, जीवन के मुकुलित अरमानों की।

मरते-मरते भी यही भाव प्रज्ज्वलित रहा—
"अभियान मुक्ति का किसी मूल्य पर रुके नहीं,
बलिदान बड़े से बड़ा लगे हमको नगण्य
अभिमान हमारा किसी दमन से झुके नहीं।

लाहौर जेल गूंजे बम के बिस्फोटों से
बन सके जिस तरह, भगतसिंह को मुक्त करो,
धरती की आजादी ही सब का लक्ष्य रहे
आजादी के प्राणों में अपना खून भरो।"

वो-वो भगतसिंह

लाहौर जेल के लौह-सींखचो ! बोलो तो
क्या हुआ, आज जो मुझको नींद नहीं आती ?
क्यों आज करबटें बदल रहा मैं पड़ा-पड़ा ?
क्यों आज विवशता कोई मुझको तड़पाती ?

यह नहीं कि मुझको आज कष्ट हो रहा यहाँ
यह नहीं कि मुझको अटपट लगता भूमि-शयन,
यह नहीं कि मैं इस जीवन से हूँ ऊब गया
यह नहीं कि मुझको आज भार लगता जीवन ।

क्यों नहीं अरे ! ये लौह-सींखचे बोल रहे ?
क्यों नहीं प्रश्न का देते ये कुछ भी उत्तर ?
इस काल-कोठरी का यह काला अंधकार
क्यों हलचल-सी मचा रहा है मन के अन्दर ?

क्यों हिलता-डुलता-सा दिखता यह अंधकार ?
दिख रही मुझे इस तम में भी किसकी आकृति ?
यह शक्ल कहीं देखी-सी दिखती है मुझको
पर लक्षित है इस मुख पर यह कैसी विकृति ?

रे ! यह तो है विद्रूप स्वयं मेरा अपना
तो क्या यह आकृति मेरा ही अन्तर्मन है ?
क्या यह मेरी जिज्ञासा का उत्तर देगा ?
क्या इसीलिए इसके अधरों पर थिरकन है ?

"हाँ, इसीलिए मेरे अधरों पर थिरकन है
तुम क्या हो, तुमको यही बताने आया हूँ,
तुम भगतसिंह हो, भगतसिंह का मन हूँ मैं
मैं शक्ल तुम्हारी तुम्हें दिखाने आया हूँ।

तुम इतने खुश हो, फूले नहीं समाते जो
फिर बोलो, तुम को नींद कहाँ से आयेगी ?
तुम खुश हो, तुम कल जेल तोड़ कर भागोगे
अपनी ही टोली आकर तुम्हें छुड़ायेगी।"

"हाँ ! हाँ ! कल मैं यह जेल तोड़ कर भागूँगा
तो क्या यह कोई पाप-कर्म कहलायेगा ?
योजना हमारे दल की है यह गोपनीय
वह धूम-धड़ाका कर मुझको ले जायेगा।

यह शासन, जो बदनाम दमन के लिए बहुत
यह कृत्य तमाचा होगा अब उसके मुँह पर,
हम मुट्ठी भर, यह शासन पर्वत-सा विशाल
यह शक्ति-परीक्षण का होगा अच्छा अवसर।"

"क्यों भगतसिंह ! अपने को ही धोखा देते ?
यह कहो, सुनहली दुनियाँ तुम्हें बुलाती है,
यह जेल, काटने को फिरती है अब तुमको
बाहर की रंगीनी तुमको ललचाती है।

क्या देश-भक्ति का ज्वार हो गया वह ठण्डा ?
बलिदान-भावना किस दुनिया में समा गई ?
सो गई तमन्ना सर देने की कहो कहाँ ?
जिन्दा रहने की चाह तुम्हें वह थमा गई।"

"आरोप नहीं, यह तो अन्याय सरासर है
जग का सम्मोहन नहीं मुझे आकर्षण है,
बाहर रह कर मैं अधिक काम कर सकता हूँ
योजना हमारी अब भीषण संघर्षण है।

अब यहाँ पड़े रह कर अपना सर देना क्या
अब यही तमन्ना है, शासन का सर कुचलूं,
संगठित शक्ति का कर विराट आयोजन मैं
अन्यायी शासन का पूरा नक्शा बदलूँ।"

"तुम बच्चों को इन बातों से बहका सकते
पर भूल रहे क्यों भगतसिंह ! मैं तो मन हूँ,
फिर मुझे भुलावा तुम कैसे दे सकते हो ?
मैं साथ तुम्हारे रहता आया हर क्षण हूँ।

कुछ भी कह-सुन कर तुम अपने को समझालो
तुम किन्तु भगोड़े ही आखिर कहलाओगे,
वीरता नहीं, यह होगा वह कुत्सित कलंक
तुम नहीं खून से भी जिसको धो पाओगे।

दिल्ली असेम्बली का वह बम विस्फोट-काण्ड
फिर आत्म-समर्पण वहाँ तुम्हारा कर देना,
भारत के सोए गौरव का वह उत्थापन
बलिदान-भावना वह लोगों में भर देना।

पुँछ जायेगा, धुल जायेगा वह यश बिलकुल
यह भी संभव है, यह दुनिया तुम पर थूके,
घर और घाट दोनों के नहीं रहोगे तुम
जो मिला तुम्हें अवसर, यदि तुम उससे चूके।"

"यह तर्क मान्य, पर क्या होगा उन मित्रों का
जो तैयारी से मुझे छुड़ाने आयेंगे,
संकेत 'कार्य' का दिया न यदि मैंने उनको
वे क्या विचार मेरे प्रति लेकर जायेंगे ?

किस तरह दिखाऊँगा मैं उनको अपना मुँह ?
विश्वास-घात दल के प्रति क्या न पाप होगा ?
क्या कायर की संज्ञा न मुझे वे देंगे सब ?
क्या मुझको अपना जीवन नहीं शाप होगा ?

"हाँ, जीवन तुम्हें शाप होगा, यदि सचमुच तुम
विश्वास-घात अपने प्रति ही अपनाओगे,
इससे बढ़कर क्या और पाप होगा, यदि तुम
अपने को ही धोखा देकर बच जाओगे।

जीवित रह कर तुम नहीं काम वह कर सकते
जो काम तुम्हारी मृत्यु यहाँ कर जायेगी,
जीवित रह कर दो-चार मार लोगे दुश्मन
पर मृत्यु समूचे शासन को थर्रायेगी।

आत्मोत्सर्ग कर सके अगर तुम, तो सुनलो !
यह देश सो रहा जो, तुम उसे जगा दोगे,
तुम अमर रह सकोगे सदियों की साँसों में
तुम मर कर सचमुच अपनी मृत्यु भगा दोगे।

तुमको सुभाष की मान्य योजना हुई नहीं
नेहरू-द्वय का प्रस्ताव सदा ही ठुकराया,
तुमको गणेशशंकर भी विचलित कर न सके
था महामना ने तुमको कितना समझाया।

यदि भाग गये, उन सबको क्या उत्तर दोगे ?
सिद्धान्त कौन सा फिर उनको समझाओगे ?
जिस भारत में तुम गांधी जैसे ही पुजते
क्या नहीं भगोड़े तुम उनसे कहलाओगे ?

इसलिए, मार्ग जो अपनाया है, डटे रहो
आत्मोत्सर्ग ही सच्ची मुक्ति तुम्हारी है,
वह मृत्यु नहीं जो तुमको लेने आएगी
अमरत्व प्राप्त करने की ही तैयारी है।"

"मेरे ही मन ! कितना कृतज्ञ हूँ मैं तेरा
तूने फिर मुझको आज मार्ग दिखलाया है,
इस काल-कोठरी के तमसावृत घेरे में
कर्तव्य-सूर्य बन कर तू सम्मुख आया है।

संकल्प यही फिर मैं अपना दुहराता हूँ
जीवन-बलि से ही मुझको देश जगाना है,
याचना मुक्ति की, पाप बने मुझको भीषण
आत्मोत्सर्ग की निधि ही मुझे कमाना है।

यह मौत मुझे जो मिले, मुक्ति हो धरती की
दुर्भाग्य-निशा को चीर, नई दिन-मणि ला दे,
यह मौत, बने जीवन हर भारत-वासी को
इस धरती पर यह सौ-सौ मंगल बरसा दे।

• • •

तो प्राण-दण्ड ही था निर्णय न्यायालय का
तैयार किये शासन ने फाँसी के झूले,
सुखदेव, राजगुरु, भगतसिंह सुन निर्णय यह
हर्षोन्माद से दिखते थे फूले-फूले।

आजाद की रक्त-सरस्वती

वन्दित-अभिनन्दित मोक्ष-प्रदाता तीर्थराज
वह पुण्य-त्रिवेणी का संगम पावन प्रयाग,
गंगा यमुना का मिलन कलुष के लिए काल
वह भक्ति और श्रद्धा का चिरजीवी सुहाग।

जिज्ञासु भक्त के लिए सहज उत्कण्ठा यह
क्यों सरस्वती के प्राप्य नहीं पावन दर्शन ?
फिर इसे त्रिवेणी का गौरव किस तरह प्राप्त
जब दर्शित दो धाराओं का ही मधुर मिलन।

इस जिज्ञासा की शान्ति इस तरह होती है
उत्तर मिलता है धर्म-धुरीणों के द्वारा—
अन्तर-प्रवाह है सरस्वती का युग-युग से
पुण्यों के फल से ही दर्शित है वह धारा।

सच है, प्रयाग के पुण्यों का था उदय हुआ
जब सरस्वती के पाए लोगों ने दर्शन,
बहु-धाराओं में प्रकट हुई वह सहसा ही
अब चिर-विश्रुत चिर-वन्दनीय है वह उपवन।

उपवन प्रयाग का, जहाँ चन्द्रशेखर का तन
था सरस्वती का बना सहज पावन उद्गम,
जब वक्ष और मस्तक से शोणित उबल पड़ा
तो तीर्थ-राज बन गया त्रिवेणी का संगम।

घिर गया वीर गोरी सेनाओं के द्वारा
आजाद, किन्तु मरते दम तक आजाद रहा,
आतंकित करता रहा सदा वह रिपु दल को
बन्दी होने का नहीं कभी अपमान सहा।

जब छल से उसको घेर लिया सेना ने, तो
दुर्द्धर्ष वीर ने क्या भीषण संग्राम किया,
वह वीर अकेला, सौ-सौ सैनिक घात लगे
उस प्रलय वीर ने पर उन सब को हिला दिया,

मिल गई धूल में शेखी गोरे अफसर की
ले ओट विटप की, झाँका तनिक नाटबाबर,
गोली अचूक ले उड़ी भुजा पल में उसकी
गिर गया विदेशी वहीं भूमि पर अर्राकर।

लुक-छिप कर लेकर आड़ बढ़े फिर कुछ सैनिक
गर्जना सिंह की पड़ी कान, वे सब दुबके,
विश्वेश्वरसिंह झाड़ी के झुरमुट में छिप कर
ले ओट तनिक आगे सरका चुपके-चुपके।

पिस्तौल दन्न से गरज उठी, गोली छूटी
जा तोड़ा उसने पल में घाती का जबड़ा
झाड़ी की लेकर ओट उझकना वह उसका
जबड़े की कीमत पर था महँगा बहुत पड़ा।

पिस्तौल वीर की रही गरजती बढ़-बढ़ कर
बन्दूकें रिपु की रहीं चीखतीं उत्तर में,
ललकार रहा था क्रुद्ध-वीर वह रण-थल में
सुन शत्रु रहे थे प्रलय-घोष उसके स्वर में।

वह काल-मुखी पिस्तौल भयंकर थी सचमुच
कोई भी उसकी गई नहीं गोली खाली,
रिपु ने ली जिसकी ग्राड़, ग्ररे ! उस तरु की क्या
साम्राज्य-वाद की छाती छलनी कर डाली।

सब इधर-उधर से रहे झाँकते बगलें ही
कोई माई का लाल नहीं सम्मुख ग्राया,
जो दिखा तनिक, वह ग्रंग-भंग निज कर बैठा
गर्जना सिंह की सुन जम्बुक दल थर्राया।

जाने कितनी गोलियाँ देह में समा गईं
वह डटा रहा फिर भी रण-बांका ग्रलबेला,
बौछार गोलियों की खाता, छोड़ता रहा
जीवन रहते वह खेल मौत का खुल-खेला।

दुर्भाग्य ! किन्तु चुक गईं गोलियाँ ग्रब उसकी
रह गई शेष गोली उस पर केवल ग्रन्तिम,
वह स्वयं दाग ली उसने ग्रपने मस्तक पर
बह उठी वीर के मस्तक से धारा रक्तिम।

वह जूझ गया नरसिंह वहाँ लड़ते-लड़ते
धरती-माता की गोदी में वह समा गया,
बेजोड़ वीरता का रक्तिम इतिहास ग्रमर
जगती के हाथों में वह ग्रपना थमा गया।

वे प्रखर रक्त-धाराएँ जो छूटीं उसकी
सचमुच ही उस दिन सरस्वती के दर्शन थे,
दर्शन देकर वह सरस्वती फिर थी विलीन
उस शुभ-दर्शन से सब ही के पावन मन थे।

गंगा-यमुना की धार त्रिवेणी है सचमुच
है देश-भक्त के शोणित का उसमें संगम,
आत्मोत्सर्ग यह युग-युग का पावन प्रकाश
बलिदान रहेगा यह सदियों तक हृदयंगम।

उठ गया लाल अपनी माता का वह उस दिन
उठ गया क्रान्ति-सेना का वह दृढ़ सेनानी,
उठ गया वीर वह सिंह-गर्जना सुन जिसकी
दुश्मन के तन का शोणित बनता था पानी।

जब भगतसिंह ने सुना, दीर्घ निश्वास छोड़
बोला—"भैया ! तुम सचमुच ही आजाद रहे,
तुम मुझ से बाजी मार ले गये सेनानी !
पर शीघ्र मिलूंगा तुम से, यह भी याद रहे।

अन्तिम सन्देश

प्रिय साथियो ! अभिनन्दन अन्तिम बार तुम्हारा,
जन्म-जन्म तक संबल होगा, पावन प्यार तुम्हारा।
है अन्तिम सन्देश—अमर हो यह संघर्ष हमारा,
पौरुष के पथ पर जाग्रत हो, भारतवर्ष हमारा।

मुक्त देश ही जग में जीवित रहने का अधिकारी,
आज देश की मुक्ति-साधना पावन सिद्धि हमारी।
वरण करो इस महा-सिद्धि को संघर्षों के द्वारा,
इन्कलाब ही रहे हमारा युगों-युगों तक नारा।

इन्कलाब की आग रहे जीवित प्राणों के हवि से,
माँग रहा युग नया सवेरा आज शौर्य के रवि से।
जीवन की बलि माँग रही है धरती की आजादी,
देखें कौन डटा रहता है लिये प्राण उन्मादी।

यह साम्राज्य-वाद का दानव जब तक हार न माने,
डटे रहें बलिपंथी बन कर धरती के दीवाने।
शोणित के पथ पर चल कर जो आजादी आयेगी
अपना मूल्य स्वयं वह हमको आकर समझायेगी।

अतः संधि की मृग-मरीचिका हमें नहीं भटकाये,
जलते अंगारों पर कोई राख न जमने पाये।
अपमानों के घूंट हमारे लिये जहर बन जायें,
भारत के संकल्प शत्रु के लिये कहर बन जायें।

रक्त हमारा, इस धरती की फसलों में लहराये,
रक्त हमारा, सुमन-दलों में सौरभ बन मुस्काये।
रक्त हमारा बने हमारे बलिदानों का दर्पण,
पितृ-शहीदों का हो अपने उष्ण रक्त से तर्पण।

जाते-जाते एक बात यह भी तुम से कह जायें,
अपनों से ही क्यों रहस्य कुछ बिना कहे रह जायें।
मुक्ति-वरण का नहीं राज्य के मद में परिवर्तन हो,
बलिदानों का मूल्य माँगने का न कभी प्रचलन हो।

जिस दिन मन में सत्ता का मद और अहं उपजेगा,
उस दिन अहं तुम्हारा ही यह तुमको ले डूबेगा।
जो गोलियाँ दाग कर तुम यह सत्ता चले मिटाने,
उन्हीं गोलियों के बन सकते, तुम भी कभी निशाने।

जो कहना था, तुम से कह कर विदा हुए जाते हैं,
मन चाही मिल रही मौत, हम तीनों मदमाते हैं।
मरा समझ कर हमें, कभी तुम आँसू नहीं बहाना,
हमें याद कर बलिदानों की सुखद प्रेरणा पाना।

मेरा लाल मिले मुझको धरती की खुशहाली में

"क्या कहते हो, बेटे का मैं मुख न देख पाऊँगी ?
क्या उसका स्वर सुनने से मैं वंचित रह जाऊँगी ?
क्या मेरा बच्चा फाँसी के फन्दे पर झूलेगा ?
हत्यारों का वक्ष उसे खाकर ही क्या फूलेगा ?

क्या शासन का केतु अरे ! चन्दा को खा जायेगा ?
मेरे भाग्य-गगन पर क्या अँधियारा छा जायेगा ?
जीवित रहूँ देखने यह सब, निष्ठुर अरे विधाता !
उसके पहले मुझको ही क्यों तू है नहीं उठाता ?

जिसे खिलाया था गोदी में मैंने अरमानों से
जिसका माथा चूमा करती थी मैं वरदानों से—
क्या वे सब वरदान आज मिट्टी में मिल जायेंगे ?
कोई मेरे पुण्य न क्या उसके आड़े आयेंगे ?

ये दिन भी थे मुझे देखने, झूले मेरा चन्दा,
उसे छीन कर ले जाये मुझसे फाँसी का फन्दा।
कहाँ छिप गया है रे ! तू भगवान कहाने वाले !
माँ की आँखों को बेटे की मौत दिखाने वाले !

अरे पिता होकर भी क्यों तुम उसको नहीं बचाते ?
मिल न सकेगा वह मुझसे, क्यों यह सन्देश सुनाते ?
कैसे पत्थर धर लूँ अपने उर पर मैं माँ होकर ?
जीवित ही क्यों रहूँ अरे ! अपने बच्चे को खो कर ?"

"आज सिंह जननी ! मैं तुमको क्या कह कर समझाऊँ ?
व्यथित हृदय से आज सांत्वना तुम्हें कहाँ से लाऊँ ?
किन्तु अवश्यंभावी जो होता, सहना पड़ता है,
जहाँ न कोई सुने, वहाँ फिर चुप रहना पड़ता है।

सच है, अन्तिम भेंट न अब बेटे से हो पायेगी,
यह अभिलाषा एक घुटन बन कर ही रह जायेगी।
हम से मिलना बेटे ने ही अस्वीकार किया है,
हम से कहीं अधिक जनता से उसने प्यार किया है।

मान्य न हुआ मिले हम से वह जनता से वंचित हो,
यह तो बात गर्व की सचमुच, क्यों पीड़ा संचित हो ?
जिस बेटे ने है समाज के हित हमको ठुकराया,
जन-जन के अंतर में उसका गौरव आज समाया।

पीड़ा से यह हृदय आज जो टूक-टूक हो जाता,
बेटे की गौरव-गरिमा से वही सांत्वना पाता।
जन-जन के स्वर से सुन पड़ते उसकी जय के नारे,
इसलिए आँखों के आँसू अब आँखों के तारे।

भेजा है सन्देश, मिलेगा फिर वह हम से आकर,
जीवन की बलि दे, धरती पर जन-मंगल बरसा कर।
अतः आज बेटे का गम ही हमें गर्व बन जाये,
बेटे का बलिदान, देश का मुक्ति-पर्व बन जाये।"

"यह सन्देश मुझे भेजा है बेटे ने कारा से,
मैं गर्वित हूँ समभुच ही उसकी विचार-धारा से।
जन्म-जन्म के मेरे संचित पुण्य उसे मिल जायें,
बेटे के अरमान फूल बन धरती पर खिल जायें।

देखूँ उसका रूप मुक्ति-अरुणोदय की लाली में,
मेरा लाल मिले मुझको धरती की खुशहाली में।
माँ हो कर भी कहती हूँ मैं, लाल भले ही भूले,
आजादी की मंजिल को बलिदान किन्तु यह छूले।"

जिन्दगी और मौत से दो-दो बातें

"यह फाँसी की काल-कोठरी, अंधकार यह गहरा,
लगा आज मेरे जीवन पर यहाँ मौत का पहरा,
अंधकार में भी यह किसकी आभा झलक रही है ?
तम के घट से शुभ्र-ज्योत्सना-सी छलक रही है।

कौन देवि ! तुम ? क्यों आई हो ? मैं पहचान न पाया,
तुम जीवन की ज्योति-किरण सी, तुम करुणा की छाया।
अन्तिम क्षण क्या मुझे सांत्वना देने तुम आई हो ?
अंधकार में कौन प्रेरणा की तुम अरुणाई हो ?"

"क्यों पहचानोगे तुम उसको, जिसको ठुकराया है,
मादक सपने छोड़, पंथ उत्सर्गों का भाया है।
मैं अभागिनी हूँ, न बनी जो इन चरणों की दासी,
मैं सचमुच ही मीन, रही जो जल में रहकर प्यासी।

यही पूछने आई हूँ, क्या अब भी अपनाओगे ?
क्या चरणों की धूल-धरोहर मुझको दे जाओगे ?
यही धूल कुंकुम होगी अब मेरे अरमानों की,
अभिशापों के जग में छाया होगी वरदानों की।"

"देवि ! विवश कर दिया मुझे तुमने अपनी क्षमता से,
आज पराजित है पौरुष, नारी की मृदु ममता से।
बतलाता हूँ मैं रहस्य यह तुमको आज हृदय का
है मुझको स्वीकार पंथ सचमुच ही अब परिणय का।

फाँसी के तख्ते की घोड़ी पर चढ़ कर आऊँगा,
पहन टोप का सेहरा, मैं सचमुच ही हर्षाऊँगा।
हथ-कड़ियों के भन-भन का स्वर होगा मंगल वादन,
उन्मादी उमंग से होगा मन का पुलक-प्रसाधन।

मंत्रोच्चार न्याय का पंडित विधिवत तभी करेगा,
यह दूल्हा भी सुखद-कल्पना के जग में विचरेगा।
बाहु-पाश का हार दिखेगा वह फाँसी का फन्दा,
मेरा उर ज्योतित कर देगा गोरा-गोरा चन्दा।

अब असह्य हो रही प्रतीक्षा, शुभ-मुहूर्त हे! आओ!
अपनी मादक शुभ्र चाँदनी, इस मन पर छिटकाओ।
प्रस्तुत हूँ मैं आज, लिए जीवन का पूर्ण समर्पण,
आओ! रूप तुम्हारा हो मेरे भावों का दर्पण।"

और कौन अब तुम आई हो अट्टहास करती सी?
तम की चादर ओढ़ भयावहता जग में भरती सी।
पूर्ण अशुभ की मूर्त-रूप-सी तुम हो कौन बताओ?
कौन प्रयोजन तुम्हें यहाँ लाया है, यह समझाओ।"

"क्या परिचय दूँ अपना, मुझको अभी जान जाओगे,
आत्मसात् हो मुझमें, तुम मेरा परिचय पाओगे।
मैं जीवन की मंजिल, मुझको सभी मौत कहते हैं,
मैं हूँ, जिसकी छाया से सब दूर-दूर रहते हैं।

जिसको जैसे चाहा, मैंने हड़प लिया क्षण भर में,
समा गए हैं काल-बली सब मेरे महा-उदर में।
मैं हूँ, जो सब ही के सर पर आकर मँडराती हूँ,
कहीं बुलाती भक्ष्य, कहीं मैं स्वयं चली जाती हूँ।

पहुँच सभी में जाती हूँ मैं अपनी भूख मिटाने,
छोटा-बड़ा और जड़-चेतन, सब ही को अपनाने।
सत्य नहीं मरता है जग में, मैं भी कब मरती हूँ,
मेरी ऐसी भूख, विश्व को आत्मसात करती हूँ।

कुछ वे हैं, जो मेरे डर से थर-थर काँपा करते,
कुछ वे हैं, जो मेरे डर से बिना मौत ही मरते।
मेरा ही डर धर्म-कर्म के भावों को गति देता,
मेरा ही अस्तित्व सुपथ पर चलने की मति देता।

मात्र कल्पना से मेरी, हैं बड़े-बड़े थर्राते,
मेरी आशंका की आहट तक से वे भय खाते।
लोग सूख जाते जीवित ही, मेरी छाया तक से,
सुन मेरा पद-चाप धड़कनों का उर रहता धक् से।"

"किन्तु देवि ! तुम मेरे सम्मुख, मुझे न फिर भी भय है,
तुम्हें देख कर जाने क्यों मेरा उत्फुल्ल हृदय है।
लगता जैसे तुमको पा, जीवन की सिद्धि मिलेगी,
अरमानों की प्रिय फुलवारी जैसे आज खिलेगी।

तो आओ ! अपनाओ मुझको, आओ तुम स्वागत है !
भय से नहीं, किन्तु श्रद्धा से मेरा मस्तक नत है।
तुमको पाकर सतत-साधना होगी मेरी पूरी,
और निकट आओ, मिट जाए हम दोनों की दूरी।"

"वीर ! तुम्हारे इस साहस पर मैं सचमुच बलिहारी,
जीत गए तुम और मिली है मुझको मात करारी।
कई बार परखा है मैंने तुमको बहुत निकट से,
किन्तु पराजित हुई, तुम्हारे मैं अदम्य जीवट से।

अब आई हूँ तुमको लेने, किन्तु स्वयं लज्जित हूँ,
अपने सब वरदान लिए मैं तुम पर ही अर्पित हूँ।
हाथ लगेगी मेरे, केवल तन की ही नश्वरता,
वरण करोगे किन्तु वीर तुम पावन परम अमरता।

यह बलिदान तुम्हारा, युग की साँसें गर्मायेगा,
यह बलिदान, मुक्ति की मंगल वेला ले आयेगा।
देश तुम्हारा कभी न भूलेगा बलिदान तुम्हारा,
सदियों की साँसों पर झूलेगा बलिदान तुम्हारा।"

ग्रलविदा

ग्राज लग रहा कैसा जी को, कैसा ग्राज घुटन है ?
दिल बैठा-सा जाता है, हर साँस ग्राज उन्मन है।
बुझे-बुझे मन पर यह कैसी बोझिलता भारी है ?
क्या वीरों की ग्राज कूच करने की तैयारी है ?

हाँ सचमुच ही तैयारी यह, ग्राज कूच की वेला,
माँ के तीन लाल जायेंगे, भगत न एक ग्रकेला।
मातृ-मूर्ति पर ग्रर्पित होंगे, तीन फूल ये पावन,
यह उनका त्योहार सलौना, यह दिन उन्हें सुहावन।

फाँसी की कोठरी बनी यह इन्हें रंगशाला है,
झूम-झूम सहगान हो रहा, यह क्या मतवाला है।
भगत गा रहा—"ग्राज पहन हम चलें वसन्ती चोला,
जिसे पहन कर वीर शिवा ने माँ का बन्धन खोला।"

झन-झन-झन बज रहीं बेड़ियाँ, ताल दे रहीं स्वर में,
झूम रहे सुखदेव, राजगुरु भी हैं, ग्राज लहर में।
नाच-नाच उठते हैं, ऊपर दोनों हाथ उठाकर,
स्वर में ताल मिलाते, पैरों की बेड़ी खनका कर

पुनः वही ग्रालाप—"रँगें हम ग्राज वसन्ती चोला,
जिसे पहन राणा प्रताप का ग्रल्हड़ यौवन डोला।
वही, वसन्ती रंग का चोला ग्राज सभी हम पहनें,
लपटें बन जातीं जिसके हित, भारत की माँ बहनें।

उसी रंग में अपने मन को रँग-रँग कर हम झूमें,
हम परवाने, बलिदानों की अमर-शिखाएँ चूमें।
हमें वसन्ती चोला, माँ तू स्वयं आज पहनादे,
तू अपने हाथों से हमको रण के लिये सजा दे।"

सचमुच ही आ गया निमंत्रण लो इनको यह रण का,
बलिदानों का पुण्य-पर्व बन यह त्यौहार मरण का।
जल के तीन पात्र सम्मुख रख, यम का प्रतिनिधि बोला—
स्नान करो, पावन कर लो तुम तीनों अपना चोला।"

झूम उठे यह सुन कर तीनों ही अल्हड़ मर्दाने,
लगे गूँजने और तीव्र हो उनके मस्त तराने।
लगी लहरने कारागृह में इन्कलाब की धारा,
जिसने भी स्वर सुना, वही प्रति-उत्तर हुंकारा।

खूब उछाला एक-दूसरे पर तीनों ने पानी,
होली का हुड़-दंग बन गई उनकी मस्त जवानी।
गले लगाया एक दूसरे को बाँहों में कसकर,
भावों के सब बाँध तोड़कर भेंटे वीर परस्पर।

मृत्यु-मंच की ओर बढ़ चले अब तीनों अलबेले,
प्रश्न जटिल था, कौन मृत्यु से सब से पहले खेले ?
बोल उठे सुखदेव—"शहादत पहले मेरा हक है,
वय में मैं ही बड़ा सभी से, नहीं तनिक भी शक है।"

तर्क राजगुरु का था, "सबसे छोटा हूँ मैं भाई !
छोटों की अभिलाषा पहले पूरी होती आई।
सबसे पहले मुझे चूमने दो फाँसी का फन्दा,
है उधार फाँसी पर चढ़ने, खुशी-खुशी यह बन्दा।"

भगतसिंह ने समझाया—"यह न्याय-नीति कहती है,
जब दो झगड़ें, बात तीसरे की तब बन रहती है।
जो मध्यस्थ, बात उसकी ही दोनों पक्ष निभाते,
इसीलिए पहले मैं झूलूं न्याय-नीति के नाते।"

यह घोटाला देख चकित थे न्याय-नीति अधिकारी,
होड़ा-होड़ी, और मौत की ? ये कैसे अवतारी ?
मौत सिद्धि बन गई, झगड़ते हैं ये जिसको पाने,
कहीं किसी ने देखे हैं क्या इन जैसे दीवाने ?

मौत, नाम सुनते ही जिसका लोग काँप जाते हैं,
ये कैसे लड़ रहे उसी को, कैसे मदमाते हैं।
भय इनसे भयभीत, अरे ! यह कैसी अल्हड़ मस्ती,
वन्दनीय है सचमुच ही इन दीवानों की हस्ती।

मिला शासनादेश, "बताओ अन्तिम अभिलाषायें।"
उत्तर मिला, "मुक्ति कुछ क्षण को हम बन्धन से पायें।"
मुक्ति मिली हथकड़ियों से, अब प्रलय वीर हुंकारे,
फूट पड़े उनके कण्ठों से इन्कलाब के नारे।

"इन्कलाब हो अमर हमारा, इन्कलाब की जय हो,
इस साम्राज्यवाद का भारत की धरती से क्षय हो।
हँसती-गाती आजादी का नया सवेरा आये,
विजय-केतु अपनी धरती पर अपना ही फहराए।"

और इस तरह नारों के स्वर में वे तीनों डूबे,
बने प्रेरणा जग को, उनके बलिदानी मंसूबे।
भारत-माँ के तीन सुकोमल फूल हुए न्यौछावर,
हँसते-हँसते झूल गए वे, फाँसी के फन्दों पर।

हुए मातृ-वेदी पर अर्पित तीन सूरमा हँसकर
विदा हो गए तीन वीर, दे यश की अमर धरोहर,
अमर धरोहर यह, हम अपने प्राणों से दुलरायें
सींच रक्त से, हम आजादी का उपवन महकायें।

जलती रहे सभी के उर में यह बलिदान-कहानी,
तेज धार पर रहे सदा अपने पौरुष का पानी।
जिस धरती के बेटे हम, सब काम उसी के आयें,
जीवन देकर, हम धरती पर जन-मंगल बरसायें।

बलिदानों के मान-दंड-से मन पर जमे हुए हो

भारत के स्वातंत्र्य-समर के ओ उद्भट सेनानी !
गौरव-ज्वाला-गिरि के ओ उन्नत मस्तक अभिमानी !
आँसू के सागर के उठने वाले ओ बड़वानल !
अपरिमेय, श्रद्धेय, ध्येय पर मिटने वाले पागल !

चन्दन-वन से उठी लपट के पावन अमर उजाले !
मर कर, जीवित रहने वालों के यश के रखवाले !
यौवन के उन्माद प्रखर, आलोक-पुंज पावनतम !
मुक्ति यज्ञ के ओ हविष्य, आहुति-स्वाहा के सरगम !

क्रान्ति-गगन के धूमकेतु ! ओ आग उगलने वाले !
प्राणों की जलती मशाल खुद लेकर चलने वाले !
मेरु-दण्ड विप्लव मंथन के, अरि को घूंट गरल के !
शंख-नाद विद्रोही स्वर के, शिखर संगठन बल के !

क्रान्ति-पंथ के नए मोड़ के सफल दिशा-दिग्दर्शक !
मानव-मानव की समता के ओ सपने आकर्षक !
सुनते हैं तुम आज नहीं हो, जग से चले गये हो,
सुना, न्याय के रंग-मंच पर ही तुम छले गए हो।

लील गई तुमको सुरसा अत्याचारी शासन की,
अन्यायों के घन से तुम पर बिजली गिरी दमन की।
पर हमको लगता है जैसे तुमको मौत न आई,
अरे ! मौत ने तुमको खाकर खुद ही मुँह की खाई।

चले गये तुम, माँग वीरता की सूनी-सूनी है,
राख उड़ रही, बलिदानों की उजड़ी-सी धूनी है।
तुमको खोकर, आठ-आठ आँसू मानवता रोई,
इतिहासों की कालिख तुमने पूत-रक्त से धोई।

चले गये तुम, पर हमको लगता तुम नहीं गये हो,
नए-नए रूपों में मिलते हमको नए-नए हो।
लगता है तुम यहीं कहीं हो, तुम अब भी जीवित हो,
किसी एक तन की कारा में किन्तु नहीं सीमित हो।

तुम अनंग बन कर जीवित हो, भारत के जीवन में,
लगता जैसे समा गए तुम भारत के दर्शन में,
जब अन्यायों के विरुद्ध आवाज उठाई जाती—
अत्याचारों की होली जब-जब सुलगाई जाती—

जब प्रतिशोध-भावना उठती उत्पीड़ित अंतर से—
जब संघर्ष-चुनौती होती ध्वनित दलित के स्वर से—
लगता, जैसे क्रांति-मंत्र तुम ही फूँका करते हो,
लगता, जैसे उग्र-चेतना मन में तुम भरते हो।

लगता जैसे इन्कलाब के दृढ़ नारों में तुम हो,
लगता जैसे आसमान के इन तारों में तुम हो।
लगता जैसे सतलज की चंचल लहरों में तुम हो,
लगता जैसे भारत के गाँवों शहरों में तुम हो।

लगता, जैसे क्रान्ति-अमर के गगन-घोष में तुम हो,
लगता, जैसे प्रबल रक्त के क्रुद्ध-रोष में तुम हो।
लगता, जैसे जीवन के हर उच्च त्याग में तुम हो,
लगता जैसे अंतर की विप्लवी आग में तुम हो।

लगता, जैसे तुम जीवित इस जगती के कण-कण में,
लगता, जैसे तुम जीवित हर देश-भक्त के प्राण में।
युग की क्रान्ति-भावनाओं में, अब भी रमे हुए हो,
बलिदानों के मान-दंड-से मन पर जमे हुए हो।

पत्र-परिशिष्ट

काव्य-लेखन के क्रम में
जिन क्रान्तिकारियों
तथा
सरदार भगतसिंह के विषय में
अधिकृत जानकारी रखने वाले
व्यक्तियों से
पत्र-व्यवहार हुआ
उनमें से कुछ
यहाँ दिया जा रहा है।
लम्बे पत्रों में से
व्यक्तिगत बातें निकाल कर
आवश्यक अंश ही दिये गये हैं।
सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रति
लेखक कृतज्ञ और क्षमा-प्रार्थी है।

[निम्नलिखित पत्र राज्यसभा के भूतपूर्व सदस्य और महान् साहित्य-सेवी पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी का है। श्री चतुर्वेदी जी क्रान्तिकारियों के बहुत बड़े सहायक रहे हैं। तन-मन-धन से क्रान्तिकारियों और उनके आश्रितों की सेवा करने का पुण्य श्री चतुर्वेदी जी ने कमाया है। आजकल आप अपने घर फीरोजाबाद में रह रहे हैं।]

प्रिय सरल जी,

प्रणाम। कृपा पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ। आप जिस लगन के साथ अपने कवि-कर्तव्य का पालन कर रहे हैं, उसका वृत्तान्त पढ़ कर हर्ष होता है। न तो मैं कवि हूँ और न कविता मर्मज्ञ, इसलिये आपको सलाह-मशविरा देना मेरे लिए हिमाकत की बात होगी। फिर भी दो तीन बातें लिखने की धृष्टता कर रहा हूँ।

श्री विजयकुमार सिन्हा (भगतसिंह जी के साथी) आजकल यहीं हैं— आप उनसे मिल लें। अमर शहीद भगतसिंह ने सशस्त्र-क्रान्ति को प्रगतिशील दिशा में लाने का जो प्रयत्न किया, उसके लिए जो दार्शनिक पृष्ठभूमि आपने दी, उस के बारे में श्री विजय बाबू सबसे अधिक प्रामाणिक रूप से बतला सकते हैं।

श्री लद्धाराम जी, जिन्हें १९१० ई० में अण्डमान भेजा गया था, अभी जीवित हैं। वे भगतसिंह जी के पिताजी के मित्र रहे हैं और उन्होंने भी भगतसिंह को कुछ ग्रन्थ पढ़ने के लिए दिए थे।

आपको भगवानदास जी माहौर से तो मिल ही लेना चाहिए। वे स्वयं कवि हैं और कविता मर्मज्ञ भी। भगतसिंह के साथी होने के नाते वे आपको बहुत कुछ बता सकते हैं।

एक बात और। मैंने पढ़ा था कि 'स्टीफन ज्विग' अपने लिये एक हजार पृष्ठों में से आठ सौ पृष्ठ फाड़ फेंकता था। काल भगवान भारी-भरकम चीजों को अपनी नौका में लाद नहीं सकते। आप नितान्त बेरहमी के साथ अपनी रचना में काँट-छाँट करते रहें जिससे प्रवाह में और भी तेजी आ जाय।

आपका
बनारसीदास

[निम्नलिखित पत्र श्री बटुकेश्वरदत्त के अँग्रेजी में लिखे पत्र का अनुवाद है। श्री दत्त भगतसिंह के अनन्य मित्र रहे हैं। दिल्ली असेम्बली में बम फेंकने में भगतसिंह के साथी श्री बटुकेश्वरदत्त ही थे। आजकल आप पटना में रह रहे हैं।]

प्रिय श्री सरल जी,

आपका पत्र प्राप्त कर आश्चर्य और हर्ष की अनुभूति हुई। मेरे अभिन्न मित्र और जीवन भर के साथी सरदार भगतसिंह पर आपके द्वारा महाकाव्य

लिखने के विचार का मैं स्वागत करता हूँ। मेरा विश्वास है कि भगतसिंह पर लिखने के लिए आपने तथ्यों का संकलन उसके परिवार के सदस्यों की सहायता से किया होगा।

किसी के जीवन पर लिखने के लिए घटनाओं के विवरण देने की अपेक्षा उसके दृष्टिकोण, विचारों, और सिद्धान्तों का ईमानदारी से चित्रण अधिक महत्व रखता है।

आपके साथ मेरा स्नेह और सद्‌भावनायें हैं।

आपका
बटुकेश्वर दत्त

[निम्नलिखित पत्र श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का है। श्री 'अज्ञेय' हिन्दी साहित्य के दिग्गजों में से हैं। जिस समय सरदार भगतसिंह लाहौर जेल में बन्दी थे, उस समय श्री अज्ञेय एम० एस-सी० के छात्र थे। जेल पर धावा बोल कर भगतसिंह को छुड़ाने के लिए बमों की आवश्यकता थी। श्री 'अज्ञेय' अध्ययन छोड़कर बम बनाने में जुट गये। दिल्ली की बम फैक्ट्री के संचालक आप ही थे। आजकल भी आप दिल्ली में ही हैं।]

श्रीमस्तु,

आपका पत्र मिला। सरदार भगतसिंह पर आप प्रबन्ध काव्य लिख रहे हैं, वह भी गवेषणात्मक, यह सूचना पाकर मैं चकित और आतंकित हुआ।

जिस दल के भगतसिंह सदस्य थे, उसी से मेरा सम्बन्ध रहा, किन्तु उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में मैं न था। बल्कि उन्हें जेल से छुड़ाने के आयोजन के प्रसंग में ही मैं उनके साथियों के निकट सम्पर्क में आया। ऐसी दशा में मैं ऐसा कुछ ब्यौरा नहीं दे सकता जिसका उनकी जीवनी से सम्बन्ध हो—महाकाव्य तो और भी दूर की बात है।

आपका काव्यायोजन सफल और तृप्तिकर हो, यही कामना है।

भवदीय
स० ही० वात्स्यायन

[निम्नलिखित पत्र संसद सदस्य श्री योगेशचन्द्र चटर्जी के अँग्रेजी में लिखे पत्र का अनुवाद है। उत्तर प्रदेश में क्रांति की प्रथम दीक्षा सरदार भगतसिंह ने श्री चटर्जी से ही ली थी।]

प्रिय श्री सरल,

आपके द्वारा भेजी गई पुस्तक मिली, और पत्र भी। धन्यवाद स्वीकार करें।

इस पत्र के साथ मैं वह लेख भेज रहा हूँ जो सरदार भगतसिंह की श्राद्ध-तिथि पर कई समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुका है।

सरदार का राजनैतिक जीवन सन् १९२४ से १९३१ तक, प्रमुख रूप से सात वर्ष का रहा है । भगतसिंह ने विप्लववाद के संगठन और अँग्रेजी साम्राज्य को उखाड़ने के लिए तूफानी कार्य किया । उसका लक्ष्य देश में समाजवादी ढंग का प्रजातंत्र शासन स्थापित करना था जिसमें मानव द्वारा मानव के शोषण को समाप्त करने का संकल्प भी था ।

भगतसिंह अहिंसा में विश्वास नहीं करता था क्योंकि अहिंसा द्वारा स्वाधीनता की प्राप्ति असंभव लग रही थी । उसका विश्वास समझौतों के द्वारा सत्ता के हस्तान्तरण में नहीं था ।

आज हमारे यहाँ राष्ट्रीय चरित्र और राष्ट्रीयता का नितान्त अभाव है । आपका कार्य है कि राष्ट्रीयता की प्रबल भावना देश के नवयुवकों में भरें—प्रबल भावना से अनुप्रेरित नवयुवक ही देश का कल्याण कर सकते हैं ।

आपका
योगेशचन्द्र चटर्जी

[निम्नलिखित पत्र श्री यशपाल जी का है । यशपाल जी प्रसिद्ध कथाकार तो हैं ही, आप भगतसिंह के अत्यन्त निकट के साथी और क्रांतिकारी दल के सक्रिय सदस्य रहे हैं । लार्ड इर्विन की ट्रेन को बम से उड़ाने का श्रेय भी यशपाल को ही है]

प्रिय सरल जी,

कृपा पत्र के लिए धन्यवाद । भाई भगतसिंह के विषय में, व्यक्तित्व और कार्य के सम्बन्ध में मैं जो कुछ भी जानता था वह सम्पूर्ण 'सिंहावलोकन' के तीन भागों में लिख चुका हूँ ।

यदि आप व्यक्तिगत बातचीत करना चाहते हैं तो अपनी सुविधा से लखनऊ आइए ।

आपकी जिज्ञासाओं का इस प्रकार उत्तर दे सकता हूँ—

(१) ब्रेडला हॉल में सरदार कर्तारसिंह के चित्र का अनावरण संभवतः श्री भगवतीचरण बोहरा ने किया था । इस सम्बन्ध में मैंने 'सिंहावलोकन' में लिखा है । मैं सभा के संयोजकों और प्रबंधकों में से एक था ।

(२) सरदार कर्तारसिंह के चित्र के विषय में मैं कुछ नहीं बता सकता ।

(३) बम रखने के लिए जाने से पूर्व फौजी पोशाक वाला मेरा चित्र उपलब्ध नहीं है ।

(४) 'सिंहावलोकन' से आपको जिन चित्रों की आवश्यकता हो, उनका उपयोग आप सहर्ष कर सकते हैं ।

(५) जब आपका ग्रन्थ पूर्ण हो जाय तब जो सहायता मैं कर सकता हूँ, वह करने को तत्पर रहूँगा ।

आपका
यशपाल

[निम्नलिखित पत्र प्रसिद्ध क्रान्तिकारी और लेखक श्री जितेन्द्रनाथ सान्याल का है। श्री सान्याल ने सरदार भगतसिंह पर एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी थी जो अँग्रेजी शासन द्वारा जब्त कर ली गई थी। उसी को मँगाने लेखक ने उन्हें पत्र लिखा था जिसका यह उत्तर है। श्री सान्याल आजकल गोरखपुर में रह रहे हैं]

प्रियवर,

मुझे खेद है कि मैं आपके पत्र का उत्तर विलम्ब से दे रहा हूँ। मुझे यह जानकर अपार हर्ष हुआ है कि आप सरदार भगतसिंह पर महाकाव्य लिखने की साधना कर रहे हैं। गत वर्ष पंजाब में भगतसिंह की शहादत के पर्व पर लाखों व्यक्तियों ने अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की थीं। यह इस बात का प्रमाण है कि भगतसिंह लोगों के दिलों में अभी जीवित है।

मुझे खेद है कि जिस पुस्तक की माँग आपने की है, वह मेरे पास नहीं है। उसका परिवर्द्धित और संशोधित हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुआ था। आप हिन्दी के प्रकाशकों से उसे प्राप्त कर सकते हैं।

आपका
जितेन्द्रनाथ सान्याल

[निम्नलिखित पत्र श्री मन्मथनाथ गुप्त का है। श्री गुप्त अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल के दल के सदस्य और काकोरी केस के नायकों में से हैं। उस मामले में, अल्पायु होने के कारण आप फाँसी से तो बच गये, पर चौदह वर्ष के कारावास का दण्ड अवश्य मिला था। आजकल आप केन्द्रीय-प्रकाशन विभाग से निकलने वाले 'आजकल' के संपादक हैं]

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिल गया। यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आप सरदार भगतसिंह पर एक प्रबन्ध-काव्य लिख रहे हैं। क्या आपने श्री भगवानदास माहौर लिखित 'यश की धरोहर' पुस्तक पढ़ ली है? यदि नहीं, तो आप उसे अवश्य पढ़ें। उसमें भगतसिंह के विषय में प्रामाणिक सामग्री है। आप दिल्ली आकर मुझसे सहर्ष मिल सकते हैं।

कृपा बनाए रखें। जयहिन्द!

भवदीय
मन्मथनाथ गुप्त

[निम्न-लिखित पत्र श्री भगवानदास माहौर का है। श्री माहौर सरदार भगतसिंह के विश्वस्त साथी रहे हैं। भुसावल बम केस में आपको आजन्म कारावास का दण्ड मिला था। आपने अदालत में ही मुखबिर पर गोली चलाई थी। आजकल आप झाँसी के बुन्देलखण्ड डिग्री कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक हैं]

प्रिय बन्धु,

आपका पत्र मुझे आज ही मिला। क्रान्तिकारियों के विषय में आप शहीद-ग्रन्थ-माला की पुस्तकें पढ़ें। उन्हीं में एक पुस्तक 'यश की धरोहर'

में भगतसिंह जी पर मेरा एक लेख है। मैं इस ग्रीष्मावकाश में घर पर ही रहूँगा। आप कभी भी आएँ, स्वागत है। आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता होगी।

सरदार भगतसिंह के भाई श्री कुलवीरसिंहजी पंजाब की लेजिसलेटिव असेम्बली के सदस्य हैं, आप उनसे मिलें या उन्हें चंडीगढ़ के पते पर लिखें। भगतसिंह के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी श्री विजयकुमार सिन्हा से भी मिल सकती है।

विनीत
भगवानदास माहौर

[यह पत्र सरदार कुलवीरसिंह जी का है। आप अमर शहीद सरदार भगतसिंह के छोटे भाई हैं। आपका विशेष परिचय प्राक्कथन के अन्तर्गत दिया जा चुका है]

प्रिय भाई जी,

कृपा पत्र मिला। प्रसन्नता और हैरानगी हुई। खुशी तो इसलिए कि आप महाकाव्य लिख रहे हैं और हैरानगी इसलिए कि पिछले ३३ साल में बहुत-सी किताबें उनके जीवन पर लिखी गई हैं पर कितना मैटर ऑथेन्टिक है कह नहीं सकता। लिखने वालों में श्रद्धा तो बहुत रही है लेकिन कुछ इधर-उधर से किताबें देखीं, कोई पुरानी फाइल मिल गई, कुछ मन की रोशनी, बस लिख दिया। लिखा हुआ ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित होना जरूरी है जो उनके आदर्शों को ठीक से पेश कर सके। जिस राजनैतिक-दर्शन पर उनका विश्वास था, वह ठीक व्यक्त हो सके।

मेरा तो सुझाव है कि एक आदर्श काव्य लिखने के लिए सही मेहनत करनी पड़ेगी। आप पृष्ठभूमि के लिए उनके परिवार के इतिहास, उनके राजनीति-दर्शन, क्रान्तिकारियों के इतिहास, उनके दल के इतिहास, उनके आदर्श और उनके द्वारा किए गये कार्यों को आधार बना कर लिखें। यह समय भी खायेगा और कुछ धन भी। मैं आपके साथ मिलकर मेहनत करने तैयार हूँ।

आपका
कुलवीरसिंह

[नीचे तीन पत्र सरदार राजेन्द्रसिंह के दिए जा रहे हैं। सरदार राजेन्द्र-सिंह, सरदार भगतसिंह के सबसे छोटे भाई हैं। आपका परिचय प्राक्कथन के अन्तर्गत दिया जा चुका है। अन्तिम दो पत्रों में सरदार भगतसिंह पर बनने वाली फिल्म 'शहीद' पर चर्चा है]

(१)

प्रिय भाई साहब,

बहुत दिन हुए आपका पत्र मिले। जवाब में देरी हुई इस बात की मुआफी माँगता हूँ।

आपका यह ख्याल बहुत अच्छा है कि आप वह सब लिटरेचर पढ़ेंगे जो सरदार जी ने पढ़ा था। आपको उन पुस्तकों की लिस्ट श्री क्रान्तिकुमार

और श्री जयदेव गुप्त से मिल सकती है। श्री जयदेव का कहना है कि सरदार भगतसिंह जी ने बेशुमार किताबें पढ़ी थीं। जो मशहूर किताबें हैं उनकी लिस्ट सरदार कुलवीरसिंह जी भी दे सकते हैं। सरदार भगतसिंह जी ने कुछ किताबों से नोट्स लिए थे जो लज्जावती जी के पास पहुँचाने को लिखा था। उन्होंने अँग्रेजी में अपनी बायोग्राफी भी भेजी थी।

श्री जयदेव गुप्त ने बताया कि भगतसिंह बहुत महान् थे। उन्होंने दो घटनाएँ बताई हैं—

"एक दिन सर्दियों के मौसम में वह (जयदेव गुप्त) बहुत सबेरे सरदार भगतसिंह के साथ घर से चले। (वह बात लाहौर की है जब जयदेव जी भी हमारे घर ही रहते थे) जाड़ा बहुत था। एक बूढ़ा आदमी कुटी हुई तिल-चीनी बेच रहा था। उसके हाथ जाड़े से काँप रहे थे। तराजू उसके हाथों में से दो बार गिरी। उसके ठण्डे हाथों से सौदा तराजू में डाला भी नहीं जाता था। इसे देख कर सरदार जी को बहुत दुःख हुआ और उनके चेहरे की रंगत ही बदल गई।"

जयदेव जी कहते हैं कि सरदार जी उस समय क्या सोच रहे थे, इससे उनके सोशलिज्म के विचारों का पता चलता है।

सरदार भगतसिंह जी की शादी की चर्चा घर में होने लगी। घरवाले उनकी शादी करना चाहते थे। वे शादी नहीं कराना चाहते थे। वह देखते थे, घर में पहले ही दो चाचियाँ अपने पतियों की जुदाई सहन कर रही हैं। पार्टीवाले भी उनसे काम लेना चाहते थे। वह घर छोड़कर कानपुर चले गए। वहाँ की कहानी लम्बी है। वहाँ एक गाँव के स्कूल में वे हेडमास्टर भी रहे। अखबार में मजमून भी लिखे। बाढ़ के दिनों में उनने और श्री बी० के० दत्त ने बाढ़-पीड़ितों की बड़ी सहायता की।

मैं कोशिश करूँगा कि आप को वह लिस्ट भेजूँ जो किताबें सरदार जी ने पढ़ी थीं। आप इस बारे में सरदार कुलवीरसिंह, श्री क्रान्तिकुमार और श्री जयदेव गुप्त से भी पूछें। कुछ किताबों की सूची इस पत्र के साथ भी भेज रहा हूँ।

आपका भाई
राजेन्द्रसिंह

(२)

प्रिय भाई साहब,

नमस्कार! आपका पत्र बहुत दिन से आया हुआ था। मैं पंजाब गया था। चाचाजी सरदार अजीतसिंह जी का १५ अगस्त १९४७ ई०, आजादी वाले दिन डलहौजी में स्वर्गवास हुआ था। उनका मेला हर १५ अगस्त को डलहौजी में लगता है। वहाँ गया था।

श्री बी० के० दत्त पटना से देहली आए हुए थे। उन्हें माताजी से मिलने खटकरकलाँ आना था। मैं उनको मिलने देहली चला गया था।

जो तसवीर आपने बहुत बढ़िया बनवा कर भेजी है उसके लिए मैं आपका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। 'वीणा' मैगजीन के लिए भी शुक्रिया अदा करता हूँ।

फिल्म प्रोड्यूसर दो बार खटकरकलाँ आया था। उसने माताजी से कुछ रोल प्ले करने को कहा था। मैंने फिल्म वालों को लिखा था कि आप उनके साथियों से कहानी मंजूर करवालें। पहले भी एक खराब सी फिल्म बन चुकी है। पहले ख्याल था कि दत्त जी पंजाब आएँगे, तभी फिल्म वालों को खबर दी थी।

पूज्य दत्त जी सरदार भगतसिंह जी के निकटवर्ती साथी हैं। दत्तजी कहते हैं फिल्म अच्छी बने।

आप अपना मशविरा दें कि फिल्म के सिलसिले में क्या कदम उठाया जावे।

आपका भाई
राजेन्द्रसिंह

(३)

प्रिय भाईसाहब,

नमस्ते। आपका पत्र मिल गया। बहुत शुक्रिया।

पूज्य दत्त साहब के विचार फिल्म के बारे में बिलकुल आप वाले ही हैं। वह भी आपकी तरह सोचते हैं।

दत्त साहब अभी तक पंजाब में ही हैं। फीरोजपुर समाधि पर फूल चढ़ाने जाएँगे।

फिल्म बनाने वालों को लिखा था कि वे दत्त साहब से मिलें पर उनका उत्तर नहीं आया। शहीद यतीन्द्रनाथदास के भाई श्री किरणदास अपने दोस्तों के साथ हमें मिलने आ रहे हैं।

बाकी सब ठीक है।

आपका भाई
राजेन्द्रसिंह

[निम्नलिखित पत्र प्रसिद्ध क्रान्तिकारी और भगतसिंह के सहयोगी श्री विश्वनाथ वैशंपायन का है। भगतसिंह के आह्वान पर योगेशचन्द्र चटर्जी को जेल से छुड़ाने के प्रयत्न में सम्मिलित होने के लिए जो दल झाँसी से आगरा गया था उसके श्री वैशंपायन प्रमुख सदस्य थे। आजकल आप रायपुर (मध्य-प्रदेश) में रह कर एक साप्ताहिक पत्र का संपादन कर रहे हैं]

भाई सरल जी,

आपका पत्र और महाकाव्य का अंश मिला। यह भाग जो आपने आगरे का भेजा है, सचमुच सजीव चित्र है। मैं तो खो सा गया उन घटनाओं में और फिर ढकेल दिया गया............खैर।

वास्तव में यह इतिहास की चीज होगी। जितनी जल्दी छपे अच्छा है। आपका यह महाकाव्य शहीद-स्मारक निधि की अनमोल कड़ी होगी।

देर से [illegible] र्थी हूँ।

आपका
विश्वनाथ वैशंपायन